श्री सत्य साई सुधा सागर

प्रथम पुष्प

संग्रहकर्त्ता :
एन. कस्तूरी, एम० ए०, बी० एल०

सम्पादक :
"सनातन सारथी"
(भूतपूर्व प्रधानाचार्य, डी० आर० एम० कालेज, दावंगिरी, मैसूर स्टेट)

अनुवादक :
राजाराम सिंह, एम० ए०, बी० एड्०,
उप-प्रधानाचार्य, ईश्वर शरण कालेज,
इलाहाबाद, (उ० प्र०)

भगवान् श्री सत्य साई सेवा समिति
दिल्ली

गुलाब भवन ६, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-१
द्वारा प्रकाशित तथा लखेरवाल प्रेस, १८ बीडनपुरा, करौलबाग,
दिल्ली-५ से मुद्रित ।

आमुख

हिन्दी संस्करण

भगवान् श्री सत्य साई साहित्य का अंग्रेजी भाषा में अध्ययन करते समय जो अनिर्वचनीय आनन्द हृदय में बारम्बार संचति होता था, उससे अंग्रेजी की शिक्षा के अभाव से कोई भी हिन्दी भाषा-भाषी ईश्वर प्रेम से वंचित न रह जाये—यह भावना मेरे हृदय को प्रतिपल मथती रहती थी। भगवद्-भक्तों की सेवा करने का अवसर भगवान् ने मुझे इस प्रकार प्रदान किया, यह उनकी मुझ जैसे नगण्य प्राणी पर क्या महती अनुकम्पा नहीं? यही नहीं, रूपान्तरण में परार्थ सेवा की अपेक्षा 'स्वान्तःसुखाय' की प्रवृत्ति ही विशिष्ट प्रेरक शक्ति रही है। इसे में स्पष्ट स्वीकार करता हूँ। निर्गुणातीत ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण ब्रह्म, ज्ञान, कर्म एवं भक्ति तथा विभिन्न धर्मों की अनेकता में अभिन्न एकत्व का प्रदर्शन जिस सरल शैली एवं भाषा में बाबा ने किया है वह आज के वैज्ञानिक युग में अन्यत्र दुर्लभ है। अपने भक्तों के साथ सम्भाषण या वार्ता करते समय बाबा खुले हृदय से बातें निकालते हैं। इसलिए, निःसन्देह, वह हमारे हृद-तन्त्री के तार को अपने मधुर एवं कोमल स्पर्श से झंकृत कर देती है।

मुझे आशा ही नहीं; वरञ्च पूर्ण विश्वास है कि विशाल हिन्दी जगत में बाबा की सुधासम शीतल वाणी का आभूतपूर्व स्वागत् होगा तथा घर-घर में उसका वह समादर होगा जो अधुना 'रामचरित मानस, गीता या भागवत्' को प्राप्त है।

यह परम् सौभाग्य की बात है कि श्री सोहन लाल जी ने, जो स्वयं भगवान् के परम् भक्त हैं तथा दिल्ली के एक सम्मानित नागरिक एवं व्यवसायी हैं, श्री सत्य साई सुधा सागर-प्रथम पुष्प के प्रकाशनार्थ, इच्छा प्रगट की। अविलम्ब

बाबा ने अपनी स्वीकृति सहर्ष प्रदान कर दी। श्री कस्तूरी जी ने तत्काल इस घटना की सूचना मुझे प्रदान की। मैं आश्चर्य एवं आनन्द-विभोर हो उठा तथा मन ही मन साई भगवान् के चरणों में सिर झुकाया। दिनांक १९-७-७१ को बाबा ने सायंकाल सात बजे इस पुस्तक को कर कमल स्पर्श से तथा मुझे विभूति द्वारा अपना आशीर्वाद प्रदान किया।

अन्ततः, मेरा विनम्र निवेदन है कि जो कुछ त्रुटियाँ इस संस्करण में दृष्टि-गोचर हों, वे मेरी ही कमी है, किसी अन्य की नहीं; क्योंकि यह कार्य अस्वस्थ दशा में ही सम्पादित हुआ।

!! जय श्री सत्य साई बाबा !!

प्रशान्तिनिलयम,
दि० २०-७-७१

अनुवादक

सहतीर्थ यात्रियों से

"प्रथम पाठ से लेकर अन्तिम पाठ तक तुम्हारी सहायता करने के लिए मैं यहाँ तत्पर हूँ।"—बाबा

"मैं अवतीर्ण हुआ हूँ; क्योंकि साधुओं एवं साधकों ने प्रकाश एवं सान्त्वना के लिये व्यथा के साथ पुकारा।"—बाबा

आइये, हम भगवान् की वाणी को ध्यान से सुनें।

इस पुस्तक के प्रारम्भ में अंकित कविता आप को उस स्पन्दन का एक विचार प्रदान करेगी, जिससे बाबा के शब्द मन को आपूर्ण कर देते हैं, जब कि तुम उनके द्वारा उड़ेले गये माधुर्य, सहानुभूति एवं चित्त की स्थिरता का रसपान करते हो। उनकी तेलुगु सरल एवं सुधासंगीत से परिपूर्ण है। मैं तो महती गंगा की धारा के एक क्षीण, हिमानी, एवं कोमल झलक मात्र को ही अपनी 'नोटबुक' में अंकित करने में समर्थ हो सका हूँ।

जो इतने भाग्यशाली हैं कि उनके चमकीले वस्त्र के अंचल को स्पर्श कर सके—उन्हें वरदान ही मिल गया। उसी प्रकार, मैं भी अनुभव करता हूं कि जो उनके चरणों के मेरे सहतीर्थयात्री हैं, (वे हर स्थान में हैं, हर वायुमंडल में हैं, हर पूजागृह में हैं, जहाँ कहीं भी जिज्ञासु ऊपर हाथ उठाये घुटने टेकते हैं, या रुँधे हुये गले से या अश्रुपूर्ण नेत्रों से पुकारते हैं, या उनकी भव्यता के स्मारकों के सम्मुख मौन-विस्मय में खड़े होते हैं।) वे उनकी आवाज की प्रतिध्वनि को, उनके संदेश की झंकार को सुनकर उत्साहित होंगे।

भगवान् श्री सत्य साई बाबा, शिरडी के साई बाब हैं, जो महासमाधि के ठीक आठ वर्ष पश्चात अवतरित हुए हैं, जैसा कि भगवान् के उस अवतार ने वचन दिया था। संसार को असत्य एवं अधर्म से बचाने के लिए, लड़खड़ा कर चलने वाले बालक के रूप में भी उन्होंने अपने आगमन की सूचना दी

थी । पाठशाला में तथा अपने अध्ययन कक्ष का परित्याग करने के उपरान्त भी उन्होंने स्वयं को 'गुरुओं का गुरु' घोषित किया । वे प्रेम एवं विवेक के प्रति-मूर्ति थे । जिस दिन उन्होंने यह घोषित किया था कि "वे आपस्तम्भ सूत्र एवं भारद्वाज गोत्र के साई बाब हैं जिसने शिरडी को अपना आवास बनाया था ।" उसी दिन से सत्य साई बाबा ने सहस्रों जिज्ञासुओं को नीरोग किया, सान्त्वना दी, एवं उनका सुधार किया तथा सपने चारों ओर आनन्द, साहस एवं शांति का प्रसार किया । चतुर्दश वर्ष की आयु में उन्होंने घोषित किया था कि अपनी बत्तीस वर्ष की आयु के पश्चात् वे अन्य कार्यों की अपेक्षा उपदेश में अधिक व्यस्त हो जायेंगे ।

अपने विषय में इस भविष्यवाणी की सत्यता के अनुरूप बाबा उदारता पूर्वक लिखते एवं बोलते रहे हैं । यह उनकी कृपा को व्यक्त करती है । १९५३ ई० से अधिकांश वार्ताओं में उपस्थित रहने का एवं उनके लेखों का सनातन सारथी के लिये अंग्रेजी में अनूदित करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त रहा । बाबा की वार्ताओं का यह प्रथम भाग है तथा मैं आशा करता हूँ कि आप इसका स्वागत करेंगे । इसे बारम्बार पढ़िये तथा इसके उपदेशों पर चिन्तन कीजिये स्मरण रहे कि ये इस युगीन अवतार के प्रामाणिक शब्द हैं ।

मैं यह भी आशा करता हूँ कि ये पृष्ठ आप लोगों को मेरे सहित भगवान् श्री सत्य साई बाबा के निकट शीघ्रतर लायेंगे । आप उनसे प्रेम, करुणा एवं ज्ञान ग्रहण करें जिसे वे मूर्तिमान किये हैं तथा जिस महती योजना को व्यक्त करने के लिये वे अवतरित हुये हैं, उसमें एक साधन बनो ।

प्रिय साथी ! साहस एवं विश्वास !! विश्वास एवं साहस तथा एक दिन हम लोग उसके पास पहुँचेंगे जिसे हम अभी विभिन्न नामों से पुकारते हैं तथा भिन्न-भिन्न रूपों में सोचते हैं ।

प्रशान्तिनिलयम,
नवरात्रि, १९६२

एन० कस्तूरी

विषय-सूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ
१.	मानस भजरे	१
२.	शरणंगति	८
३.	पथ-प्रदर्शक परमेश्वर	१७
४.	दिव्य जीवन	२२
५.	जप सहित ध्यान	२५
६.	चुनौती की मनोवृत्ति	३२
७.	साहस	३९
८.	अनेक पथ	४३
९.	परीक्षा करो और अनुभव करो	५०
१०.	विवेक एवं वैराग्य	५६
११.	नर नारायण	५९
१२.	सहनशीलता	६६
१३.	समर्पण द्वारा आनन्द	७०
१४.	चतुर किसान	७७
१५.	बहादुर बनो	८२
१६.	शिक्षण	८७
१७.	गुण एवं पैसे	९४
१८.	शिक्षा एवं शान्ति	९८
१९.	चन्द्रमा एवं मन	१०३
२०.	बुद्धिवाद नहीं, शास्त्रवाद भी नहीं	११०
२१.	जड़ और चैतन्य	११६
२२.	भीतरी पर्दा	१२४

२३.	मन्दिर	१३०
२४.	बहुमति एवं एकमति	१३६
२५.	मनुष्य एवं मानस	१४२
२६.	संसार—मेरा महल	१४८
२७.	अन्तस्थ सत्य	१५३
२८.	सर्वोत्तम बलवर्द्धक दवा	१५८
२९.	सत्य साई गीता (i)	१६३
३०.	सत्य साई गीता (ii)	१७०
३१.	सत्य साई गीता (iii)	१७८
३२.	सत्य साई गीता (iv)	१८४

सहतीर्थ यात्रियों से

सुनी क्या तुमने, बाबा की बात ?
कहीं जनसभा में,
सुनी क्या तुमने, बाबा की बात ?
भाषण, इसे नहीं वे कहते हैं,
नहीं, ऐसा कह सकते हैं, आप ।

ऊँचे स्वर से चिल्लाना, उनका काम नहीं,
जोरदार भाषण का, वे लेते नाम नहीं,
जनसमूह को उकसाना, उनका भाव नहीं,
व्यंग्य-बौछार या उपहास, उनका अभिप्राय नहीं ।

कभी हिचकते नहीं, सोचते नहीं,
कभी भनभनाते नहीं, अटकते नहीं,
कभी चिंतन करते नहीं,
फिर भी, तुम्हें विस्मय-विभोर कर देते हैं—
कि तुम आये क्यों ?

विचारों के संचयन में,
नोटों के संजोजन में,
भाषणों की सजावट में,
कृत्रिम रेशमी फ़ीतों की झालरों में,
चमकीले ग्रन्थों से, उद्धरण लेने—सजाने में,
कभी एक पल नहीं खोते हैं,
और न कभी भटकते हैं ।

२३.	मन्दिर	१३०
२४.	बहुमति एवं एकमति	१३६
२५.	मनुष्य एवं मानस	१४२
२६.	संसार—मेरा महल	१४८
२७.	अन्तस्थ सत्य	१५३
२८.	सर्वोत्तम बलवर्द्धक दवा	१५८
२९.	सत्य साई गीता (i)	१६३
३०.	सत्य साई गीता (ii)	१७०
३१.	सत्य साई गीता (iii)	१७८
३२.	सत्य साई गीता (iv)	१८४

सहतीर्थ यात्रियों से

सुनी क्या तुमने, बाबा की बात ?
कहीं जनसभा में,
सुनी क्या तुमने, बाबा की बात ?
भाषण, इसे नहीं वे कहते हैं,
नहीं, ऐसा कह सकते हैं, आप ।

ऊँचे स्वर से चिल्लाना, उनका काम नहीं,
जोरदार भाषण का, वे लेते नाम नहीं,
जनसमूह को उकसाना, उनका भाव नहीं,
व्यंग्य-बौछार या उपहास, उनका अभिप्राय नहीं ।

कभी हिचकते नहीं, सोचते नहीं,
कभी भनभनाते नहीं, अटकते नहीं,
कभी चिंतन करते नहीं,
फिर भी, तुम्हें विस्मय-विभोर कर देते हैं—
कि तुम आये क्यों ?

विचारों के संचयन में,
नोटों के संजोजन में,
भाषणों की सजावट में,
कृत्रिम रेशमी फ़ीतों की झालरों में,
चमकीले ग्रन्थों से, उद्धरण लेने—सजाने में,
कभी एक पल नहीं खोते हैं,
और न कभी भटकते हैं ।

भड़कीले गर्वीले वक्ता नहीं,
तालियों के भूखे नहीं,
प्रसरोन्नमत्त वक्ता नहीं,
चक्कर में डालते नहीं,
पूर्वरचित भाषण देते नहीं,
भाषण तो कभी देते नहीं ।

धरती के,
सूखे पेड़-पौधे-लतिकाओं के
जीवनदाता, पावसघन हैं वे ।
बात-चीत करते हैं, तुमसे और तुमसे,
यहां जो एकत्र हैं, उनमें, प्रत्येक से,
हृदय में वेदना का दर्द लिये, रिक्त कर प्रत्येक अर्जुन से,
जो भयभीत होता है, जीवन-संग्राम में, युद्ध करने से ।

तुम भी, सोचते हो,
वे आये हैं तुम्हारे पास, अरु केवल तुम्हारे लिये ।
मच के चहुंओर दृष्टि फेरते हुए, मौन,
जब देखते हो उनको,

तब "सर्चलाइट" सी उनकी आखें, वृत्ताकार पेंग मार जाती हैं ।
अहा ! तुम कितने भाग्यशाली हो !
वे मन्द मुसकाते हैं अरु तुम्हें मुग्ध कर लेते हैं, निज मुसकान से ।
तब तुम कितनी कठिनाई से अपने नयने को दूर हटा पाते हो,
उस मनहर बदन से ।

वह कितना आकर्षणमय है,
अरु कितना ईश्वरतामय है !
अतिशय कठिनाई से,
उस पकड़ से, तुम खींच सकते हो, अपने खोये हृदय को ।

अहा ! वह पकड़ भी, कितनी शीतल है ।
मौन गहन बन जाता है, यद्यपि जनसहस्र आसन जमाये बैठे हैं,
अरु निरन्तर बाट देखते हैं, घंटों-घंटों तक ।
फिर भी, नीरवता बनती है गहनातिगहन,
हिमालय सी निस्तब्धता व राकानिशि का नीरवपन ।
'प्रेमस्वरूपवालो !" वह सुनहला समय है आया !
खुलगये हैं स्वर्ग के द्वार !
स्वर्ग की मधुमक्खियों से,
पारिजात पुष्पों से
संचित मधु से मधुर स्वर !
सुस्पष्ट है, रणभेरी सा
उनका आह्वान !
अहा ! करता है कितना स्पन्दन-संचार,
आत्मा में भरता है, अतिशय आनन्द अपार,
बन्धन-मुक्त करता, बहता जैसे गंगाधार,
जोते-बोये खेतों में, उपजाता अन्न अपार ।
उमड़ता है, फैलता है, जैसे 'गरसोपा' प्रपात,
पनचक्की के पंखों तारों से, जनता है 'शक्ति' अपार ।
वार्ता वह, निर्झर सी स्वच्छ—शुचितामयी,
सिखाती सत्य, पर उपदेश नहीं,
गुत्थियों को सुलझाती, प्रश्नों को शान्त कर देती,
साहस कर, मन में, सिर उनका उठने के पूर्व ही ।
करती है व्याख्या वह
देती है शोभा, सान्त्वना, व्यथितों को ।
'आदेश' देते हैं,
गर्व को झुकाना माँगते हैं:—

शासक हो या सेवक,
बिना झुकाये, किसी को, नहीं छोड़ते हैं,
अरु मूर्ख-पागलों को, मृदुल मारते हैं।

हँसी करते हैं, फुसलाते हैं,
सबके नयनों में धूल झोंकने वालों को,
निश्चय ही मात कर देते हैं।
अतीत की निज वाणी को,
उद्धृत करते हैं बार-बार,
निज अवतारों की तथ्यता को,
सुस्पष्ट बताते हैं सविस्तार।

हृदय से निकसी कविता वह,
चिर सुषुमामयी, जगमगाती है,
स्फटिक सी सत्य की तस्वीर खींचती है —
कथा-कहावत चमकदार,
फुलझड़ियों की भरमार,
प्रति घंटा, प्रति मिनट, प्रति सेकण्ड,

टुनटुनाती, झनझनाती तेलुगु भाषा की यह झन्कार।
प्रति शब्द एक मन्त्र, प्रति मुहावरा एक सूत्र,
प्रति वाक्य एक गायत्री, प्रति वार्ता एक उपनिषद्।
कूप या तड़ाग नहीं, सरिता भी नहीं, उनका परिज्ञान;
वह तो महासागर है, ईश्वरीय विवेक का।

* * *

अहा ! उन सुरीले शब्दों से,
करुणा है झरती, प्रात ओसकणिका सी,
स्वप्न से जगाती हुई, प्रति प्राणी के अन्तःकरण पर।

तुम्हारी जडों को, करती आहार दान,
रस को करती है, शतत् वर्धमान,
कलियों को करती विकासमान,
दलों को देती है रंग दान ।
देकर उनको सौरभ महान्,
मधुमक्खियों को करती है निमन्त्रण प्रदान,
यों ही गीतमय शब्दों से,कोषों को करती है परिपक्वमान ।
शब्द वे, लघुबीजों के समान,
पर उनका यह चमत्कार कितना अतिशय महान् !
जब पड़ते हैं तब हृदय पाषाण पर !!
कैसा विस्मयों का विस्मय !
वहाँ, यह उगता है,
अंकुरित अरु पत्रित होता है !!
नन्हीं-नन्हीं सी जड़ें,
रेशम सी अर्धनिहित !
भागती हैं इधर-उधर,
करती हैं प्रस्तरखण्डों से टिक्-टिक् बात-चीत,
जल्पती हैं, अनुनय-विनय करती हैं सुरसपान के लिये ।
अन्ततः होती हैं सफल,
बढ़ती हैं अरु बढ़ती हैं वृक्ष रूप में,
और बदल देती हैं तुम्हारे हृदय-पाषाण को,
मृदुल मृत्तिका-रूप में ।
वार्ता है शीतल, पर नहीं हिमानी है,
है उष्णतामयी, पर नहीं दग्धकारिणी है.
बरसाती है (करुणा), पर नहीं जलप्लावनी है ।
निवारती है कष्टों को,

उत्साह देती है शोकाकुलों को-विलापतों को,
जलाती नहीं विश्रान्ति देती है,
विषैली नहीं, स्वास्थ्य देती है,
मलहम सी, अरु शान्ति देती है;
कल्पित कथा नहीं,
वह सत्य, सम्पूर्ण है।

* * *

हर वाक्य, बिखेरता आनन्द है,
दग्ध करता नैराश्य है,
सुमति-संचारक, ध्यान-प्रेरक है,
दुरित दुराशा, शैथिल्य-शामक है।
वह तुम्हें खींचता है निकटर,
तड़ातड़ तोड़ता, चिर बन्धन स्तर,
फूंकता है साहस-मन्त्र वर,
मेटता है बहुमत मतान्तर।
किसी आदर्श को लादते नहीं,
फिर भी, सभी झगड़ों को शान्त करते हैं सही,
द्योतक (कितने मनोहर!), कभी कष्टदायक नहीं,
भय वारक, निरस्त्रकारक सदैव ही।
उन्मुखों के परीक्षक, शोक-सन्तप्तों के उद्धारक हैं वही,
'कर्म, व्यवहार अरु चर्या' पर बल देते हैं सही,
'अनुभूति, विश्वास अरु क्रिया' हेतुं आग्रह करते हैं नित्य ही।
सम्पूर्ण श्रोताओं से पुकार कर कहते हैं:—
"नक्कालों, व्यर्थवादियों, अन्धों के अन्धे नेताओं से,
सत्ता अरु सम्पत्ति से स्वर्गद्वार खोलने वालों से,
वंशवृक्ष की उन्नत शाखाओं के गण्य-गर्वीलों से,

कमाने-खर्चने में चाहने-काम करने में
दौलत जमाने में, देखभाल करने में,
व्यस्त व्यक्तियों से,
सदैव दूर रहने के लिये ।
वार्ता करते जब सुनते हो,
मनमें चुपचाप प्रतिज्ञा करते हो:--
"तीर्थयात्रा पर, सत्वर कदम उठाने के लिये ।"
पंख अपने फड़फड़ाओ, गगन में ऊँची उड़ान भरो !
सोचो—तुम सिंह हो, ठगे गये जो भेड़ के मिमियानों से ।
तुम एक अमूल्य हीरा हो, चिपके थे जो 'रागों' से ।
किसी कलह में लीन करते हैं नहीं,
किसी अमित्रको भी, रुष्ट करते हैं नहीं ।
जो प्यासे हैं, भूखे हैं, लँगड़े, या अंधे हैं,
या चढ़ते अरु फिसलते हैं,
उन सब का स्वागत नित करते हैं ।
डूबते को उबारते हैं, दुर्बलों को गले लगाते हैं ।
व्यथा हरते हैं, निज कृपा का निश्चय कराते हैं ।
खोये पथ की, हम सबको, पुनः स्मृति दिलाते हैं ।
यात्रान्त के सुखद आनन्द का वर्णन भी सुनाते हैं ।
हमारे नयनों को खोलते, शक्ति अंगों को देते हैं ।
अपने पथ के ढूंढने वाले, यत्नशीलों का उत्साह बढ़ाते हैं ।
सोते को जगाते हैं, बैठे को खड़ा करते हैं,
खड़े को गतिशील करते हैं, गतिमानों को पहुँचाते हैं गन्तव्य पर ।
हमारे भारी बोझ को वहन करने के लिये,
स्वच्छन्दी, दलित, रोगियों को मुक्त करने के लिये,
सत्य की महिमा-स्थापन के लिये,
असत्य को अवमान्य करने के लिये,
तुमसे घोषित करते हैं, व्यक्त करते हैं, बताते हैं,

अपने शुभागमन का जोरदार प्रतिपादन करते हैं।
अहा ! यह क्या है ? क्या भाग्य है ! क्या ही कृपा है !!
वे मधुर बातें ही, संगीत बन जाती हैं।
ओ मनोहर गीत ! प्रार्थना करने की सीख देती हैं।
प्रचण्ड लहरों को प्रशान्त कर देती हैं,
नाजुक नाडियों को फौलादी बना देती हैं,
सचल संकल्पों को सुदृढ़ता दे जाती हैं !
धर्म ! सत्य ! प्रेम ! के प्रति आत्मन् को उन्मुख बना देती हैं।
और जब यह बन्द हो जाती है,
तुम्हारी आंखियां खुल जाती हैं,
तब, उनको तुम, अश्रुपूरित पाते हो।
साथी भी रोता है, जैसे शिशु, माँ को पाने के लिए,
किन्तु, क्यों, 'दृष्टि उठाओ, देखो,' मंच छोड़, वे कहीं चले गये,
तुम गर्व करो कि यह सुअवसर तुम्हें प्राप्त हुआ।
मैं जानता हूँ, अनिवार्य रूप से इसी क्षण से:—
तुम ऊपर चढ़ोगे, प्रयत्न करोगे, साहसी आत्मा बनोगे,
अर्जुन ! अश्वों को हाँकते सीधे,
कृष्ण सहित, शस्त्र उठाओगे,
रणभूमि में, संग्राम करने के लिये।
सुना तुमने बात करते, तुम परम् भाग्यशाली हो !

अंग्रेजी कविता के रचयिता—एन० कस्तूरी
हिन्दी भावानुवाद्—राजाराम सिंह

१. मानस भजरे

(प्रशान्तिनिलयम, विजयदशमी, १९५३)

तुम्हें विदित है कि जब मैं हाई स्कूल में पढ़ रहा था, एक दिन मैं स्कूल से चला आया; अपनी पुस्तकों को फेंक दिया और घोषित कर दिया कि मेरा कार्य मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। तेलुगू पण्डित ने अपने भाषण में उस संध्या की घटना का आप से वर्णन किया। हाँ, जब उस दिन मैं सार्वजनिक रूप से साई बाबा के रूप में आया और तेलुगू पण्डित के घर से आकर उस बगीचे में भीड़ को जो प्रथम भजन सिखाया, वह था :—

"मानस भजरे गुरु चरणम्।
दुस्तर भवसागर तरणम्॥"

जन्म-मृत्यु के अनन्त चक्र में कष्ट भोगने वालों को मैंने 'गुरु' के 'चरणों' की पूजा करने के लिए कहा था और वह 'गुरु' स्वयं ही घोषणा कर रहा था तथा अपने शरणागतों के भार को अपने ऊपर लेने के लिए जो पुनः अवतरित हुआ था। मानवता को वह मेरा प्रथम सन्देश था। 'मानस-भजरे'—'मन में पूजा करो'—मुझे तुम्हारे फूलों के हारों एवं फलों की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ये वस्तुएं एक-दो आने की मिलती हैं। ये सत्यतः तुम्हारी नहीं हैं। जो अपना है, जो स्वच्छ एवं सुवासित है, सद्गुण एवं अबोधता की सुगन्ध से तथा परिताप के अश्रुकणों से जो प्रक्षालित है वही मुझे प्रदान करो। अपनी भक्ति के प्रदर्शन स्वरूप पुष्पमालाएं एवं फल जो तुम प्रदर्शनी की वस्तुएं लाते हो, अधिक निर्धन व्यक्ति, जो इन्हें लाने में असमर्थ हैं, अपमानित होते हैं और वे दुःखानुभव करते हैं अपनी बेबसी पर। वे अपनी भक्ति का उस प्रकार भव्य प्रदर्शन नहीं कर सकते हैं जिस प्रकार तुम लोग कर रहे हो।

भगवान् को अपने हृदय में प्रतिष्ठित करो और उसे अपने कर्मों के फल तथा आन्तरिक विचारों एवं भावनाओं के सुमन अर्पित करो। यही पूजा मैं अत्यधिक पसन्द करता हूँ और यही भक्ति मुझे सर्वाधिक प्रिय है।

दुकानों में चीजें अलग-अलग पैकेटों में रखी जाती हैं और प्रत्येक दुकानदार एक विशिष्ट वस्तु में अथवा वस्तुओं के एक 'सेट' में विशेषत्व रखता है। किन्तु, एक प्रदर्शनी में सैकड़ों दुकानें सम्मिलित रहती हैं और सब प्रकार की चीजें प्राप्त होती हैं। वहाँ पर वातायनों की सजावट की व्यवस्था एवं प्रदर्शन अधिक मात्रा में है। जिस प्रकार दुकानों में 'पैकेट' प्राप्य होते हैं, उसी प्रकार अब तब मैं साधारणतया तथा वैयक्तिक परामर्ष देता रहा हूँ और वैयक्तिक प्रश्नों का उत्तर देता रहा हूँ। आज का यह 'भाषण' आपके लिए नूतन अनुभव है। आज मैं एक जनसमूह के सामने बोल रहा हूँ, यह आपके लिए नई बात हो सकती है, पर मेरे लिए यह नई नहीं है।

मैंने पूर्व समय में भारी भीड़ को परामर्श दिया था यद्यपि इस अवतार में नहीं। निराकार जब कभी साकार रूप धारण करता है, तब यह एक 'उद्देश्य' की पूर्ति करता है और इसे वह नाना प्रकार से करता है। किन्तु 'मानव' के पुनःशिक्षण का उद्देश्य किसी भी युग या काल में बराबर बना रहता है।

इस 'जीवन' के प्रथम षोडष वर्ष की अवधि में, जैसा मैंने तुम लोगों से प्रायः कहा है, बाल-लीला का प्रभुत्व रहा है और द्वितीय षोडष वर्ष इस पीढ़ी को सन्तोष प्रदान करने के लिए महिमा में ही अधिकांश रूप से व्यतीत हो रहा है। सन्तोष या हर्ष और तृप्ति क्षणस्थाई संवेग हैं। तुम्हें मनोदशा को पकड़ना है और इसे चिरसम्पत्ति—आनन्द—बना लेना है। बत्तीस वर्ष के पश्चात् तुम मुझे भ्रष्ट मानवता को उपदेश या शिक्षा के कार्य में और विश्व को सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम के पथ पर संचालित करने में अधिकाधिक व्यस्त पाओगे।

इसका अर्थ यह नहीं है कि तदन्तर मैंने **लीला** एवं **महिमा** को अपनी **क्रियाशीलता** से पृथक् करने का संकल्प किया है। मेरा इतना ही मतलब है कि तदन्तर **धर्म** की पुनर्स्थापना, मानवमन की कुटिलता को सुधारना एवं मानवता का **सनातन धर्म** की ओर पथप्रदर्शन करना ही **मेरा मुख्य कर्म** रहेगा।

संशय एवं व्यर्थ तर्क के चक्कर में न पड़ो, यह प्रश्न न करो कि कैसे और क्या मैं यह सब कर सकता हूँ। वृन्दावन के ग्वाल-बालों ने भी सन्देह किया था कि जो बालक, उनके मध्य बड़ा हुआ था, गोवर्धनगिरि उठा सकेगा और उसे ऊपर उठाये रहेगा! आवश्यक वस्तु है **विश्वास** और अधिक **विश्वास**।

एक बार कृष्ण और अर्जुन एक साथ खुली सड़क पर जा रहे थे। आकाश में एक चिड़िया को देखकर कृष्ण ने अर्जुन से पूछा, "क्या यह पेडुकी है?" उसने उत्तर दिया, "हाँ, यह पेडुकी है।" उन्होंने पुनः अर्जुन से पूछा, "क्या यह बाझ है?" अर्जुन ने तुरन्त उत्तर दिया, "हाँ, यह एक बाझ है।" "नहीं अर्जुन! यह तो मुझे कौवा जैसा दिखाई देता है। क्या यह कौवा नहीं है?" कृष्ण ने पूछा। अर्जुन ने उत्तर दिया, "मैं खेद प्रगट करता हूँ। निस्सन्देह यह कौवा है।" कृष्ण हँसने लगे और अपने द्वारा दिए गये निदेशों से सहमत होने के लिए अर्जुन को फटकारा। किन्तु, अर्जुन ने कहा, "मेरे लिए आपके शब्द अपनी आंखों के प्रमाण से भी अत्यधिक वजनदार हैं; आप इसे कौवा या पेडुकी या बाझ बना सकते हैं और जब आप इसे कौवा कहते हैं तो यह अवश्यमेव कौवा होगा। **प्रश्नातीत विश्वास ही आध्यात्मिक सफलता की सड़क है।**

"स्मरण रखो, भगवान् **भक्त** को नहीं प्यार करता है, किन्तु अपनी **भक्ति** को प्यार करता है। भगवान् की कृपा, वृष्टि की भाँति है जो सर्वत्र एक समान-रूप शुद्ध जल बरसाती है, किन्तु इसका स्वाद उस धरती के अनुरूप बदल जाता है जिससे वह बहता है। उसी प्रकार भगवान् का शब्द भी किसी को मधुर

एवं किसी को कटु लगता है। भगवान् के नियम रहस्यमय या गूढ़ हैं—उन्होंने विदुर को इन शब्दों से आशीर्वाद दिया, "नष्ट हो जाओ" और दुःशासन को इन शब्दों से—'सहस्रों वर्ष जीवित रहो।' उनका उद्देश्य था कि विदुर का 'अहं' नष्ट हो जायेगा और दुःशासन दशाब्दियों तक इस संसार की बुराइयों एवं कष्टों को झेलता रहेगा। भगवान् की क्रियाओं के पीछे वास्तविक कारणों को तुम नहीं जानते हो। तुम अन्य मनुष्य के उद्देश्यों को भी नहीं समझते हो जो अधिकांश रूप में, हर बात में तुम्हारे समान हैं और जो समान उद्देश्यों से प्रेरित होते हैं एवं जिनकी समान इच्छायें एवं अनिच्छायें हैं। किन्तु जो इतना दूर है, जो मनुष्य के स्तर से अत्यन्त ऊपर है, उसके उद्देश्य को कितनी आसानी से खोज लेते हो! जिस प्रकार वायुमण्डल मछली के लिए अनोखा होता है उसी प्रकार किसी अनोखी वस्तु के प्रति तुम कितनी तेज़ी से बातें करते हो और निर्णय करते हो।

चार प्रकार के व्यक्ति होते हैं। **मृतक**—जो परमात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं और घोषणा करते हैं कि केवल वे ही अस्तित्व रखते हैं, अनाश्रित, मुक्त, स्वनियमित एवं स्वसंचालित; **रुग्ण**—जो ईश्वर को किसी आपत्ति में पड़ने पर पुकारते हैं या जब वे आवश्यक सहायता के सामान्य स्रोतों द्वारा परित्यक्त अनुभव करते हैं; **मूर्ख**— जो यह जानते हैं कि परमेश्वर शाश्वत साथी एवं रखवाला है किन्तु वे कभी काल उसे स्मरण करते हैं जब ये विचार प्रमुख एवं शक्तिशाली रहते हैं; और अन्ततः **स्वस्थ** व्यक्ति हैं जो परमेश्वर में दृढ़ विश्वास रखते हैं और निरन्तर उसकी सुखद सृजनात्मक उपस्थिति में निवास करते हैं।

संसार के प्रहारों के अनुभव के कारण तुम मृत्यु से जीवन एवं रुग्णता से स्वस्थता की ओर चलते हो। संसार मनुष्य के पाठ्यक्रम का एक अत्यन्त अनिवार्य अंग है, यद्यपि अशान्ति की व्यथा सुज्ञान के शिशु को धारण किये रहती है। पीड़ायें भी अच्छी वस्तु है; क्योंकि वे नव-

जीवन की द्योतक हैं। तुम अशान्ति से प्रशान्ति, प्रशान्ति से प्रकान्ति और प्रकान्ति से परम ज्योति प्राप्त करते हो। यह दिन और रात के परिवर्तन समान है; यह आनन्द और दुःख का बारम्बार आगमन। रात और दिन जुड़वाँ बहनों के समान हैं, धरती की ज़रखेज़ी या उत्पादकता के लिए जीवन को क्रियाशील एवं तरोताज़ा बनाने के लिए दोनों आवश्यक हैं। वे ग्रीष्म एवं शीत ऋतु के समान हैं।

कुछ लोग हैं जो मुझसे कहते हैं, 'बाबा ग्रीष्म के उत्ताप को कम कर दो।' किन्तु ग्रीष्म की उष्णता में पृथ्वी सूर्य के आवश्यक सत्व को ग्रहण करती है ताकि वर्षा के आने पर वह अत्यधिक अन्न उत्पन्न कर सके। परमेश्वर की योजना 'शीत' एवं उष्णता दोनों है। तुम्हें केवल इसे जानना है और दोनों को मूल्यवान मानना है। प्रकृति में कंटीले एवं कांटों रहित पौधे हैं। ज्ञानी मनुष्य दोनों का महत्व जानता है। वह कांटे रहित पौधों को लगाता है और कंटीले पौधों से उसे घेर देता है ताकि जिसे वह पालता है उसे हानि न पहुंचे। कर्म मनुष्य की रक्षा कर सकता है और उसे मार भी सकता है। यह काटने वाली बिल्ली के समान है। बिल्ली अपने बच्चों को दाँतों से दबाती है ताकि उन्हें वह सुरक्षित स्थान में ले जा सके और यह चूहे को दाँतों से काटती है ताकि उन्हें मारकर खा सके। बिल्ली के बच्चे बनो और माया तुम्हें प्यारी माँ की तरह बचायेगी। चूहा बनते ही तुम नष्ट हो जाओगे।

परमात्मा जीवात्मा को अपनी ओर आकृष्ट करता है। यह सम्बन्ध या आकर्षण रखना दोनों का स्वभाव है, क्योंकि वे एक ही हैं। वे लोहे एवं चुम्बक के समान हैं। किन्तु, यदि लोहा जंगदार है और गन्दगी की तहों से आच्छादित है, तब चुम्बक उसको आकृष्ट करने में असमर्थ होता है। अपने यथार्थ स्वभाव में चमको और परमेश्वर तुम्हें अपनी छाती से लगायेगा। परीक्षाओं एवं कष्टों के द्वारा ही यह सफाई की जाती है। इसी कारण कुन्ती ने कृष्ण से प्रार्थना की, "हमें सदैव दुःख दीजिये ताकि हम लोग आपको कभी नहीं भूलें।"

वे आहार एवं अन्य नियन्त्रणों के समान है जो डाक्टर नामस्मरण की दवा के प्रभाव की पूर्ति हेतु बताता है। साई सर्वजनप्रिय हैं। इसलिए जो भी नाम आपको आनन्द देता हो उसे तुम अपना सकते हो। इस संसार में मनुष्य जीवधारी के रूप में अनेक पीढ़ियों के कर्मों द्वारा जो स्वभाव एवं चरित्र उपार्जित करता है, उसी के अनुसार उसकी रुचियों में भेद होता है। अपने सिर दर्द को दूर करने के लिए काफी के होटल का स्वामी पड़ोसी डाक्टर के पास टिकिया (दवा की) के लिए जाता है और डाक्टर सिर दर्द होने पर काफ़ी के होटल में एक कप काफी के लिये जाता है और सोचता है कि इससे वह नीरोग हो जायेगा। मनुष्य ऐसे ही होते हैं—'लोको भिन्ना रुचि:'।

ज्ञानी कहता है, 'सर्वम् ब्रह्म मयम्।' दूसरा एक योगी कहता है, 'सर्व शक्ति:।' और तीसरा एक भक्त कहता है, 'सब भगवान् की लीला है।' हर एक अपनी रुचि के अनुसार तथा आध्यात्मिक साधना में अपनी प्रगति के अनुसार कहता है। आतुरता न करो और न उनकी निन्दा करो; क्योंकि वे सभी एक ही सड़क पर चलने वाले तीर्थयात्री हैं।

साधना मन को और इच्छाओं को नियन्त्रित करने के लिये आवश्यक है, क्योंकि मन इन्हीं इन्द्रियों के पीछे दौड़ता है। यदि तुम समझते हो कि सफलता पाने में समर्थ नहीं हो, तब भी साधना का परित्याग मत करो किन्तु और भी अधिक शक्ति के साथ इसे करो; क्योंकि यह वह विषय नहीं है जिसमें उत्तीर्णांक प्राप्त करने के लिये तुम्हें विशेष अध्ययन करना आवश्यक है। क्या यह बात नहीं है ? साधना का अर्थ है आन्तरिक स्वच्छता एवं बाह्य स्वच्छता। यदि स्नान के उपरान्त तुम बिना धुले कपड़े पहनते हो तो तुम प्रसन्नता या ताज़गी का अनुभव नहीं करते हो। क्या तुम नहीं करते हो ? बिना स्नान किये धुले कपड़े पहन कर भी तुम ताज़गी का अनुभव नहीं करते हो। दोनों की आवश्यकता है—बाह्य एवं भाव—ऊपरी एवं आन्तरिक।

जब तुम कहते हो कि पुलिस तुम्हें पकड़ेगी अथवा भूत तुम्हें पीटेगा, तब

बच्चे तुम्हारे शब्दों पर विश्वास कर लेते हैं। वे भय, विनय एवं विश्वास से भरे हैं। किन्तु बड़े होने पर एवं अनेक प्रकार के सिद्धान्तों एवं कट्टर मतों से दिमाग के भर जाने पर तुम्हें अपने विवेक का प्रयोग करके परमेश्वर की खोज करनी पड़ती है—एक कठिन पथ की। यह मैं तुमसे अवश्य कहूँगा कि इससे कोई छुटकारा नहीं है। सभी प्राणियों को परमेश्वर तक किसी न किसी दिन पहुंचना है, चाहे लम्बे पथ से अथवा छोटे पथ से।

२. शरणंगति

(प्रशान्तिनिलयम, महाशिवरात्रि, १९५५)

मैं वक्तृत्ता नहीं देता हूँ। मेरी वार्ता सम्भाषण की तरह है। मेरी इच्छा है कि मैं जो कहता हूँ उसे तुम लोग अक्षरशः पालन करो; क्योंकि तुम्हारा आनन्द मेरा आहार है। जो सलाह मैं तुम्हें देता हूँ, उसका अनुसरण करने मात्र से ही तुम आनन्द प्राप्त कर सकते हो। इसी कारण, मैं विशेष वल देता हूँ कि जो कुछ मैं कहता हूँ उसे तुम लोगों को ध्यानपूर्वक तथा सावधानी से सुनना चाहिये। यह सार्वजनिक भाषण नहीं है, जिससे तुम जीवन के लिये नई शिक्षायें नहीं खोजते हो।

भगवान् प्रेम के पहाड़ हैं और असंख्य चीटियां उसके माधुर्य को ले जाकर भी उसके अत्यधिक राशि को समाप्त नहीं कर सकती हैं। वह कृपा का महा-सागर है और उसका कोई सीमित छोर नहीं है। उसकी अनुकम्पा प्राप्त करने के लिये तथा यह भी समझने के लिये कि वह हर वस्तु में व्याप्त है और वस्तुतः वही हर वस्तु है, भक्ति ही सरलतम मार्ग है।

शरणंगति। अर्थात्, हर चीज को उसकी इच्छा पर छोड़ देना उच्चतम कोटि की भक्ति है। एक समय एक ब्राह्मण एक नदी के सोते को उस जगह से पार कर रहा था जहां कुछ आदमी कपड़े धो रहे थे। उन्होंने देखा कि उसके कन्धे पर एक सुन्दर नूतन रेशमी उत्तरीय है और वे सब सामुहिक रूप से उस पर टूट पड़े और चिल्लाने लगे कि यह राजमहल का है, उन्हें धोने के लिये दिया गया था किन्तु चोरी चला गया था और उसका पता नहीं लगा था। जब धूंसों की वर्षा उस पर होने लगी तब उस वेचारे ब्राह्मण ने आर्त स्वर से 'नारायण, नारायण' चिल्लाया। इसलिये वैकुण्ठवासी नारायण अपने

आसन से उठे और आगे बढ़े। किन्तु, एक ही क्षण में वे वापस चले गये और अपना आसन ग्रहण कर लिया। उनकी सहचरी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उनके उस विचित्र आचरण का कारण उनसे पूछने लगीं। नारायण ने कहा, "बदमाशों की मांद में पड़े हुए उस बेचारे ब्राह्मण की मैं सहायता करना चाहता था, किन्तु उसने उनको मारना शुरू कर दिया है और घूँसे के बदले घूँसे मार रहा है। अब मेरी सहायता की आवश्यकता नहीं है।"

जब भक्ति छोटे से पौधे के रूप में पैदा होती है तब कोमल पौधे को बचाने के लिये चहारदीवारी की आवश्यकता होती है। वह चहारदीवारी सनातन धर्म है—उसके नियम, विधियां, नियन्त्रण, निर्देशन एवं आदेश हैं। जब फल हरा रहता है तब भयंकर तूफान चलने पर भी नहीं गिरता है; किन्तु जब पूर्णतया पक जाता है तब वह निःस्तब्ध निशा में भी टपक पड़ता है। जरा सी आग पर यदि हरी चीज़ रख दी जाय तो वह सुलगने लगेगी; किन्तु दावाग्नि हरिततम वृक्ष को, जो उसकी गति को रोकता है, भस्म कर देगी। आवश्यकता है अहंकार पर विजय प्राप्त करने की। बैल अहंकार में हँकड़ता है 'हम हैं, हम हैं।' इसलिये, जब वह कुछ दिनों का हो जाता है तब तुम इसे उसकी माँ से पृथक् एक खूँटे से बांध देते हो। तुम उसके अन्तिम दम तक उससे काम लेते हो। किन्तु कहना यह है कि वह पशु विनम्रता की शिक्षा तिस पर भी नहीं सीखता है। मरने के पश्चात् जब उसकी खाल ढोलक के ऊपर कसकर मढ़ी जाती है तब भी वह अहंकार पूर्वक प्रतिध्वनि करता है—हम, हम, हम। इसलिये खाल को पतली रस्सी के रूप में काटा जाता है और जब रस्सियां खींची जाती हैं तब बैल बताता है कि इन सब दण्डों के भोगने से वह लाभान्वित हुआ—वह दबे स्वर में कहता है 'तुम, तुम, तुम' और इसका अहंकार लुप्त हो जाता है। हरीदास भगवान की महिमा का गान करता हुआ गलियों से गुजरता है। उसके दाहिने हाथ में दो झांझ होती हैं—यह अच्छे-बुरे, हर्ष-विषाद, दुःख और सुख के शाश्वत द्वैत हैं। वह अपने बायें हाथ से संसार रूपी तम्बूरा बजाता है। संसार वह ध्वनि है जिससे उसके गीतों का सामंजस्य

करना है—यह श्रुति है। किन्तु श्रुति एवं समय का निर्धारण दोनों ही उसके मुख से निःसृत होने वाले ईश्वर महिमा के गीत के प्रभाव को बढ़ाने के उद्देश्य हेतु हैं।

मुझे स्मरण है कि पूर्व साई राम शरीर में महाराष्ट्र में मैं एक प्रश्नकर्त्ता को समझा रहा था कि भक्ति के तीन भेद हैं :—पहला, विहंग भाव है, जिसमें पेड़ पर लगे पके फल पर टूटने वाली चिड़िया के समान, भक्त अत्यन्त अधीर होता है और जो अधीरता वह प्रदर्शित करता है उससे ही वह फल को खो देता तथा उसकी मुठ्ठी से वह गिर जाता है। दूसरा मर्कट भाव है जिसमें बन्दर की भांति जो एक के बाद दूसरे फल को अपनी ओर खींचता है और अपनी नितान्त चंचलता के कारण यह निर्णय नहीं कर पाताहै कि वह कौन सा फल चाहता है, भक्त हिचकता है तथा अपने लक्ष्य अतिप्राय बदलता रहता है। इस प्रकार वह अपनी सफलता के सभी अवसरों को खो देता है और तीसरा है पिपीलिका भाव, जिसमें चींटी के समान, जो धीरे-धीरे, किन्तुदृढ़ता के साथ, मिठास की ओर बढ़ती है। भक्त भी अविभक्त ध्यान के सहित सीधे भगवान की ओर बढ़ता है और उसकी अनुकम्पा को प्राप्त करता है।

भक्ति और साधना दो डाँड़े हैं, जिनके द्वारा तुम अपनी नाव को संसार-सागर के पार ले जा सकते हो। रात में सोते समय एक बालक ने अपनी माँ से कहा, "माँ जब मुझे भूख लगे, तब जगा देना।" माँ ने उत्तर दिया, "कोई आवश्यकता जगाने की नहीं है—तुम्हारी भूख स्वयं तुझे जगा देगी।" इस प्रकार जब भगवान के लिये भूख लगती है, यह स्वयं तुम्हें क्रियाशील बना देगी और जिस भोजन की तुम्हें आवश्यकता होगी; उसकी खोज के लिये तुम्हें विवश करेगी। परमात्मा ने तुम्हें भूख प्रदान की है और वह भोजन की पूर्ति करता है : उसने तुम्हें बीमारियां दी हैं और जिन औषधियों की तुम्हें आवश्यकता होती है उसे वह पैदा करता है। तुम्हारा कर्त्तव्य यह देखने का है कि तुम्हें

उचित भूख लगती है और उचित बीमारी है तथा उसके लिये ठीक-ठीक भोजन अथवा दवा का तुम प्रयोग करो।

मनुष्य को संसार का जुआ अवश्य पहनाया जाय और प्रशिक्षित किया जाय। यही वह प्रशिक्षण है जो यह सिखायेगा कि संसार मिथ्या है और कितने भी भाषण तुम्हें यह विश्वास नहीं दिलायेंगे जब तक कितुम सचमुच इसका अनुभव नहीं कर लोगे। अग्नि को स्पर्श करो और जलने की सनसनी का अनुभव करो। तुम्हें यह सिखाने के लिये अग्नि से दूर रहना चाहिए, इसके समान अच्छी और कोई उपाय नहीं है। जब तक स्पर्श नहीं करोगे तब तक उसका प्रकाश मात्र का ज्ञान तुम्हें रहेगा। जैसे संसार सत्य एवं असत्य या मिथ्या है, उसी प्रकार यह प्रकाश एवं उत्तप्ता दोनों है।

आज कल एक अति व्यापक बुरी आदत है दूसरों के परखने एवं उन्हें भक्त या नास्तिक कहने की। दूसरों के मन की आन्तरिक क्रिया के विषय में कितना जानते हो और कितना जान सकते हो? एक रानी थी जो राम की बड़ी भक्तिन थी। उसे बहुत दुख था कि उसके पति, राजा ने कभी राम-नाम का उच्चारण भी नहीं किया और न उनमें भक्ति ही थी। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि उनकी भक्ति का या कम से कम राम-नाम प्रेम का उसे प्रथम बार प्रमाण मिलेगा, वह सभी मन्दिरों में पूजा करायेगी और निर्धनों को खिलाने में अत्यधिक व्यय करेगी। एक रात्रि में, जब राजा खूब गहरी नींद में सो रहे थे, तब उन्होंने दीनतापूर्वक एवं प्रार्थनापूर्वक तीन बार राम-नाम लिया। उसने (रानी ने) नामस्मरण सुना और अपने पति की राम के प्रति भक्ति का पता लगने पर अत्यन्त आनन्दित हुई तथा समस्त राज्य में सामान्य खुशियां मनाने एवं निर्धनों को खिलाने का आदेश दिया। राजा को इस उत्सव का कारण नहीं मालूम हुआ; क्योंकि उन्हें इतना ही बताया गया कि यह रानी का आदेश था जिसे अधिकारियों ने पालन किया। उसी प्रकार पति को भी अपनी पत्नी की आध्यात्मिक उपलब्धियों की श्रेष्ठता का ज्ञान नहीं हो सकता है। एक युगल प्राणी की बात है। वे एक घने जंगल से होकर एक अगम्य मन्दिर की ओर

तीर्थयात्रा करने निकले। पति ने पत्तियों के मध्य से सूर्य-किरणों के पड़ने से चमक के साथ जगमगाती एक मूल्यवान प्रस्तर-मणि को देखा और उसने अपने पैरों की गति के साथ रेती उठाकर उसपर शीघ्रता से फेंक दिया ताकि उनकी पत्नी उसे उठाने का लोभ न कर सके और उस चमकीले पदार्थ की दासी न बन जाय। पत्नी ने पति की भंगिमा को देख लिया और उन्हें अपने मन में रेत एवं हीरे में अन्तर रखने के लिये फटकारने लगी। उसके लिए दोनों वस्तुएं समान थीं।

कथा के अनुसार, राजा, जिसने नींद में पवित्र राम-नाम कहा था, बहुत दुखी हुए कि उन्होंने राम-नाम को अपने मुख से बाहर निकलने दिया; क्योंकि वह विश्वास करते थे कि राम के प्रति उनके प्रेम को कोई नहीं जान सके। अनेक व्यक्ति हैं जो अपने गुरु के विषय में, उनके प्रिय नाम एवं रूप के विषय में कुछ नहीं कहेंगे। **चाहे तुम उनको दूसरों से बताओ या नहीं किन्तु उन्हें अपनी चेतना में अवश्य रखो।**

राम-नाम या अन्य कोई नाम श्वाँस के समान निरन्तर होना चाहिए। इसके लिये अभ्यास आवश्यक है। एक व्यक्ति ने प्रसिद्ध अंग्रेज विचारक डा० जान्सन से कहा कि उसे परमात्मा का नाम लेने के लिये कदाचित ही समय मिलता है, सुबह से शाम तक सैकड़ों कार्य उसे करने पड़ते हैं और अधिक रात व्यतीत होने तक भी। डा० जान्सन ने दूसरे प्रश्न से उसे उत्तर दिया। इस पृथ्वी के धरातल पर, जिसका दो तिहाई भाग पानी है, और शेष भी पर्वतों, रेगिस्तानों, जंगलों, बर्फीले प्रदेशों, नदी की घाटियों, दलदलों एवं इस प्रकार के अगम्य अंचलों से भरा पड़ा है, कितने लाख मनुष्यों को रहने के लिए स्थान मिल पाता है। उसने उत्तर दिया कि मनुष्य रहने की जगह पाने के लिए किसी प्रकार प्रयत्न करता है। डा० जानसन ने उससे कहा कि उसी तरह भगवान् से प्रार्थना करने के लिये मनुष्य को किसी तरह प्रतिदिन कुछ मिनट अवश्य निकालना चाहिए।

भक्ति और शरणंगति की मनोवृत्ति, जो इसका अन्तिम फल है, किसी भी अत्यावश्यकता का सामना करने के लिए तुम्हें महान् साहस प्रदान करेंगे। ऐसे साहस को ही वैराग्य कहते हैं। मोहजित की कथा उच्चतम कोटि के वैराग्य का सुन्दर उदाहरण है। राजकुमार मोहजित जंगल में एक ऋषि के पास गया और उसने आध्यात्मिक पथ में उससे पथप्रदर्शन की याचना की। ऋषि ने उससे पूछा कि क्या तुमने मोह को जीत लिया है, जैसा तुम्हारा नाम बताता है। राजकुमार ने कहा कि केवल वही नहीं; अपितु उसके राज्य में सभी ने 'मोह' को जीत लिया है। इसलिए ऋषि ने इस दावे की सत्यता की जांच शुरू कर दी।

उसने राजकुमार के कपड़ों को लिया, उन्हें खून में डुबो दिया तथा राजमहल के फाटक पर वे जल्दी से पहुँचे और जंगल में कुछ बदमाशों द्वारा राजकुमार की हत्या की भयावनी कथा बताई। जो दासी उन्हें मिली, उसने राजसी भवनों में इस समाचार के साथ शीघ्र जाने से अस्वीकार कर दिया तथा उसने कहा, चूंकि वह पैदा हुआ था, वह मर गया। इसलिये, इस समाचार की क्या विशेष अत्यावश्यकता है कि मैं अपनी दैनिक चर्या में बाधा डालूं और राजा तथा रानी के पास दौड़ूं ? अन्त में जब उसे कोई श्रोता मिला और वे पिता तक दुःखद समाचार पहुंचाने में समर्थ हो सके, तो वह अनुद्विग्न बैठा रहा और स्वयं से धीरे से कहा, "विश्राम करने के लिए चिड़िया जिस वृक्ष पर बैठी थी उस पर से उड़ गई।" रानी भी अविचलित रही।

उसने ऋषि से कहा कि यह पृथ्वी यात्रियों की सराय है जहाँ मनुष्य आते हैं, रात भर ठहरते हैं और जब सवेरा होता है तब एक-एक करके वे अपने रास्ते पकड़ते हैं। यात्रियों की सराय में जो थोड़े समय में परिचय होता है, उसे ही हम सम्बन्धियों की संज्ञा देते हैं। मृत राजकुमार की पत्नी भी अप्रभावित रही। उसने कहा, "पति एवं पत्नी बाढ़ से भरी नदी में तैरने वाली लकड़ी के दो टुकड़ों के समान हैं। वे एक दूसरे के निकट कुछ समय तक बहते हैं और जब

उनके बीच कोई धारा आ जाती है तब वे एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं। उनमें से प्रत्येक को समुद्र की ओर अपनी गति से और अपने ही समय से अवश्य बढ़ना है। दोनों की जुदाई पर शोक करने की आवश्यकता नहीं है। यह प्रकृति का स्वभाव ही है कि यह ऐसा ही होवे।" राजा और प्रजा में इस दृढ़ एवं सच्चे वैराग्य को देख कर ऋषि को अत्यन्त आनन्द हुआ। वह जंगल में वापस आये और राजकुमार से कहने लगे कि जब से वे दूर थे; एक शत्रु सेना ने उनके राज्य पर आक्रमण किया ; समस्त शाही परिवार की हत्या कर दी, उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और उसकी प्रजा को गुलाम बना लिया। उसने समाचार को शान्तिपूर्वक सुना और कहा "यह सभी बुलबुला है, अस्थाई एवं तुच्छ है। इसे बुलबुले की तरह जाने दीजिये। अनन्त एवं अविनाशी तक पहुँचने के लिए मेरा पथप्रदर्शन कीजिये।"

ऐसा वैराग्य परमेश्वर की अनुकम्पा से पैदा होता है। इसके लिए कई पीढ़ियों के संस्कार एवं प्रयत्न की आवश्यकता होती है। तब तक तुम लोग प्रथम सीढ़ी से प्रारंभ करो—मन की स्वच्छता एवं सद्गुण की प्राप्ति। यदि तुम इतना भी नहीं कर सकते हो तो कम से कम करने वालों की हँसी मत उड़ाओ और उन्हें हतोत्साहित मत करो। कम से कम इतना अवश्य करो। अपनी वैयक्तिक कामनाओं को जैसे पूरा करते हो उसी प्रकार अपना काम स्वयं करो, दूसरों पर निर्भर न करो। उन्हें स्वयं करो। यही वास्तविक स्वतंत्रता है। पुनः किसी से कोई वस्तु निःशुल्क मत लो, सेवा या कार्य के रूप में इसे चुका दो। यह तुम्हें आत्म-सम्मानी व्यक्ति बनायेगा। किसी की सहायता लेने का अर्थ है नदी की धार से बँधना। आत्म-सम्मान एवं गौरव के साथ बड़े बनो। तुम अपनी यही सर्वोत्तम सेवा कर सकते हो।

'चन्दा मामा' विश्व के सभी बच्चों के लिए 'मामा' है। उसी प्रकार परमेश्वर सबका पिता है जिसकी सम्पत्ति में हर व्यक्ति एक हिस्से का दावा कर सकता है। किन्तु इसे पाने के लिए तुम्हें एक निश्चित आयु तथा एक निश्चित

बौद्धिक एवं विवेचनात्मक मानदंड तक अवश्य पहुँचना होगा। कमजोर एवं महामूर्ख को वह सम्पत्ति प्राप्त करने के योग्य नहीं समझेगा। उसकी सम्पत्ति है अनुकम्पा—प्रेम। किन्तु, यदि तुम्हारे पास विवेक एवं वैराग्य है तो तुम अधिकार के रूप में अपने अंश का दावा कर सकते हो।

'भक्ति' लेकर आओ और उसे यहाँ रख दो तथा उसके बदले में यहाँ से 'शक्ति' ले जाओ। ऐसा व्यापार यहाँ जितना अधिक किया जाता है उतना ही अधिक मैं प्रसन्न होता हूँ। शोक एवं दुःख, चिन्ताएं एवं दुराशायें, जो भी तुम्हारे पास हैं, उन्हें ले आओ (मुझे दे दो) तथा उनके बदले में मुझसे आनन्द, शान्ति, साहस एवं भरोसा ले जाओ। मेरे विचार में भक्तों में वरिष्ठता या कनिष्ठता नहीं है। माँ बीमार बच्चे की सेवा में अधिक समय व्यय करती है और बड़े बच्चों से कहती है कि वे अपनी परवाह स्वयं करें, किन्तु शिशु को स्वयं अपने हाथ से खिलाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि बड़े बच्चों के प्रति उसमें प्रेम नहीं है। उसी प्रकार, चूंकि किसी एक व्यक्ति की ओर प्रत्यक्षतः मैं अधिक ध्यान नहीं देता हूँ, इसलिये यह न सोचो की वह मेरे प्रेम की दृष्टि के परे है।

यह भी याद रखो कि इस अवतार में दुष्टों का संहार नहीं किया जायेगा, उन्हें सही किया जायगा, सुधारा जायेगा, शिक्षा दी जायेगी और उस पथ पर उन्हें लाया जायेगा जिससे वे भ्रष्ट हो चुके हैं। दीमक लगे हुए वृक्ष को काटा नहीं जायेगा, उसकी रक्षा की जायेगी। पुनः यह अवतार इस स्थान के अतिरिक्त, जहाँ इसने जन्म लिया, कोई इतर स्थान अपनी लीला, महिमा और उपदेश के लिए नहीं चुनेगा। यह वृक्ष एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर नहीं लगाया जायेगा, यह उसी स्थान पर विकसित होगा जहां यह पहले इस पृथ्वी से पैदा हुआ। द्वितीय विशेषता यह है : यह अवतार जिस परिवार में जन्मा है उससे इस जीवन में इसका कोई सम्बन्ध या आसक्ति नहीं है। राम एवं कृष्ण आदि के प्रगट होने पर जीवन की लीला अधिकांश रूप से परिवार में एवं परिवार

के सदस्यों के लिए की गई। इसके विपरीत, यह अवतार केवल भक्तों, जिज्ञासुओं, साधुओं तथा साधकों के लिए है। इसे जप, ध्यान या योग नहीं करना है। यह कोई पूजा नहीं जानता है। यह किसी से प्रार्थना नहीं करेगा; क्योंकि यह उच्चतम है। यह तुम्हें केवल आराधना एवं प्रार्थना करना सिखाता है।

एक सांसारिक व्यक्ति को परमेश्वरोन्मत्त व्यक्ति पागल दिखाई देगा और इसके लिए वह उस पर हंसेगा। किन्तु ईश्वरोन्मत्त को सांसारिक मनुष्य पागल, मूर्ख, गुमराह और अन्धा मालूम होगा। सभी प्रकार के पागलपन जो मनुष्य को परेशान करते हैं, ईश्वरोन्मत्तता कम से कम हानिकारक है और अधिक से अधिक लाभदायक है। संसार ने अपने "पागल" शासकों तथा पागल "पथ प्रदर्शकों" के कारण अकथनीय हानि उठाई है। किन्तु मनुष्य की "ईश्वरोन्मत्तता" से एकता, शान्ति, भ्रातृभाव एवं प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं उत्पन्न होता है।

३. पथ-प्रदर्शक परमेश्वर

(प्रशान्तिनिलयम, गुरुपूर्णिमा, १ अगस्त, १९५६)

परमेश्वर महाशक्ति है और जीव मायाशक्ति है। वह सत्य है, जीव छाया मात्र है, वह दृश्य है और जीव छलना है। तुम्हारे मध्य प्रगट होने के लिए मुझे भी मायाशक्ति धारण करनी पड़ती है। जैसे, सिपाही को चोरों के बीच घुसने के लिए चोरों की पोशाक पहननी पड़ती है ताकि उनको पकड़ कर दण्डित कर सके। परमेश्वर अपनी अक्षुण्ण महाशक्ति के साथ अवतीर्ण नहीं हो सकता है। उसे अपनी क्षीण भव्यता एवं सीमित आलोक के साथ अवतरित होना है ताकि वह भक्ति एवं निष्ठापूर्ण सेवा का लक्ष्य बन सके।

इस संसार में, जो अशाश्वत और नित्य परिवर्तनशील है, परमेश्वर की सर्वशक्तिमान् शक्ति ही शाश्वत एवं स्थिर वस्तु है। **नित्यम् एवं सत्यम्** को प्राप्त करने के लिये किसी भी व्यक्ति को उस **स्रोत एवं आधार** से स्वयं को संलग्न करना आवश्यक है। इस पथ से कोई छुटकारा नहीं है। आयु या विद्वत्ता या आवोहवा या वर्ण या लिंग या स्तर का कोई ध्यान न रखते हुए यह एक की एवं सबकी नियति है।

सड़क पर चलते हुए तुम अपनी परछाईं को कीचड़ या धूल, गढ्ढा या टीला, कांटे या रेत, गीले या सूखे भू-खण्डों पर पड़ती हुई ध्यानपूर्वक देख सकते हो। तुम अपनी परछाईं के भाग्य से अप्रभावित रहते हो। क्या यह बात नहीं है? और न तो छाया ही इस प्रकार गन्दी होती है। इस बात की वह तनिक भी चिन्ता नहीं करती है कि यह कहां पड़ती है अथवा किससे गुजरती है। हमें ज्ञात है कि छाया की अनुभूतियां **नित्यं एवं सत्य** नहीं है। इसी प्रकार, तुम्हें यह विश्वास अवश्य कर लेना

चाहिये कि तुम परमात्मा की छाया मात्र हो और तुम अनिवार्यतः यह 'तुम' नहीं हो। तुम स्वयं केवल परमात्मा हो। शोक, कष्ट एवं दर्द की यही दवा है।

निश्चय ही केवल लम्बी तथा व्यवस्थित साधना-प्रणाली के अन्त में तुम सत्य में स्थित हो सकते हो। जब तक यह नहीं होता है तब तक तुम इस शरीर से अपने को पहचानने के अभ्यस्त रहते हो और यह भूल जाते हो कि यह छाया फेंकने वाला शरीर स्वयं एक छाया है।

साधना की प्रथम सीढ़ी है प्रत्येक वैयक्तिक एवं सामाजिक कार्य में धर्म का पालन करना। जिस धर्म का अनुसरण प्रकृति के अनुसार होता है आध्यात्मिक क्षेत्र में भी वही स्वतः धर्म की ओर ले जायेगा। तुमको केवल हर कठिनाइयों में उसका पालन करना है। जब अश्वत्थामा ने अपने क्रोध में अन्धा होकर पांडवों के बच्चों की हत्या कर दी थी, अर्जुन ने उसे बन्दी बना लिया था और उसका सिर काटने को धमकाया था; किन्तु दुःखिनी माता द्रौपदी ने उसकी रक्षा के लिये मध्यस्थता की थी। उसने कहा—"हत्या के बदले हत्या करना और अपने ही गुरु-पुत्र का सिर काटना धर्म नहीं है।" धर्म के पथ पर इस प्रकार की दृढ़ता की आवश्यकता है और एक मात्र यही 'शरणंगति' का लक्षण है। "परमेश्वर के संकल्प को पूरा होने दो। उसकी अनुकम्पा के प्रवाह से अपने को संयुक्त रखना ही हर एक का कर्त्तव्य है।"

जेल में रहते हुए बन्दी अपने वस्त्रों को भी अपना नहीं कह सकता है। उसी प्रकार, जेल में अपनी अवधि को पूरा करते हुए तुम किस वस्तु को अपना कह सकते हो ? वह तुम्हें भोजन एवं वस्त्र देता है। अवधि समाप्त होने पर वह तुम्हें बाहर जाने देता है। अथवा पहले भी, यदि जेल में रहते हुए तुम्हारे व्यवहार से वह प्रसन्न हो जाता है।

शरणंगति के पथ में सबसे महान् बाधा है अहंकार एवं ममकार। यह ऐसी वस्तु है जो युगों से तुम्हारे व्यक्तित्व में आती रही है और प्रत्येक

आगामी जीवन के अनुभवों के साथ यह अपने स्पर्शाङ्क को और भी गहराई तक प्रेषित करता रहता है। विवेक एवं वैराग्य के द्वयावरोधकों द्वारा ही इसे दूर किया जा सकता है। **युगों की गन्दगी को धोने के लिए भक्ति जल है और जप, ध्यान तथा योग का साबुन इसे शीघ्रतर एवं अधिक प्रभाविक ढंग से दूर करने में सहायता देगा।** मन्द और दृढ़ व्यक्ति दौड़ में अवश्य जीतेगा। टहलना यात्रा की सबसे सुरक्षित प्रणाली है। यात्रा के तीव्रतर साधन का अर्थ है विनाश; क्योंकि साधन जितना ही तीव्रगामी होगा उतना ही विनाश का खतरा भी अधिक है। तुम्हें उतना ही खाना चाहिये जितनी तुम्हें भूख है; क्योंकि अधिक भोजन अस्वस्थता उत्पन्न करेगा। इसलिये साधना में एक-एक कदम आगे बढ़ो और दूसरा कदम उठाने के पूर्व अपने पहले कदम का निश्चय कर लो। एक कदम आगे बढ़ने के पश्चात् दो कदम पीछे नहीं हटो। यदि तुममें विश्वास नहीं है तो प्रथम कदम भी अनिश्चित हो जायेगा। इसलिये मन में विश्वास उत्पन्न करो। सत्यभामा ने एक बार कृष्ण से पूछा—"आप सामान्य मनुष्यों की भांति काम क्यों करते हैं? पाण्डवों में ज्येष्ठ युधिष्ठिर सभी भाइयों से उत्तम हैं, किन्तु आप सदैव अर्जुन के साथ ही खाते-पीते हैं जिसकी ख्याति प्रशनातीत नहीं है।" उसका विश्वास दृढ़ नहीं था। भगवान् को तथा उसके कार्यों को प्रेरित करने वाले उद्देश्यों के विषय में लोग क्या समझ सकते हैं? कुछ लोगों ने निरन्तर एवं अविराम भगवान् का नाम जपने के लिये नारद को दोषी ठहराया। किन्तु, सायुज्य या विलीनता न प्राप्त होने तक नाम जपना ही है; क्योंकि पृथकता का विचार लय के साथ ही समाप्त होता है और उसके पूर्व नहीं। एक बार विश्वास प्राप्त करने पर डगमगाओ नहीं और न सन्देह करो। स्वयं को जानने एवं सन्तुष्ट करने का प्रयास करो। उसके पश्चात् पथभ्रष्ट न होओ। जब सूर्य तुम्हारे सिर पर चमकता है तब छाया नहीं रहती है। उसी प्रकार जब तुम्हारे मस्तिष्क में दृढ़ विश्वास है तब संशय की कोई छाया इससे नहीं निकलनी चाहिये।

जब मनुष्य अपना पथ खो देता है और वह उजाड़खण्ड में भटकता है

यह विश्वास करता हुआ कि वह देह या गुण या वस्तु है, तब अवतार सचेत करने एवं पथप्रदर्शन करने के लिए अवतीर्ण होता है। भगवान् में अघट विश्वास रखोगे तभी इस संसार में इधर-उधर सुरक्षित घूम सकते हो। तुम्हें कोई हानि नहीं पहुंचेगी। सिर पर एक के ऊपर दूसरा घड़ा सन्तुलित रखकर बातें करती हुई तथा चक्करदार गलियों में चलती हुई ग्रामीण स्त्री के समान तुम बनो। वे अपने भार को अथवा लक्ष्य को न भूलती हैं, न उसकी उपेक्षा करती है। वे मार्ग की कठिनाइयों, कंकड़ों एवं गढ्ढों से सतर्क एवं सचेत रहती हैं। यह आन्तरिक एकाग्रता ही लाभांश प्रदान करती है।

हर एक व्यक्ति को किसी दिन जाना है। वह क्षण व्यथा का क्षण नहीं होना चाहिये; अपितु प्रत्येक व्यक्ति को मुस्कराते हुए विनम्रतापूर्वक शालीनता के साथ कूच करना चाहिये। दीर्घ जीवनकाल में संचित सभी भावों एवं वस्तुओं का परित्याग करके कूच करना एक कठिन कर्म है। इसलिए एक वस्तु के पश्चात् दूसरी वस्तु की ममता का परित्याग करने की तैयारी अभी से करो। तुम स्वप्न देखते हो और स्वप्न में तुम बहुत सी वस्तुएं—शक्ति, वैभव, सम्मान एवं ख्याति प्राप्त करते हो। किन्तु जब तुम जागते हो तुम उनकी क्षति के लिए नहीं रोते हो, यद्यपि स्वप्नकाल में सब कुछ बहुत सत्य जान पड़ता था और तुम्हें वास्तविक सन्तोष एवं आनन्द दिया था। तुम स्वयं कहते हो 'वह स्वप्न था'। अपने जीवन में तुम्हें जाग्रत दशा में प्राप्त वस्तुओं को उसी प्रकार के व्यवहार करने से क्या वस्तु रोकती है? उसी मनोवृत्ति को पैदा करो और जब कभी पर्दा गिरेगा तुम इस स्वप्न जगत के रंगमंच से मुस्कराते हुए कूच कर सकते हो।

अपने हृदय में इन सब के प्रति विश्वास पैदा करने के लिए यह सर्वोत्तम है कि तुम ऐसे गुरु के पास जाओ जो अनुभूति द्वारा सत्य को जानने वाला है तथा जिसके दैनिक कर्म, शब्द एवं विचार इस अनुभूति को व्यक्त करने वाले हों। गुरु ऐसा इसलिये कहा जाता है कि 'गु' अक्षर गुणातीत का बोधक है—

जो तीनों गुणों—तामस, राजस एवं सत्व—के पार पहुँच चुका है और 'रु' अक्षर यह बताता है कि जो 'रूपातीत' या रूपवर्जित है—जिसने ईश्वरता के रूपरहित स्वरूप को समझ लिया है। निश्चय ही इस स्थिति को वह निम्नतर गुणों को उच्चतर गुणों में रूपान्तरण तथा रूप एवं नाम मात्र के अभिनय की दृढ़ एवं सचेत अवहेलना के द्वारा ही प्राप्त कर सका है। आध्यात्मिक साधना की प्रारम्भिक स्थितियों में नाम, रूप एवं गुण—इन सबका ही आत्मा को ढालने में हाथ रहता है।

गुरु माया को विनष्ट करता है, आलोक (ज्ञान) प्रदान करता है तथा उसकी उपस्थिति शीतल एवं सुखद होती है। यही कारण है आज का दिन—पूर्णिमा—पूर्ण चन्द्र दिवस ही गुरु को उचित सम्मान प्रदान करने के लिये निश्चित किया गया है। और चन्द्रमा मन का अधिपति देवता है तथा पूर्णिमा वह दिवस है जिस दिन मन पूर्णतया परोपकारी या दयालु हो जाता है। निश्चय ही तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुमने क्या खोया है, ताकि तुम उसे पुनः प्राप्त करने के लिये खोज प्रारम्भ कर सको। गुरु को यह प्रायः कहना पड़ता है कि तुम अपने वास्तविक नाम को भूल गये हो अथवा तुमने अपनी आत्मा के अत्यन्त बहुमूल्य अंश को खो दिया है और अभी तक तुमको अपनी खोई वस्तु का ज्ञान नहीं है। क्रमिक जन्म एवं मरण के दुःख को उत्पन्न करने वाले रोग के लिए गुरु ही वैद्य है। नीरोग होने के लिये आवश्यक निदान में वह निपुण है। यदि तुम्हें ऐसा गुरु प्राप्त नहीं होता है, तब स्वयं भगवान् से ही प्रार्थना करो कि वह तुम्हारा पथ-प्रदर्शित करे और वह निश्चय ही तुम्हें मुक्त करेगा।

○

४. दिव्य जीवन

(वेंकटगिरि, अप्रैल, १९५७)

दिव्य जीवन 'मिशन' के कार्यकर्त्ताओं के सम्मेलन में समस्त मानवता को अवश्य सम्मिलित करना चाहिए; क्योंकि इसके घेरे से बाहर कोई भी नहीं है तथा सभी लोग प्रत्येक प्राणी में व्याप्त **दैवत्व** के साक्षात्कार की सड़क पर चल रहे हैं। जिस उद्देश्य से प्रत्येक व्यक्ति आया है, वह है **व्यष्टि को समष्टि** में विलीन करना। हर व्यक्ति का जीवन दिव्यता से सराबोर है और अस्तित्व या **सत्ता** सम्पूर्ण सत या स्वयं ब्रह्मन् के स्रोत से ही पैदा होता है। हर्ष या आनन्द सम्पूर्ण **आनन्द**, या स्वयं ब्रह्मन् के स्रोत से पैदा होता है। तुम सभी **'सत्-चित् आनन्द'** स्वरूप हो, किन्तु केवल तुमको इसका ज्ञान नहीं है, क्योंकि तुम स्वयं कल्पना करते हो कि मैं यह व्यक्ति हूँ या वह और इस अल्पता का शिकार हूँ या उस। इस गूढ़ रहस्य का अवश्य विस्फोट किया जाना चाहिए ताकि 'दिव्य जीवन' प्रारम्भ हो सके। यह दिव्यता या ईश्वरता है जो उत्साहित करती है, जो क्रियाशील बनाती है, जो नेतृत्व करती है तथा हर प्राणी के जीवन को परिपूर्ण करती है—चाहे उसका शारीरिक ढांचा सरल हो अथवा पेचीदा हो। **अणु** से लेकर **विराट्** तक प्रत्येक अस्तित्वधारी उस संगम या दहाने की ओर गतिशील है जहाँ वह **आनन्द** के सागर में विलीन हो जाता है।

दिव्य जीवन सभी प्राणियों की श्वाँस है। यह सत्य, प्रेम एवं अहिंसा से निर्मित है, क्योंकि कोई भी दूसरे के प्रति झूठा कैसे हो सकता है जब कोई दूसरा बिल्कुल है ही नहीं? झूठाई या मिथ्यापन भय से उत्पन्न होती है। जब दूसरा है ही नहीं, तब भय बिल्कुल नहीं है। आत्मा से अधिक कोई प्रिय नहीं है। इसलिए, जब सब अपने समान ही आत्मा हैं, तब सब वैसे ही प्रिय हैं जैसे आत्मा प्रिय है। और हिंसा, कौन किसको मारेगा, जब सब केवल एक ही हैं?

दिव्य जीवन कैसे बिताया जाय ? इसके लिये, आप को अधिकारी बनने के लिए कोई विशिष्ट सदस्यता नहीं है। अनेकता में एकता का साक्षात्कार करने के लिए प्रत्येक संघर्ष दिव्य जीवन के पथ पर एक कदम है। यदि तुम दूध में व्याप्त मक्खन को उससे अलग करना चाहते हो और उसे पहचानना चाहते हो तो तुम्हें दूध का मन्थन करना पड़ेगा। उसी प्रकार, संसार सत्यम् और असत्यम् का एक विचित्र सम्मिश्रण है और वस्तुतः यह मिथ्या है—इस आस्था के कठोर केन्द्र को प्राप्त करने के लिए तुम्हें विचार एवं कार्य की एक निश्चित प्रणाली पर चलना होगा। दिव्य जीवन में रंचमात्र चारित्रिक दोष अथवा बौद्धिक छलना का प्रवेश नहीं हो सकता है। इसलिए, इसके प्रति एकनिष्ठ व्यक्ति अपने आचरण एवं उदाहरण द्वारा इस पर अवश्य बल दें। चिन्ता, भय एवं अज्ञानता के मूल कारणों को मिटा दो, केवल तभी मनुष्य का सच्चा व्यक्तित्व चमक सकेगा।

भगवान् में आस्तिकता के द्वारा चिन्ता का निवारण होता है। यह आस्तिकता बताती है कि जो कुछ घटित होता है वह उत्तम है और भगवान् की इच्छा अवश्य पूरी होगी। मौन स्वीकृति ही चिन्ता के विरुद्ध सर्वोत्तम कवच है। यह स्वीकृति दुर्बलों की स्वीकृति नहीं है; अपितु बहादुरों की साहसिक स्वीकृति है। **अहंकार से शोक पैदा होता है कि मेरे** साथ इतना बुरा व्यवहार नहीं होना चाहिए और मैं बेवश या निस्सहाय हूँ। **जब अहंकार समाप्त होता है तब शोक अदृश्य हो जाता है। अज्ञानता एक त्रुटि है—आत्मा के रूप में देह का ही गलत ज्ञान है।**

वस्तुतः, **तुममें से प्रत्येक को अहंकार-विहीन होने की चेष्टा अवश्य करनी है। तभी भगवान् तुम्हें अपनी बंशी के समान ग्रहण करेगा।** एक बार, जब मैंने अनेक लोगों से पूछा कि भगवान् के हाथ में वे क्या होना चाहते हैं, तब मुझे विभिन्न उत्तर मिले—किसी ने कमल कहा, किसी ने शंख कहा, किसी ने चक्र कहा, किन्तु किसी ने मुरली का नाम नहीं लिया। मैं तुम्हें मुरली बनने

की सलाह देना चाहूँगा, क्योंकि तब भगवान तुम्हारे पास आयेंगे, तुम्हें उठायेंगे, अपने अधरों से लगायेंगे, तुम्हारे द्वारा सांस लेंगे और तुम्हारे हृदय के खोखलापन—तुम्हारे विकसित अहंकार के नितान्त अभाव-से, समस्त सृष्टि के जीवों को आनन्दित करने के लिये मनोहर संगीत की रचना करेंगे। **अपने मन में कोई कुटिलता न रखो और सीधा बनो, अपनी किसी प्रकार की इच्छा से रहित खोखले बनो और अपनी इच्छा को भगवान् की इच्छा में विलय कर दो। केवल ईश्वर की श्वाँस लो।** यह दिव्य जीवन है तथा मैं यही चाहता हूँ कि तुम सब इसे प्राप्त करो।

५. जप सहित ध्यान

(चित्रावती नदी की तराई, पुट्टापर्ती, २३-२-५८)

मैं बताऊं कि अभी यहां पर जिस भक्त ने प्रथम बोला है, वह पच्चीस वर्षों से ईश्वर को नहीं मान रहा था और केवल पांच वर्षों से, मुझसे भेंट होने के पश्चात् से वह बदल गया है। निश्चय ही, बहुतेरे व्यक्तियों को ऐसे अनुभव नहीं प्राप्त हुए, जो उन्हें बदल सकें। इसलिए, आस्तिक्य की कमी के लिये वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते। इसी प्रकार, यह शेषगिरी राव अपने लड़के एवं लड़कियों को पुट्टापर्ती आने के लिए दोषी ठहराता था और स्वयं यहाँ आने के लिए अधिक समय तक अस्वीकार करता रहा। एक दिन बंगलौर में इसके मकान के सामने वाले मकान में मेरे आने के कारण कुछ उत्सव था। भजन के समय इस व्यक्ति ने हिचकते हुए सड़क पार की, और हाल में झाँका। मैं आगे बढ़ा और उसे बुलाकर अपने पास बैठाया। मैंने पुट्टापर्ती आने के लिए उससे कहा तथा 'परीक्षा करने' एवं 'अनुभव' करने के लिए आमन्त्रित किया। तब से वह मेरे साथ है। अब अठारह वर्ष हो चुके, जब वह प्रथम बार यहां आया था। ठीक यही कारण है कि मैं यहां अवतरित हुआ : धर्म एवं ईश्वर में आस्था का बीज बोने के लिए। तुमने कदाचित् लोगों को यह कहते हुए सुना हो कि जब एक विषधर सर्प ने मुझे काटा तब से मैं साई बाबा बन गया। अच्छा, मैं चुनौती देता हूँ कि तुममें से कोई भी विषधर सर्प से कटावे और स्वयं को साई बाबा में रूपान्तरित कर दे। नहीं, विषधर सर्प का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुतः कोई विषधर सर्प बिल्कुल था ही नहीं। मैं साधुओं, सन्तों एवं साधकों की प्रार्थना पर धर्म की पुनर्स्थापना के लिए अवतरित हुआ।

जब अशान्ति का तनिक भी लक्षण होता है, तब सिपाही घटनास्थल पर आ जाता है; किन्तु, जब भीड़ उद्दण्ड हो जाती है, तब थानेदार दौड़ आता

है और यदि यह भीड़ उपद्रवी हो जाती है तब उसे शान्त करने के लिए पुलिस अधीक्षक स्वयं घटनास्थल पर व्यक्तिशः उपस्थित होता है। यदि स्थिति किसी प्रकार गर्म प्रतीत होती है, तब इन्स्पेक्टर जनरल स्वयं वहां आ जाता है। क्या यह बात नहीं है ? ऐसी स्थिति में इन्स्पेक्टर जनरल स्थिति का सम्पूर्ण दायित्व अपने ऊपर लेता है। इसी तरह महापुरुष, महात्मा, ज्ञानीजन, योगीगण एवं देवांशसंभूत अपनी कोशिश करते हैं तथा धर्म की पुनर्स्थापना में एवं विश्व में शान्ति लाने के लिए मार्ग को साफ करने में वे सभी सहयोग प्रदान करेंगे।

आत्म-विचार आत्मा के स्वभाव की खोज की अनुपस्थिति ही आज के युग का महानतम् दोष है। इन सारी अशान्तियों का कारण वही है; क्योंकि परमात्मा में विश्वास न रखते हुए भी तुम भ्रष्ट नहीं हो सकते हो, यदि अपने विषय में सत्य को जानने की उत्सुकता या जिज्ञासा रखते हो। सभी मिट्टी के बर्तन मिट्टी के हैं, आभूषण स्वर्ण के हैं और कपड़े धागों के हैं। जहां विभिन्नत्व दिखाई देता है वहां ऐक्य भी है; क्योंकि आधारभूत तत्व एक ही है और अविभाज्य है। वही ब्रह्मन् है, वही आत्मा है और वही तुम्हारा आधारभूत तत्व भी है।

उपनिषदों में यह आत्मविचार सर्वोत्तम पाया जाता है। जिस प्रकार, बाँधों के द्वारा नदी के बहाव को नियन्त्रित किया जाता है और बाढ़ के जल को समुद्र की ओर संचारित किया जाता है; उसी प्रकार, उपनिषद् इन्द्रियों को, मन को और बुद्धि को नियन्त्रित करते हैं और व्यक्ति को सागर (परमेश्वर) तक पहुँचाने में तथा परमब्रह्म में व्यष्टि को विलीन कर देने में सहायता करते हैं। उपनिषदों का अध्ययन करो, उनके अनुसार चलो और सम्मति को आचरण में ढालो।

नक्शों का सूक्ष्म निरीक्षण एवं 'गाइड' पुस्तकों का उलटना-पुलटना वास्तविक यात्रा का आनन्द कदापि नहीं देगा और न उस प्रदेश की यात्रा का हर्ष एवं ज्ञान ही प्रदान करेगा। स्मरण रखो कि उपनिषद् एवं गीता केवल नक्शे एवं

'गाइड' पुस्तकें हैं। एक ग्रामीण की कथा है। वह भक्तों के समूह में बैठा हुआ था और एक महान् पंडित द्वारा गीता की व्याख्या ध्यानपूर्वक सुन रहा था। पंडित की विद्वत्तापूर्ण व्याख्या तथा प्रत्येक शब्द एवं मुहावरे का उनके ज्ञानपूर्ण विश्लेषण पर सभी को आश्चर्य हुआ; किन्तु वह ग्रामीण, जिसके मस्तिष्क पर वह व्याख्या बहुत बड़ा भार ही थी, बहुत ध्यानपूर्वक सुनता हुआ प्रतीत होता था, क्योंकि पूरे समय तक वह आँसू बहाता रहा। आखिरकार जब पंडितों ने उससे रोने का कारण पूछा, तब उसने अपनी भक्ति की सच्चाई से सबको आश्चर्य में डाल दिया। उसने बताया कि वह भगवान की भयंकर दशा पर रोता था; जिन्हें अपनी गर्दन टेढ़ी करके रथ के अग्रभाग पर बैठना पड़ा था और 'अज्ञानी' अर्जुन को विश्वास दिलाने के लिए उतने अधिक समय तक उसी स्थिति में गर्दन रखनी पड़ी थी। "अपनी गर्दन में उन्हें कितनी अधिक पीड़ा हुई होगी ?" उसने पूछा और रो पड़ा। वह सच्ची भक्ति थी---आध्यात्मिक विजय का वह निश्चित "पासपोर्ट" था। घटना में सम्मिलित व्यक्तियों के साथ उसने स्वयं एकत्व या सादृश्यता प्राप्त कर लिया था; तथा समस्त दृश्य उसके लिये जीवन्त हो गया था।

तुम्हें गीता या उपनिषद् पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम ईश्वर से अपने हृदय में बातें करो, तो तुम विशेषतः अपने लिए रचा गया एक गीता सुनोगे। तुम्हारे सारथी के रूप में वही वहाँ प्रतिष्ठित है। उससे प्रश्न करो, वह तुम्हें उत्तर देगा। जब तुम किसी स्थान पर शान्तिपूर्वक ध्यान के लिए बैठते हो, तब भगवान् का एक चित्र या रूप अपने सामने रखो और उसका नाम लो। अर्थात् जप के समय कोई भी नाम लो। यदि तुम चित्र या रूप के बिना जप करते हो, तो तुम्हें कौन उत्तर देगा ? तुम अपने आप से हर समय बातें नहीं कर सकते हो। रूप ही सुनेगा और रूप ही उत्तर देगा।

सभी विक्षेप एक दिन समाप्त हो जायेंगे। क्या यह बात नहीं है ? रूप का ध्यान एवं नाम का जप---इस कार्य का यही एक मात्र साधन है।

रहस्य यह है—तुम्हें 'होना' चाहिए। किन्तु, जैसे नींद में 'होना' नहीं। जब अपने ही में गहरे डूबे हुए तुम जानते हो कि तुम हो। नींद केवल माया या भ्रम से आच्छादित रहती है। माया से जागो, किन्तु इस नींद में स्वयं डूबो, वही सच्ची समाधि है। जप एवं ध्यान वे साधन हैं, जिनसे तुम दैवी अनुग्रह को मनोवांछित नाम सहित रूप में स्थूल तक बना सकते हो। जो रूप तुम चुनते हो, जो नाम तुम कल्पना करते हो, उसी को भगवान् को भी धारण करना पड़ता है। वस्तुतः, तुम्हीं उसे वैसा मूर्तिमान करते हो। अतएव, इन दोनों को बदलो नहीं, किन्तु कितनी भी देर या कठिनाई हो, इससे जुटे रहो।

हतोत्साहित नहीं हो; क्योंकि शुरू से ही तुम देर तक एकाग्र करने में समर्थ नहीं हो। जब तुम सायकिल पर चढ़ना सीखते हो तो सन्तुलन करने की कला तुरंत नहीं आती है। एक खुले मैदान में तुम सायकिल को धक्का देते हो, उछलते और कूदते हो, कभी एक ओर झुकते हो, और कभी कभी दूसरी ओर तथा सायकिल पर कलापूर्वक चढ़ने में समर्थ होने के पहले तुम अनेक प्रयत्न करते हो, गिरते हो और सायकिल तुम्हारे ऊपर रहती है। तुम अभ्यस्त होने पर फिर सायकिल के सन्तुलन की चिन्ता कभी नहीं करते हो। सन्तुलन को ठीक रखने के लिए आवश्यक सामंजस्य करने में तुम स्वतः समर्थ हो जाते हो। क्या यह बात नहीं है? यह दक्षता प्राप्त करने पर तुम संकीर्ण गलियों-कूचों में भी सायकिल पर चढ़ सकते हो, तुम्हें मैदान की आवश्यकता नहीं होती है तथा अत्यन्त भीड़ से भरी हुई सड़कों से भी अपनी गाड़ी को निकाल लेते हो। उसी प्रकार अभ्यास तुम्हें एकाग्रता से सन्नद्ध कर देगा, जो तुम्हें घने से घने स्थलों में तथा कठिनतम परिस्थितियों में संभालेगा।

तुम यह धारणा मत रखो कि यदि तुम मुझे ध्यानरूप के लिए स्वीकार नहीं करते हो, तो मैं तुम पर क्रोध करूंगा। नितान्तः इस बात से मेरा कोई संबंध नहीं है। जो नाम एवं रूप तुम्हें आवश्यक उत्साह प्रदान करता है, उसे चुनने के लिए तुम पूर्णतया स्वतन्त्र हो। जब तुम ध्यान करते हो, तब मन प्रायः दूसरी

वस्तुओं की ओर दौड़ता है—यह दूसरी सड़क पकड़ लेता है। तब, नाम और रूप के द्वारा तुम्हें उस मार्ग को बन्द करना पड़ता है तथा देखना पड़ता है कि भगवान् के प्रति हमारे विचारों के बहाव में बाधा भी नहीं पड़ती है। यदि पुनः यह होता है, तो शीघ्र ही नाम एवं रूप का पुनः प्रयोग करो। एक ओर नाम और दूसरी ओर रूप के दो बन्धनों के बाहर मन को मत जाने दो; तभी यह तीसरे स्थान में नहीं जा सकेगा।

जब ध्यान के लिए तुम बैठते हो, तब पहले भगवान् की महिमा के कतिपय श्लोकों या पदों को गाओ, ताकि बिखरे हुए विचार एकत्रित हो जायें। तब क्रमशः जप करते हुए उस रूप को मन की आंखों के सामने खींचने की कोशिश करो, जिसका वह नाम प्रतिनिधित्व करता है। जब तुम्हारा मन नामोच्चारण से दूर भागता है, तब इसे उस रूप के चित्र की ओर ले जाओ और इसे उसके माधुर्य पर टिकने दो। इस व्यवहार का अभ्यास करने से वह आसानी से पालतू बन जायेगा। जो काल्पनिक चित्र तुमने खींचा है, वह भावचित्र में रूपान्तरित हो जायेगा, जो हृदय को बहुत प्यारी है तथा स्मृतिपटल पर अंकित हो जायेगा। क्रमशः, यह साक्षात्कारचित्र हो जायेगा, जब कि तुम्हारी कामना को पूर्ण करने के लिए भगवान् स्वयं रूप धारण करते हैं। यह साधना जप सहित ध्यान कही जाती है। मैं तुम सभी को इसे अपनाने की सलाह देता हूँ; क्योंकि प्रारम्भ करने वालों के लिए यह सर्वोत्तम है। कुछ ही दिनों में तुम अभ्यस्त हो जाओगे और एकाग्रता के आनन्द का स्वाद लोगे। प्रारम्भिक दशा में दस या पन्द्रह मिनट या इससे कुछ अधिक समय तक अभ्यास करो। कुछ दिनों में तुम इस ध्यान के बाद, ध्यान में प्राप्त की हुई शान्ति एवं सौख्य का कुछ मनन करो। अर्थात, जिस आनन्द की अनुभूति हुई है उसे अपनी स्मृति में लाओ। इससे तुम्हारी आस्था एवं सच्चाई में सहायता प्राप्त होगी। तत्पश्चात्, अकस्मात न उठो, इधर-उधर घूमना न शुरू करो तथा न अपने उद्यम में लगो। अपने अंगों को धीरे-धीरे जानबूझ कर क्रमशः ढीला करो और तब अपने दैनिक कार्य में लगो। मनन की इस प्रणाली से मेरा मतलब यही है कि तुम लोग ध्यान के फलों का आस्वादन करो और उनका आनन्द लेना सीखो।

अपने शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति भी सावधान रहो। प्रकृति की मागों को पूरा करो, क्योंकि मोटरकार को आवश्यक पेट्रोल देना अनिवार्य है। अन्यथा शितान्त खोखला होकर तुम्हारा सिर चक्कर काटने लगेगा और आंखों में धब्बा आ जायेगा। एक क्षीण ढांचे में भगवान् के विचार किस प्रकार स्थापित होंगे? जब तुम इसका पोषण करते हो, तब इस शरीर के प्रयोजन को केवल न भूलो। सड़क पीटने वाले 'रोलर' को तेल, कोयला और अन्य ईंधन दिये जाते हैं। किन्तु, यह अच्छी दशा में क्यों रखा जाता है? सड़क को ठीक करने के लिये। क्या यह बात नहीं है? उसी प्रकार, स्मरण रखो कि जनन-मरण के चक्र की समाप्ति के लिए, तुम शरीर धारण किये हो। इसी उद्देश्य के लिये इस देह को औज़ार के रूप में प्रयोग करो—यही सब कुछ है।

इधर-उधर तथा ऊपर-नीचे उड़ती हुई चिड़िया को विश्राम के हेतु अन्त में किसी वृक्ष पर बैठना ही पड़ता है। उसी प्रकार, सबसे धनी एवं शक्तिशाली व्यक्ति भी विश्राम एवं शान्ति चाहता है। शान्ति आन्तरिक सत्यता की एक दुकान मात्र में प्राप्त हो सकती है। इन्द्रियां तुम्हें दलदल की ओर घसीट ले जायेंगी और वह तुम्हें आनन्द एवं दुःख के विकल्प में, अर्थात् सुदीर्घ असन्तोष के गहनतर तल में धँसा देंगी। असन्तोष को बढ़ाने वाली सभी भावनाएं – भय, द्वेष, इर्ष्या, लोभ आदि की इच्छायें केवल एकत्व के ध्यान द्वारा ही दूर की जा सकती हैं। कोई भी अन्य मार्ग केवल मिथ्या सन्तोष प्रदान करेगा और एक दिन ऐसा आयेगा कि तुम इन सभी खेल सामग्रियों एवं खिलौनों को फेंक दोगे और पुकारोगे, "भगवान्! मुझे चिरशान्ति प्रदान करो।" वाल्मीकि डाकू ने इसी प्रकार प्रार्थना की थी तथा एक पक्के नास्तिक को भी एक दिन शान्ति एवं विश्राम के लिए प्रार्थना करनी पड़ेगी।

लोग पीतल के बर्तनों को हाथ में लेते हैं और समझते हैं कि ये सोने के हैं, किन्तु इतना चमकदार दीखने के लिये उनपर पालिश करना पड़ता है। एक दिन वे इस निरन्तर पालिश चढ़ाने एवं रगड़कर चमकाने की क्रिया से घबड़ा जायेंगे तथा प्रार्थना करेंगे, "इस रगड़ से—इस जन्म से—इस कष्ट से तथा इस पीड़ा से मुझे मुक्त करो।"

जीवन थोड़ा है और समय तेज़ी से भाग रहा है; लेकिन तुम्हारी साधना कछुवे की गति से रेंग रही है। थोड़ा अधिक तेज़ गति से बढ़ने का निर्णय कब करोगे ? तुम्हारी साधना तुम्हारे उस उत्तर के समान है, जो परीक्षा में तुम लिखते हो। यदि तुम केवल पाँच या छः अंक प्राप्त करते हो, तो परीक्षक उसे भी काट देगा और कहेगा, "इस अत्यल्प अंक का क्या लाभ है ? यह उसे कहीं नहीं पहुँचायेगा।" यदि तुम उत्तीर्णाङ्क के निकट पाते हो तब कुछ और कृपाङ्क मिल जायेंगे ताकि तुम उत्तीर्ण हो सको; पर शर्त यह है कि तुम एक परिश्रमी एवं सदाचारी विद्यार्थी रहे हो।

तुम स्वयं को सत्कर्म में, सत्संग में, और सद्विचार में लगाओ। लक्ष्य पर अपने ध्यान को दृढ़ करो। इस अवतार के रहस्य को अभी तुम नहीं समझ सके हो। तुम सचमुच भाग्यशाली हो, अन्य बहुतेरों से अधिक भाग्यवान् हो। यशोदा को केवल तभी ज्ञात हो सका कि वह भगवान् हैं, जब उतनी लम्बी रस्सी बाल कृष्ण के पेट के चारों ओर बांधने में छोटी हो गई। इसी प्रकार तुम मेरी महिमा के वर्णन को वास्तविकता से कम ही पाओगे, तभी तुम्हें विश्वास होगा। इसी बीच, यदि तुम शास्त्रों का अध्ययन करो और भगवान् के अवतार की विशेषताओं को समझो तब तुम्हें मेरे सम्बन्धित सत्यता की एक झलक मिलेगी। आपस में झगड़ने एवं तर्क करने से कोई लाभ नहीं है। **परीक्षण करो, अनुभव करो और तब तुम सत्यता को जानोगे।** विश्वास प्राप्त करने के पूर्व घोषणा नहीं करो; बल्कि जब तक अनिश्चित हो अथवा मूल्यांकन कर रहे हो, तब तक चुप रहो। इस रहस्य का मूल्यांकन करने की कोशिश कर सकने के पूर्व तुम्हें निश्चित रूप से अपनी सभी बुराइयों का परित्याग अवश्य करना है। जब विश्वास पैदा हो, उसे अनुशासन एवं आत्म-संयम के द्वारा चारों ओर से घेर दो; ताकि कोमल अंकुरों की, बकरों एवं पशुओं—छिद्रान्वेषियों एवं नास्तिकों की विभिन्न तत्वों वाली भीड़ से, सुरक्षा की जा सके। जब तुम्हारे विश्वास का अंकुर बड़े वृक्ष के रूप में बड़ा हो जाता है, तब वे ही पशु इस वृक्ष की विस्तृत छाया में विश्राम कर सकते हैं।

६. चुनौती की मनोवृत्ति

(कन्नन हाईस्कूल, चित्तूर, दि० २-३-५८)

कक्षा ६ के विद्यार्थियों ने विद्यालय के शिक्षकों के प्रति जो धन्यवाद व्यक्त किया तथा नीचे की कक्षाओं के छात्रों को जो सलाह दी उसे हम लोगों ने सुना। उनके शब्द बहुत मधुर हैं—अध्यापकों के प्रति कृतज्ञतापूर्ण तथा उन अध्यापकों की देख-रेख में रहने वाले छात्रों के लिये उत्साहवर्धक हैं। एक सुन्दर विद्यालय को, शिक्षकों के एक सुन्दर समुदाय को, तथा सहपाठियों के सुन्दर साथ को, उन्हें विवश होकर छोड़ना पड़ रहा है। इसके लिये उन्होंने अपना दुःख भी व्यक्त किया। यद्यपि उनके शब्द बहुत सुन्दर थे; किन्तु मुझे सन्देह होता है कि उनकी भावनायें भी सुन्दर थीं; क्योंकि अन्ततः वे जानते ही थे कि उन्हें उच्चतर अध्ययन के लिये विद्यालय छोड़ना पड़ेगा। विगत वर्षों में वे यह जानते थे कि यह दिन आयेगा। यह बात, निश्चय ही, अच्छी है कि बालकों ने जो कुछ लाभ प्राप्त किया, उसके लिये कृतज्ञता व्यक्त की। उन्होंने यह प्रतिज्ञा भी की कि वे अपनी पूर्णतम योग्यतानुसार अपने देश की सेवा करेंगे; क्योंकि भविष्य में वे इस देश के संरक्षक बनेंगे। मैं बालकों के साथ में विशेष रूप से सुखी होता हूँ; क्योंकि वे बगीचे की कलियों के समान हैं तथा वे छोटे जवान हैं, जिन्हें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कठिन कर्तव्य को हाथ में लेना है।

विश्व की वर्तमान स्थिति भयंकर आँधी के समान है, जो अशान्ति एवं अस्तव्यस्तता पैदा करती है। मानसिक शान्ति किसी को नहीं है; सर्वत्र भय एवं चिन्ता व्याप्त है तथा आकाश की विजय एवं नवीन उपग्रहों की रचना का जब स्वागत हो रहा है, तब भी भय का राज्य है। यहां तक कि इस देश में भी यह संकट का समय है तथा मामलों को ठीक करने में तनिक समय नहीं

खोना चाहिये, ताकि अन्य वस्तुओं की अपेक्षा लोग शान्ति का सुखभोग सकें, क्योंकि शान्ति के विना जीवन भयावने स्वप्न के समान है।

अन्य विषयों के अध्ययन के समय तुम्हें शान्ति के रहस्य को भी सीखना चाहिये। इस अवसर को नहीं खोना चाहिये; क्योंकि यही वह विवेक है, जो तुम्हारी रक्षा करेगा। वर्तमान शिक्षा का लक्ष्य तुम्हें रोटी कमाने एवं नागरिक बनाना है, किन्तु यह सुखमय जीवन का रहस्य, अर्थात् असत्य एवं सत्य का विवेचन नहीं प्रदान करता है। यह सच्ची ट्रेनिङ्ग है, जो तुम्हारे लिये जरूरी है। वस्तुतः यह तुम्हारा दोष नहीं है, बल्कि उनका दोष है जो इन मामलों का संचालन करते हैं। अविलम्ब या विलम्ब से, उन्हें यह करना ही होगा। विवेक उत्पन्न करना, शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है। धार्मिक आदतों का उन्नयन, धर्म को शक्तिमान बनाना—इन पर ध्यान देना चाहिये; न कि 'पालिश'। भलमनसाहत की प्राप्ति अथवा सामान्य सूचना का संचयन एवं सामान्य कौशल का अभ्यास करना, शिक्षा का उद्देश्य है।

सर्वप्रथम, यह दृढ़ चेतना बना लो कि तुम्हारी आत्मा अमर्त्य आत्मा है, जो अविनाशी है, जो पावन है, शुद्ध है एवं दिव्य है। यह विचार तुम्हें अविचलित उत्साह एवं शक्ति प्रदान करेगा। तत्पश्चात, परस्पर प्रेम एवं समादर के भाव का विकास अवश्य करो। सब तरह के व्यक्तियों एवं सम्मतियों, सभी मनोवृत्तियों को एवं विचित्रताओं को सहन करो। विद्यालय, घर एवं समाज सभी सहनशीलता के प्रशिक्षण क्षेत्र हैं। पाठशाला में शिक्षक एवं विद्यार्थी अपने कर्त्तव्य एवं अधिकार से अवश्य अवगत हों। उनके सम्बन्ध का आधार प्रेम हो; न कि भय हो। केवल प्रेम का वातावरण ही सुखद सहयोग एवं सहमति का निश्चय कर सकता है। सर्वोपरि, तुम सज्जन, सच्चे एवं सदव्यवहारी बनो। विश्वविद्यालय की 'उपाधियों' को वही अधिक वांछनीय एवं मूल्यवान बनायेगा।

परीक्षा उत्तीर्ण करने पर अधिक महत्व मत प्रदान करो; क्योंकि, यदि तुम ऐसा करते हो, तो अनुत्तीर्ण होने पर तुम्हारा भयंकर रूप से हतोत्साहित

होना स्वाभाविक है। हम लोग यह सुना करते हैं कि परीक्षा-फल घोषित होने पर अनेक नवयुवक आत्महत्या कर लेते हैं। प्यारे बच्चो ! ऐसी मूर्खतापूर्ण कोई काम नहीं करना। यदि असफलता आती है, तो उसे आगामी प्रयत्न के लिए उत्साहवर्धक समझो, यह छानबीन करो कि तुम क्यों अनुत्तीर्ण हुए तथा अनुभव द्वारा लाभ उठाओ। यदि तुम इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण कार्यों से स्वयं को बरबाद करोगे, तो मुझे दुःख होगा---यह स्मरण रखो।

अपने विद्यार्थी जीवन में यह सीखो कि जीवन के विप्लवों या कष्टों में कैसे सफल हों तथा दूसरों को कष्ट पहुँचाये बिना और स्वयं कष्ट भोगते हुए कैसे रहें। चुनाव-प्रचारों में और वृद्धजनों की लड़ाइयों तथा कल्पनाओं में तुम साझी-दार बन कर अपने समय को व्यर्थ न करो; क्योंकि वे तुम्हारे सामने एक बुरा उदाहरण उपस्थित करते हैं। उनके तुच्छ आचरणों की नकल करने से तुम्हें अवश्य बचना चाहिए। राजनीति एक प्रकार की 'छलना' है, जो कुछ व्यक्तियों को पीड़ा पहुँचाती है और उनका जीवन चिंताग्रस्त बना देती है। इस छूत के रोग को उनसे ग्रहण न करो। स्वच्छ एवं सन्तुष्ट बने रहो। राजनीति की पेचीदगी एवं गड़बड़ी को समझने के लिये तुम लोग अत्यन्त छोटे हो तथा तुम लोग उन लगों के साधन मात्र हो सकते हो, जो तुम्हें अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयोग करना चाहते हैं। निर्भीक बनो तथा ऐसे मनुष्यों के लिये बलि का बकरा मत बनो। उनसे कह दो कि तुम्हें श्रेष्ठतर कार्य करना है।

जहाँ तक तुम्हारी बुद्धि एवं अनुभव तुम्हें ले जा सकते हैं वहीं तक बढ़ो। हर वस्तु की परीक्षा करो और जो तुमको सही मालूम हो केवल उसी पर विश्वास करो। केवल सीधे यह न कहो, "साई बाबा बहुत अच्छा बोले, या साई बाबा अच्छी तरह लिखते हैं।" साई बाबा का सम्मान केवल तभी करो, जब वे वैसा ही सुन्दर करते हैं जैसा वे सुन्दर कहते एवं लिखते हैं।

भक्ति एवं कर्म---ये दोनों साथ-साथ चलने चाहिये। श्री बी० गोपाल रेड्डी पुट्टापर्ति में अस्पताल का उद्घाटन करने के लिए पधारे थे और उन्होंने कहा

था, "यदि सरकार ने इस अस्पताल की योजना बनायी होती, तो अभी नींव भी नहीं बनी होती।" उसी तरह यह विद्यालय भी अपने संस्थापकों एवं सहायकों की देखभाल तथा प्रेम के कारण इस ख्याति एवं उत्थान को प्राप्त हो सका है। सभी व्यक्तियों को ऐसे विद्यालयों के पोषण में सहयोग करना चाहिये। मतभेद दोनों नेत्रों के समान होना चाहिए। प्रत्येक एक ही वस्तु के विभिन्न चित्र प्रस्तुत करती है और जब दोनों को संयुक्त कर दिया जाता है तब वे एक पूर्ण गोलाकार चित्र प्रदान करती हैं। इस विद्यालय के दान-दाताओं ने एक बहुत अच्छा कार्य किया है—उन्होंने पूजा एवं विनम्रता की भावना से यह काम किया है। उनके त्याग के लिए कृतज्ञ या आभारी बनो और उन्होंने जो अवसर प्रदान किया है, उसका सर्वोत्तम लाभ उठाओ।

अपने प्रारम्भिक उल्लेख में, जिलाधीश ने कहा कि भारतवर्ष में अनेक सन्त एवं साधु पैदा हुए हैं तथा मानव रूप में ईश्वर ने अनेक अवतार लिए हैं। एक सन्देह हो सकता है कि अन्य देशों की अपेक्षा भारत में ही ऐसे अवतार अधिक क्यों होते हैं जब कि संसार इतना विशाल है तथा सभी स्थलों पर मानवता का रक्षण एवं पथ-प्रदर्शन करना है। इसका एक कारण है। तुम मेरा विश्वास करो। अच्छा, समस्त भारत में कोलार में ही सोने की खदान क्यों होनी चाहिये ? जहां सोने की खान है, वहां उसे निकालने के लिये, विलग-विलग करने के लिये, उसे निखारने के लिये तथा जहां स्वर्ण की मांग है उन स्थानों में भेजने के लिये, खान-अभियन्ताओं एवं रासायनिकों की आवश्यकता होती है। क्या यह बात नहीं है ? उसी प्रकार, भारतवर्ष में भी आध्यात्मिक ज्ञान की खदान एवं आध्यात्मिक भण्डार हैं—दर्शन, उपनिषद्, गीता एवं वेद। इसे विशुद्ध एवं अदूषित दशा में तथा महत्ता एवं गुण में गारंटी करके हर देश में उत्सुक जिज्ञासुओं के पास पहुंचाना है। इसीलिये यहां साधुओं एवं सन्तों की परम्परा हमें प्राप्त है। इन महापुरुषों के उपदेशों एवं जीवनियों के कारण इस देश में आध्यात्मिक

सद्गुणों का विशाल क्षेत्र है तथा अधिक उपज के लिए इसकी थोड़ी देख-भाल की आवश्यकता है।

लोग कष्ट भोगते हैं; क्योंकि वे सब तरह की अनुचित कामनायें रखते हैं; उन्हें पूर्ण करने के लिये वे कष्ट उठाते हैं एवं असफल होते हैं। वे वस्तुगत संसार को बहुत अधिक महत्व प्रदान करते हैं। जब आसक्ति या ममता बढ़ती है तभी तुम कष्ट एवं दुख भोगते हो। यदि तुम प्रकृति तथा अन्य सब उचित वस्तुओं की ओर अभ्यान्तर दृष्टि से प्राप्त अन्तर्दृष्टि द्वारा देखो, तब आसक्ति दूर हो जायेगी, यद्यपि प्रयत्न शेष रह जायेंगे। तुम्हें हर चीज अधिक स्पष्ट और दिव्यता एवं भव्यता से परिपूर्ण वैभव के सहित दिखाई देगी। इन नेत्रों को बन्द करो और उन अन्तःनेत्रों को खोलो। तुम्हें तात्विक एकता का कैसा भव्य चित्र देखने को मिलता है। प्रकृति से लगाव सीमित होता है, किन्तु परमेश्वर के साथ अन्तर्दृष्टि के खुलने पर जो लगाव विकसित होता है, वह असीम होता है। यथार्थ का साक्षात्कार करो, इस मिथ्या चित्र का नहीं। भगवान् सभी वस्तुओं में व्याप्त शक्ति है; किन्तु जो लोग यह मानने से अस्वीकार करते हैं कि शीशे में दिखाई देने वाली प्रतिमा उन्हीं का चित्र है, वे भगवान् में कैसे विश्वास कर सकते हैं कि उनमें चारों तरफ प्रत्येक वस्तु में वही झलकता है। यदि किसी घड़े में पानी हो, तब चन्द्रमा उसमें झलकता है। उसी प्रकार, परमात्मा भी तुम्हारे हृदय में स्पष्ट झलकेगा, यदि उसमें प्रेम का जल है। जब परमात्मा तुम्हारे हृदय में नहीं झलकता है तब तुम यह नहीं कह सकते हो कि भगवान् नहीं है। इसका अर्थ केवल यह है कि तुममें प्रेम नहीं है।

यहां विद्यार्थियों तथा वयस्कों ने भी संस्कृत का अध्ययन छोड़ दिया है—एक निरर्थक कठिन भाषा के रूप में इसे त्याग दिया गया है। प्राचीन शास्त्रों की लोगों ने उपेक्षा की है, उन्हें वस्त्रों में बांधकर ऊपर रख दिया है तथा पूजा के लिये उत्सवों के अवसर पर उन्हें नीचे लाते हैं।

किन्तु पाश्चात्य जिज्ञासुओं ने—जिसने उनकी कीमत को पहचाना है, उन्हें अपने देश में लाया है तथा अपनी भाषा में उनका अनुवाद किया है, उनके सार को निष्ठा पूर्वक सीखा है। पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है। तुम सभी भाष्यों पर अधिकार प्राप्त कर सकते हो तथा तर्क एवं बड़े विद्वानों से विवाद करने में समर्थ हो सकते हो; किन्तु जो वे शिक्षा देते हैं उसे अभ्यास करने की कोशिश किये बिना यह समय व्यर्थ खोना है। मैं पुस्तकीय पाण्डित्य का कभी समर्थन नहीं करता हूँ, बल्कि मैं अभ्यास को महत्व देता हूँ। जब तुम परीक्षा भवन से बाहर आते हो, तुम जानते हो कि तुम उत्तीर्ण होगे या नहीं। क्या यह बात नहीं है? क्योंकि तुम स्वयं निर्णय कर सकते हो कि अच्छा उत्तर दिया है या बुरा। उसी प्रकार, साधना में या आचरण में या अभ्यास में तुममें से प्रत्येक यह निर्णय एवं निश्चय कर सकता है कि तुम्हारे भाग्य में सफलता है अथवा असफलता। तुम लोगों के लिए भी साधना अत्यावश्यक है; क्योंकि इसके लिये कोई भी आयु अत्यल्प नहीं है। जिस प्रकार, तुम अपने शरीर का पोषण ठीक समय पर भोजन एवं पानी से करते हो, उसी प्रकार नियमित जप, ध्यान एवं सद्गुणों के विकास द्वारा आन्तरिक आत्मा रूपी शरीर की आवश्यकताओं को अवश्य पूरा करो। आन्तरिक व्यक्तित्व के विकास एवं स्वास्थ्य के लिये सत्संग, सत्प्रवर्तन एवं सत्-चिन्तन अत्यावश्यक हैं। यह शरीर भुवनेश्वर का भवन—उसका भुवन है। इसलिए, तुम जितना काफी एवं चाय नियमित समय पर पीने के लिए सावधान रहते हो, उसी प्रकार आत्मा के स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य हेतु निश्चित समय पर जप एवं ध्यान के लिये भी सावधान रहो।

छात्रों में हर काम के लिये चुनौति की मनोवृत्ति अवश्य हो तथा शारीरिक परिश्रम का वे अवश्य सम्मान करें। अपनी क्षमताओं के कारण जिन्हें सहायता की आवश्यकता है उनकी सेवा के लिये वे अवश्य उत्सुक रहें। अपने बड़ों का सम्मान करो तथा उनकी सेवा करने, सम्मान करने या प्रसन्न करने के किसी अवसर को हाथ से मत जाने दो। जो कुछ भी तुम्हें स्वस्थ आनन्द प्रदान करे,

उसका स्वागत करो; किन्तु भद्दे मनोविनोदों में रसलीन न होना। सिनेमाघरों में प्रायः न जाओ या गलियों में निरुद्देश्य न घूमो तथा अवांछनीय साथियों से न मिलो या विनोद मात्र के लिए बुरी आदतें न सीखो। यह स्मरण रखो, वर्तमान नेताओं के द्वारा नहीं; अपितु तुम्हारे द्वारा इस देश को अत्यन्त ऊँचा उठना है। यह भी ध्यान दो कि जब दूसरे देशों में जो साहसी, बुद्धिमान और सज्जन होता है, उससे लोग सहर्ष सहयोग करते हैं; किन्तु, इसके विपरीत, इस देश में यह राष्ट्रीय चरित्र है कि एक दूसरे से इर्ष्या करो, ऊँचे उठने वाले को नीचे घसीटो तथा उसे सहयोग एवं सहायता देना अस्वीकार कर दो। तुम बालको, स्वयं से यह अवश्य कहो, "ये नेता ऐसे काम करते हैं; यद्यपि वे जानते हैं कि ये गलत काम हैं। कैसी तरस की बात है! किन्तु हम लोग इनसे भिन्न होंगे। हम लोग अपने कार्यों में अपने शब्दों को झूठा नहीं होने देंगे। हम लोग एक साथ मेल एवं प्रेम से काम करेंगे।" यदि तुम ऐसे सद्गुणों का विकास करोगे, तो राष्ट्र समृद्ध होगा। यदि नहीं करोगे; तो राष्ट्र विनष्ट होगा। अपने कानों में इस चेतावनी को निरन्तर बजते रहने दो।

नागरिको, माता-पिता, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों तुम सबको मैं आशीर्वाद देता हूँ। लोगों की उदारता से स्थापित यह स्कूल उच्चत्तर स्तर को अवश्य प्राप्त होगा और मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है कि यह एक महान् संस्था के रूप में चमकेगा।

७. साहस

(बी० जेड्० हाईस्कूल, चित्तूर, दिनाङ्क ३-३-१९५८)

इस वार्ता की कोई पूर्व योजना नहीं बनाई गई थी; किन्तु यह भक्तों की प्रार्थना पूरी करने की ही एक बात है। आज मैं तुम लोगों को कोई नवीन सलाह नहीं दे रहा हूँ। यह वही सलाह या परामर्श है जो मैंने छात्रों को अनेक स्थानों पर दी है; क्योंकि स्थान भिन्न-भिन्न हो सकते हैं; किन्तु छात्र एक ही हैं तथा उनका स्वभाव, चरित्र, आदर्श एवं समस्यायें सभी स्थलों में एक ही हैं।

इस सभा के अध्यक्ष ने अभी कहा है कि तुम सभी परीक्षा की तैयारी में तल्लीन हो तथा तुममें से बहुतेरों ने केवल अभी पुस्तकें उठायी हैं—(पढ़ना शुरू किये हैं।) आजकल, यह बिल्कुल सामान्य हो गया है। वर्ष के नव महीनों तक तुम लोग सब प्रकार के कूड़ा-कर्कट पढ़ते हो और दो या तीन महीने शेष रहने पर तुम लोग सचमुच अत्यावश्यक चीजें अध्ययन करते हो। यह ठीक नहीं है। मस्तिष्क को सब तरह की अवांछित एवं दूषित बातों से भरना अत्यन्त हानिकारक है। जब तुम कुछ अवकाश प्राप्त करते हो, उस समय तुम ऐसी पुस्तकें पढ़ो और उन्हें पचाओ जो विश्व एवं उसके रहस्य के बौद्धिक सौन्दर्यबोध को उन्नत कर सकें। सुखी, शान्तिमय एवं सन्तोषपूर्ण जीवन व्यतीत करना तथा उत्तम शिक्षा, जो धर्म पर आधारित हो, आवश्यक है।

परीक्षा के भय को विकसित मत करो। तुम्हें एक निश्चित समय में कुछ निर्धारित प्रश्नों का उत्तर लिखना पड़ता है। अच्छा, कुछ विद्यार्थी प्रथम प्रश्न के उत्तर से ही प्रारम्भ करते हैं और क्रमशः शेष प्रश्नों को करते हैं; किन्तु यह सर्वथा श्रेष्ठतर है कि कुछ देर रुको और सम्पूर्ण प्रश्नपत्र को पढ़ डालो तथा

उन प्रश्नों को चुनो जिन्हें तुम बहुत अच्छी तरह कर सकते हो और प्रारम्भ में उनका उत्तर लिखो। बाद में कठिन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये तुम्हारे दिमागी अभ्यास के लिये एक अच्छी उत्तेजना प्रदान करेगा।

परीक्षा-भवन में या बाहर कभी उत्साह न खोओ। उत्साह वह उर्वरक है जो विद्वत्ता के पौधे को बढ़ाता है। अच्छा खेत हो; परन्तु खाद या उर्वरक भी आवश्यक है।

तुम सब अवश्य बहादुर, साहसी एवं निर्भीक बनो तथा इस अभिनय की अभी से तैयारी करो। मनुष्य के भीतर पशुओं—कुत्ता, लोमड़ी, गधा एवं भेड़िया आदि का एक पूरा झुण्ड है; किन्तु उसे इन पशुओं की प्रवृत्तियों को कुचलना तथा प्रेम एवं मित्रता के मानवीय गुणों को जगमगाने के लिये प्रोत्साहित करना आवश्यक है। बचपन से पैदा हुई मित्रता अधिक टिकाऊ या स्थायी होती है। इसलिए, तुम अभी से सच्चे मित्र बनाने की कोशिश करो। सर्वोपरि, सद्गुण पैदा करना शुरू करो। पुस्तकीय ज्ञान मात्र की अपेक्षा यह अधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है। वह सच्चा आनन्द प्रदान करता है जो सभी ज्ञान का सार है और सारी विद्या की चरम ऊँचाई है।

हर व्यक्ति को अपना आदमी समझो। यदि तुम उनकी कोई भलाई नहीं कर सकते हो, तो उनको कोई चोट या हानि पहुंचाने से अपने को रोको। अपने हृदय के ताख या आले के भीतर प्रेम का दीपक जलाओ तब लोभ एवं द्वेष के घृणित पक्षी उड़ जायेंगे; क्योंकि वे प्रकाश को सहन नहीं कर सकते हैं। प्रेम तुम्हें विनम्र बनाता है तथा जब तुम महनीयता एवं वैभव का दर्शन करते हो, तब तुम्हें यह झुकने एवं प्रणाम करने के लिये विवश करती है। अनमनीय व्यक्ति अत्यन्त बुरे प्रकार के अहंकार से दुखी होता है। स्मरण रखो केवल मनुष्य ही वह पशु है जो महिमावान् एवं विभूतिवान् (भगवान्) का पहचान तथा सम्मान कर सकता है। उस क्षमता का उपयोग करो तथा इससे सर्वोत्तम लाभ उठाओ।

जिस प्रकार, 'पाजिटिव' एवं 'निगेटिव' दो प्रकार के विद्युत् तार होते हैं और प्रकाश पैदा करने के लिये उनको एक साथ कर दिया जाता है; उसी प्रकार आलोक प्राप्त करने के लिये योग में परमात्मा एवं साधक को भी एक साथ आना है। इसलिये पवित्रात्माओं एवं पवित्र स्थानों में जाओ और पवित्र मनुष्यों के साथ रहो। चुम्बक केवल लोहे को आकृष्ट करता है; उसी प्रकार एक विद्यार्थी को केवल उन्हीं की ओर आकृष्ट होना चाहिये, जो उसके अध्ययन में सहायता करेंगे। केवल ऐसी ही बातें उसे आनन्द, धैर्य, हर्ष एवं साहस प्रदान करेंगी।

यह विश्वास रखो कि अन्त में सत्य ही तुम्हारी रक्षा करेगा। इसलिये, जो भी विपत्ति आवे इसकी चिन्ता के बिना इसपर दृढ़ रहो; क्योंकि यदि तुम सच्चे हो तो अपराध की भावना तुम्हारे हृदय को नहीं कुतरेगी और न कष्ट देगी। कायरता ही तुम्हें सत्य को छिपाने के लिये बाध्य करती है तथा घृणा ही असत्यता की धार को तीव्र करती है। निर्भीक बनो; क्योंकि असत्य की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रेमपूर्ण बनो; क्योंकि छल-कपट की कोई आवश्यकता नहीं है। 'सत्य बोलना' या सच्चाई सरलतम आदत है; क्योंकि यदि तुम झूठ बोलने लगते हो, तब तुम्हें उनकी गणना रखनी पड़ेगी तथा स्मरण रखना होगा कि किससे कितना झूठ कहा एवं सदैव सतर्क रहना पड़ेगा कि एक झूठ का दूसरे से विरोध न हो। किसी व्यक्ति को प्यार करो फिर उसे धोखा देने के लिये तुम्हें झूठ की आवश्यकता नहीं होगी; बल्कि तुम यह सोचोगे कि वह सत्यता का पात्र है तथा सत्यता से कम कुछ भी नहीं।

आजकल की समानता की बातों, चाहे वह नर और नारी की है अथवा सभी मनुष्यों की, के प्रवाह में न पड़ो। हर एक में बुद्धि का एक निश्चित भंडार है तथा सहज ज्ञान, संवेगों एवं वासनाओं की एक विचित्र गठरी है। जिस मात्रा में तुम उन्हें विकसित करते हो या उन्हें मोड़ते हो या उनकी शक्ति को घटाते हो, उसी मात्रा में तुम्हारी साधन-सम्पन्नता एवं उपलब्धि में अन्तर

होना अनिवार्य है। जो भी अवसर तुम्हें प्राप्त हों, उन्हें अपनी कुशलता, स्वास्थ्य एवं चरित्र को उन्नत बनाने के लिए काम में लाओ—यही तुम्हारा वर्तमान कर्त्तव्य है। स्थायी मित्रता बनाओ। अपने कार्य से दूसरों को दुःख न पहुंचाओ तथा अज्ञानता एवं भ्रमकी मात्र से स्वयं कष्ट न उठाओ।

मैं देखता हूँ कि तुम्हारे विद्यालय में कुछ लड़कियाँ भी हैं। उनके साथ अत्यन्त सम्मान का व्यवहार करो तथा उनकी निन्दा न करो। वे तुम्हारी बहनें हैं। उनका सम्मान करके तुम स्वयं सम्मान प्राप्त करते हो और तुम्हारी बहनें भी। नारी के लिये सम्मान ही सच्ची संस्कृति का लक्षण है।

अतएव, मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि अच्छी पुस्तकें पढ़ो, अपने शिक्षकों का आदर करो तथा सबसे प्रेम करो; अपने बड़ों का अनादर नहीं करो; सेवा की भावना पैदा करो; बीमार की एवं जरूरतमन्द की सेवा कैसे करें--यह सीखो तथा दूसरों की सहायता के हर अवसर को पकड़ो। अथवा, कम से कम दूसरों को दुःख देने से दूर रहो।

८. अनेक पथ

(मीलापुर, मद्रास, दिनाङ्क २४-३-५८)

मैं यहां पर भाषण देने नहीं आया हूँ; क्योंकि मैं केवल शब्दों में, वे चाहे जितने विद्वतापूर्ण, भड़कीले एवं समृद्ध हों, विश्वास नहीं करता हूँ। मैं केवल अपने प्रेम को तुम्हें वितरण करने आया हूँ और बदले में तुम्हारे प्रेम का हिस्सा बटाने आया हूँ। मैं इसी को सबसे अधिक महत्व देता हूँ। वही वास्तविक लाभ है।

आज घृणा एवं मिथ्यापन की आँधी धर्म, न्याय एवं सत्य के बादलों को आकाश के सुदूर कोनों तक विकीर्ण कर रही है तथा लोग सोचने लगे हैं कि सनातन धर्म स्वयं समाप्त होने के संकट में है। किन्तु, यह तभी घटित हो सकता है जब भगवान् चाहेंगे तथा जिस भगवान् ने धर्म की स्थापना की है, वह उसे विनष्ट नहीं होने देंगे।

जिस भी धर्म या भाषा में, जिस किसी भी गुरु के द्वारा, जिस किसी भी देश में सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम पर बल दिया जाता है, वहीं हम **सनातन धर्म** पाते हैं। इस बात में संशय न रखो कि जब तक मनुष्य प्रेम के योग्य है तब तक धर्म स्थित रहेगा। जब वही प्रेम तुम भगवान् पर लगा देते हो, तब तुम्हारी मानसिक बनावट में धीरे-धीरे एवं दृढ़तापूर्वक एक क्रान्तिपूर्ण परिवर्तन होता है। तब तुम अपने साथियों के दुःख-सुख में साझीदार होने लगते हो। तत्पश्चात, तुम विश्व के अस्थाई लाभ एवं हानि के परे दिव्य आनन्द के स्रोत से ही सम्पर्क बना लेते हो। भगवान् को अर्पित प्रेम ही भक्ति है और लक्ष्य प्राप्ति का सरलतम पथ है।

भक्ति की अनेक स्थितियां बताई गई हैं। मुख्य-भक्ति वह स्थिति है जहाँ भगवान् की सेवा मात्र का ध्यान रहता है तथा यह स्वयं अपना पुरस्कार है। अपनी सामर्थ्यभर भगवान् की सेवा के अतिरिक्त भक्त और कुछ भी नहीं चाहता है। क्रमशः यही पराभक्ति हो जाती है, जहाँ प्रियतम के नाम एवं रूप के अतिरिक्त कुछ का भी ज्ञान नहीं रहता है। पुनः गौण भक्ति बताई जाती है जिसमें तीनों गुणों का प्रभाव रहता है—आर्त या दुःखी व्यक्ति की मनोवृत्ति, अर्थार्थी—सांसारिक सुख चाहने वाले की वृत्ति, जिज्ञासु अथवा सच्चे खोजी की भावना, तथा ज्ञानी अथवा विवेकी मनुष्य, जो शान्त एवं सन्तुष्ट हो चुका है इस ज्ञान को प्राप्त करके कि **'सब वही है'**—सर्वं तत्।

भक्तिमार्ग पर चलने के लिये न विद्वत्ता, न सम्पत्ति, न यौगिक तप की आवश्यकता है। मुझे बताओ, वाल्मीकि किस वंश के थे? कुचेला के पास क्या सम्पत्ति थी? सबरी में कितना पाण्डित्य था? प्रह्लाद की उम्र क्या थी? गजराज का क्या स्तर था? विदुर की क्या उपलब्धियां थीं? उनके पास प्रेम ही सर्वस्व था तथा उसी की उन्हें आवश्यकता थी। परमेश्वर की अनुकम्पा विशाल एवं असीम महासागर के समान है। तुम्हारी साधना—तुम्हारे जप, ध्यान एवं सदगुणों के व्यवस्थित विकास—के द्वारा यह अनुकम्पा सत्य के बादलों में रूपान्तरित हो जाती है तथा मानवता पर प्रेम की बौछार की तरह बरसती है। यही एकत्र होकर आनन्द की बाढ़ की तरह बहती है तथा पुनः महासागर भगवान् की कृपा के महासागर में लौट जाती है। प्रेम जब मानवता का आलिङ्गन करता है तब उसे हम दया कहते हैं—यह करुणा का गुण नहीं है किन्तु सहानुभूति का गुण है, जो किसी को दूसरों के सुखी होने पर सुखी एवं दूसरों के दुःखी होने पर दुःखी बनाती है।

तुमने सड़कों पर गाते हुए भिखारियों को देखा होगा। क्या नहीं? उनमें से प्रत्येक के एक हाथ में झांझ की एक जोड़ी रहती है जिससे वे समय को चिह्नित करते हैं तथा दूसरे हाथ में एक एकतार का औजार होता है जिसकी

ध्वनि पर अपने गीत की राग मिलाते हैं। रागविहीन होने पर गाना कर्णकटु होगा तथा यह गड़बड़ करने वाली अनेक वस्तुओं का समूह होगा, यदि समय का ध्यान नहीं रखा गाया। जीवन-संगीत भी उसी प्रकार होता है; दैनिक कार्य करते जाओ तथा प्रेम का राग अलापते जाओ। केवल तभी संगीत महनीय है।

मनुष्य को बनाने या बिगाड़ने वाला मन ही है। यदि वह संसार की वस्तुओं में लीन हुआ तब यह बन्धन बन जाता है; यदि यह संसार को अस्थाई समझता है, तब वैराग्य भाव से यह स्वतन्त्र एवं प्रकाश बन जाता है। अच्छी या बुरी होने वाली वस्तुओं के प्रति मोह न करने के लिये मन को प्रशिक्षित करो। इसके सम्मुख सांसारिक ख्याति एवं सम्पत्ति की चमकदार चीजों को नहीं दिखाओ; बल्कि अपने आन्तरिक सोते से निःसृत चिर आनन्द की ओर आकृष्ट करो। यह बड़ा पुरस्कार देगा। तब मन स्वयं गुरु बन जायेगा; क्योंकि यह तुम्हें आगे ही आगे ले जायेगा, यदि इसने एक बार श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन—ध्यान एवं ज्ञान के माधुर्य, को चख लिया है। यह मन ही है जो कुम्हार द्वारा निर्मित प्रतिमा को ईश्वरता से परिपूर्ण करता है तथा भक्त इसी ईश्वरता को उसमें देखता रहता है। यह मन है जो पवित्र मन्दिर को पावनता के सौरभ से आपूर्ण कर देता है।

जो कुछ हम पढ़ते हैं उसका अभ्यास ही शक्ति प्रदान करता है; जैसे पचाया हुआ भोजन एवं व्यायाम स्वास्थ्य को उन्नत बनाता है। त्यागराज ने गाया था कि एक चींटी में और ब्रह्मांड में आन्तरिक प्रेरक शक्ति भगवान् ही है। यद्यपि बौद्धिक दृष्टि से तुम इस विचार से सहमत हो सकते हो; किन्तु जब एक चींटी काटती है तब तुम नहीं सोचते हो कि उस रूप में तुम भगवान् से मिले हो। क्या तुम करते हो? महान् सत्य को चिल्लाकर घोषित न करो; बल्कि अपने आचरण से दिखाओ कि तुम उनको महत्व देते हो तथा तुम उनके द्वारा पथ-दर्शन प्राप्त करते हो। कम से कम इतना ध्यान रखो कि दूसरों को

दोषी ठहराने का अपराध तुम स्वयं न करो। जिस मानदंड को प्राप्त करने हेतु तुम स्वयं इच्छुक नहीं हो, उस पर चलने के लिये दूसरों को आदेश मत दो। यदि तुम इन दो सिद्धान्तों के अनुसार रहते हो, तो किसी प्रतिमा के सामने दंडवत न करने तथा मन्दिर की पूजा में नियमानुसार उपस्थित न होने पर भी तुम भगवान् की अनुकम्पा को प्राप्त कर सकते हो।

ऐसी अनेक सड़कें हैं जिनसे तुम मद्रास पहुँच सकते हो। उसी प्रकार ईश्वर तक पहुँचने के लिये भी अनेक मार्ग हैं; जैसे, प्रेम, सत्य, सेवा एवं नाम-स्मरण। अद्वैतवादी भी है जो 'अपनी आत्मा' को ही ब्रह्मन् के रूप में सारे संसार की रचना का 'सार' मानता है। सभी पथ सही हैं। केवल उनमें से कुछ सरलतर हैं, एवं कुछ अधिक घुमावदार हैं एवं कुछ कठिन हैं। आधारभूत 'सत्य' को समझने का सरलतम मार्ग है परमेश्वर को हर प्राणी में देखना कि इन सब विभिन्नताओं में सबकी निहित एकता के रूप में भगवान ही क्रीड़ा कर रहा है—"सर्वभूतान्तरात्मा" वही है। तुम्हें आश्चर्य हो सकता है और सन्देह भी कर सकते हो कि सभी जीवों में भगवान् का निवास करना कैसे सम्भव हो सकता है। किन्तु, क्या तुम आम की गुठली को नहीं देखे हो जो वृक्ष को जन्म देती है, जिससे सहस्रों फल पैदा होते हैं तथा उनमें से प्रत्येक ठीक उसी बीज के समान होता है, जो सबसे पहले लगाया गया था। उसी प्रकार भगवान् भी अपने संकल्प से प्रत्येक रचित प्राणी में पाया जा सकता है।

तुम स्मरण रखो कि तुम्हारी यथार्थ प्रकृति वैसी ही है जैसी दूसरे की है। इसलिये, वह तुम्हारी ही 'आत्मा' है जो दूसरे नाम से प्रसिद्ध है। जब तुम किसी की कोई भलाई करते हो तो तुम यह अपने ही प्रति करते हो तथा जब तुम किसी का बुरा करते हो तो तुम अपने ही को हानि पहुंचाते हो। इसलिये, दूसरों का बुरा करने से दूर रहो। मुझे स्मरण हो आया है कि फारस के रबिया मलिक का पुत्र हुसैन क्या किया करता था। वह सवेरे उठता था तथा बहुत श्रम एवं भक्तिपूर्वक मस्जिद में प्रार्थना करने के लिये जाता था।

जब वह वापस आता था तब वह नौकरों को अपने बिस्तरों पर सोता हुआ पाता था। धार्मिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा के लिए वह उन पर क्रोधित होता था, सौगन्ध खाता था और उन्हें अभिशाप देता था। तत्पश्चात्, उसके पिता ने उसे दण्ड दिया। उसने कहा, "बेटे ! तुम उन गरीब व्यक्तियों पर क्यों क्रोध करते हो ? वे इतने थके रहते हैं कि सवेरे नहीं उठ सकते हैं। इन निश्छल दासों से झगड़ा करके तुम खुदा के नियमों के पालन से प्राप्त अपने उत्तम फलों को मिटाने की चेष्टा न करो। मैं चाहूँगा कि तुम अधिक विलम्ब से उठो और मस्जिद में जाने से रुको, क्योंकि; अब तुम्हें यह अहंकार हो गया है कि तुम इन सब की अपेक्षा अधिक धार्मिक हो गये हो तथा उन्हें उस अपराध का दोषी ठहराते हो जिसके लिये वे स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं।"

तुम्हें इन छोटी-छोटी बातों के प्रति अवश्य ध्यान देना चाहिये; क्योंकि यह केवल एक स्थिति नहीं है; बल्कि यह सभी प्राणियों के दैवत्व के प्रति सम्मान की मनोवृत्ति द्वारा संचालित छोटे-छोटे कार्यों का एक क्रम है। जीभ पर आती हुई झुठाई, उसके पीछे आने वाली हिंसा एवं कर्म के पीछे छिपे हुए अहंकार को ध्यान पूर्वक देखते रहो। आदत के रूप में इनका विकास होने तथा स्वयं तुम्हारे चरित्र में स्थित होने के पूर्व ही तुम इनको नियन्त्रित करो।

रामस्वामी रेड्डी ने बताया कि मैं बहुत चमत्कार दिखाता हूँ तथा तुम लोग बड़े भाग्यशाली हो कि मेरी बातें सुनने का तुम्हें यह अवसर मिला है। अच्छा, मैं तो एक दूकानदार के समान हूँ जिसकी दूकान में वे सभी वस्तुएँ भरी पड़ी हैं, जिनकी मनुष्य को आवश्यकता होती है। किन्तु, खिड़की पर खड़े आदमी के सदृश, जो तुम मांगते हो, मैं केवल उतना ही देता हूँ। यदि कोई ग्राहक एक तौलिया मांगता है तो मैं उसे धोती कैसे दे सकता हूँ ? किन्तु ये भौतिक वस्तुएँ तनिक भी महत्व नहीं रखती हैं। भक्ति एवं ज्ञान की मांग करो तब मैं सुखी होऊँगा। अभी, बहुत से लोग इसकी उत्कट इच्छा नहीं

करते हैं; यही उनका दुर्भाग्य है। वे केवल अपना अवसर व्यर्थ कर रहे हैं।

कदाचित्, वयोवृद्ध लोग इस स्थिति के दोषी हैं; क्योंकि उभड़ती हुई पीढ़ी को अपने जीवन द्वारा यह दिखाना बड़ों का कर्त्तव्य है कि आध्यात्मिक साधना एवं अध्ययन ने जीवन की कठिनाइयों में उन्हें अधिक आनन्दमय एवं साहसी बनाया है। युवक सदैव बड़ों का अनुकरण या नकल करते हैं। यदि वे बड़ों को झगड़ों में आनन्द पाते देखते हैं तो वे भी झगड़ते हैं तथा यदि वे बड़ों को पवित्र आत्माओं एवं संस्थानों का सम्मान करते हुए नहीं देखते हैं तो वे पवित्रता का विरोध करते हैं। इसलिए, मैं नवयुवकों को उतना दोषी नहीं मानूंगा जितना अधिक बड़ों को दोषी मानता हूँ। बड़ों के हृदय में परमात्मा में आस्था एवं आध्यात्मिक नियमों में उत्साह की कमी के कारण ही इनका ह्रास हुआ है। इसलिये, यह सभी पवित्र आत्माओं का दायित्व है कि अपने जीवन में और जीवन से यह प्रदर्शित करें कि पवित्रता एक दुर्बलता नहीं है; किन्तु यह एक ताकत है; यह शक्ति के स्रोत को खोलती है तथा परमात्मा में आस्था रखने वाला व्यक्ति अनास्था वाले व्यक्ति की अपेक्षा अधिक आसानी से रुकावटों या बाधाओं को पार कर सकता है।

मैं यह आग्रह नहीं करता हूँ कि किसी व्यक्ति को परमेश्वर में विश्वास रखना ही चाहिए तथा मैं किसी को नास्तिक या अनीश्वरवादी कहना भी अस्वीकार करता हूँ। उसकी इच्छा या संकल्प के परिणामस्वरूप तथा उसकी योजना के अनुसार ही प्राणियों का अस्तित्व है। इसलिये, उसकी अनुकम्पा के परे कोई नहीं है। इसके अतिरिक्त हर प्राणी किसी एक या दूसरी वस्तु से प्रेम रखता है; वही प्रेम ईश्वर की एक चिंगारी है तथा हर व्यक्ति को अपना जीवन अन्ततः किसी सत्य पर आश्रित करना पड़ता है; वह सत्य ही परमेश्वर है। सत्य का पूर्ण उल्लंघन करके कोई जीवन व्यतीत नहीं किया जा सकता

है। व्यक्ति को सत्य की ओर ध्यान देना ही पड़ेगा और किसी से सत्य कहना ही पड़ेगा ताकि जीवन जीने योग्य बन सके। अब, वह क्षण ईश्वरता का क्षण है तथा उस समय जब वह सत्य बोलता है या प्रेम करता है, या सेवा करता है, तब वह एक आस्तिक—ईश्वरवादी है।

इसलिए, भक्ति भी अत्यावश्यक नहीं है; बल्कि प्रेम, सत्य, सद्‌गुण, उन्नयन करने, सेवा करने, अपने हृदय को विशाल बनाने, अपने प्रेम में समस्त मानवता को समाहित करने, एवं सबको ईश्वरीय चैतन्यता के रूपों में देखने की उत्सुकता ही अत्यावश्यक है।

●

६. परीक्षा करो और अनुभव करो

('गोखले हाल', मद्रास, दिनाङ्क २५-३-५८)

तुम लोगों के जीवन को सुखी बनाने के लिये मैं यहां आया हूँ; न कि अपने जीवन का वर्णन करने के लिये। इसलिये श्री रामनाथ रेड्डी एवं कस्तूरी ने मेरे विषय में तथा मेरे जीवन की घटनाओं के विषय में जो वर्णन किया वह मुझे पसन्द नहीं आया। तुम्हारा जीवन मेरे लिए अधिक महत्वपूर्ण है; क्योंकि तुम्हारे जीवन को अधिक सुखमय एवं अधिक सन्तुष्ट देखना मेरा उद्देश्य है। सभी प्राणियों को कर्म करना ही पड़ता है; क्योंकि यह विश्व-जनीन अवारणीय कर्त्तव्य है। कुछ लोग सोचते हैं कि केवल पुण्य एवं पाप—धार्मिक एवं पापमय, कार्य ही कर्म कहे जाने के अधिकारी हैं। किन्तु, तुम्हारी हर साँस ही कर्म है। कुछ कर्म ऐसे हैं, जिनके फल का त्याग तुम नहीं कर सकते हो। शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक कर्म हैं तथा आत्मा की भलाई के लिये इनमें से प्रत्येक कर्म का करना समर्पण कहा जाता है।

पुट्टापर्ति का उल्लेख किया गया और वहां जाने को तथा वहां पर भजन से प्रोत्साहन प्राप्त करने की तुम्हें सलाह दी गई। कृपया व्यय मत कीजिये; क्योंकि जहां भी तुम रहो, जब कभी तुम पुकारो, तुम्हरा कक्ष ही प्रशान्ति निलयम हो सकता है और तुम्हारा ग्राम पुट्टापर्ति बनाया जा सकता है। मैं अनुकूलता के लिये सतत् सावधान रहता हूँ तथा ध्यान से सुनने एवं उत्तर देने के लिये सतत् तैयार रहता हूँ।

मेरी कामना है कि तुम सदैव सक्रिय एवं व्यस्त रहो; क्योंकि यदि तुम्हारे पास कार्य नहीं है, तो समय तुम्हारे लिए भारी बन जायेगा। जीवन की निर्धारित अवधि के एक क्षण को भी बरबाद न करो; क्योंकि 'काल' भगवान् का शरीर है। वह 'कालस्वरूप' के नाम से विख्यात है। समय का दुरुपयोग करना

या आलस्य में गवाना एक अपराध है। उसी प्रकार, शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ, जो तुम्हें परमेश्वर द्वारा जीवन-व्यापार की पूँजी के रूप में दी गई हैं, को नष्ट नहीं करना चाहिए। गुरुत्वाकर्षण शक्ति, जो हर वस्तु को नीचे घसीटती है, के समान 'तमोशक्ति' या आलस्य तुम्हें निर्दयतापूर्वक नीचे खींचेगा। इसलिये, तुम्हें सतत् सावधान बने रहना आवश्यक है तथा सतत् सक्रिय रहो। पीतल के बर्तन, जिसे अच्छी चमक के लिये रगड़ना पड़ता है, के समान मनुष्य के मन को साधना अर्थात्, जप-ध्यान की क्रिया द्वारा रगड़ना जरूरी है।

कर्म, जो श्वाँस के समान स्वाभाविक एवं स्वतः होता है, जब एक निश्चित फल के उद्देश्य से जानबूझकर किया जाता है तब वह विकर्म हो जाता है। एक हिन्दू और उसका एक अंग्रेज मित्र एक बार गोदावरी के तट पर पहुँचे। हिन्दू ने कहा, "मैं इस पवित्र जल में स्नान करूँगा।" नदी में कूदते समय उसने 'हरि' नाम दुहराया तथा मन एवं शरीर में ताज़गी लेकर बाहर निकला। उसे बहुत प्रसन्नता प्राप्त हुई कि इस पवित्र नदी में स्नान करने का उसे बहुमूल्य अवसर प्राप्त हुआ। अंग्रेज हँसने लगा तथा बोला, "यह केवल 'एच २ ओ' है। इसमें गोता लगाने से तुम्हें अवर्णनीय आनन्द कैसे प्राप्त हो सकता है? यह सब अन्धविश्वास है। किन्तु हिन्दू ने उत्तर दिया "मुझे मेरे अन्धविश्वास पर छोड़ो और तुम अपने अन्धविश्वास पर टिके रहो।" छिद्रान्वेषी को केवल शारीरिक स्वच्छता प्राप्त हुई, किन्तु आस्तिक को मानसिक पवित्रता भी प्राप्त हुई।

जब तुम गुरुजनों के सामने प्रणाम करने के लिए झुकते हो, तब मन भी अवश्य विनम्र हो। केवल शरीर को ही नहीं झुकना चाहिए। मद्रास में अनेक सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं जो अस्पतालों में जाते हैं तथा वहां रोगियों की सेवा करते हैं। रोगियों की वास्तविक आवश्यकताओं पर ध्यान न देकर, वे पंखा झलने, उनके लिये पत्र लिखने तथा भजन गाने आदि के यान्त्रिक कार्य

करते हैं। अनेक व्यक्ति ये कार्य करते हैं; क्योंकि समाज सेवा का यह प्रचलित नियम है। किन्तु, प्रसन्नतापूर्वक, बुद्धिमत्तापूर्वक, एवं आदरपूर्वक मन के पूर्ण सहयोग से किया गया **विकर्म** है। समाज-सेवियों के कोलाहल से रोगी को उद्विग्न नहीं होना चाहिए ; उसे उस व्यक्ति के आगमन की आशा रखनी चाहिये जो उसका अत्यन्त समीपी एवं प्रिय हो। यदि, तुम्हें इस प्रकार के कार्य पसन्द नहीं हैं, तो तुम्हें ऐसे कार्यों में स्वयं को व्यस्त नहीं करना चाहिये। अपने मन को कार्य की अरसिकता से बोझिल न करो। यन्त्रवत् किया गया कार्य तैलविहीन बत्ती की लौ के समान है। मानसिक उत्साह ही तैल है, इसे उड़ेलो और तब दीपक साफ एवं देर तक जलेगा।

वस्तुतः, आसक्ति रहित किया गया **कर्म ही योग** है। सन्यासी जो कुछ करता है, उसका उसे स्मरण भी नहीं करना चाहिये तथा फल की आशा रखकर उसे कोई भी कर्म नहीं करना चाहिये। यही निष्काम आदर्श है तथा उच्चतम कोटि का है। सर्वोत्तम कर्म वह है जो **कर्त्तव्य** की पुकार पर किया जाता है ; क्योंकि इसे करना ही है, न कि इसे करना लाभदायक है। सन्यासी में क्रोध, चिन्ता, ईर्ष्या या लोभ नहीं होना चाहिए; किन्तु तुम्हारा अनुभव तुम्हें यह अवश्य बताता होगा कि इन दोषों से मुक्त सन्यासी आज अत्यल्प ही पाये जाते हैं। जो सन्यासी अपनी प्रतिज्ञा के प्रति झूठा आचरण करता है, जो नाम एवं ख्याति के लिए लालसा रखता है या जो निन्दा एवं होड़ करने में लीन रहता है, उसकी ओर आंख उठाकर देखो भी नहीं। ऐसे व्यक्तियों द्वारा शास्त्रों एवं वेदों पर अविश्वास करना मत सीखो। जो इस विश्वास में दृढ़तापूर्वक स्थित है कि यह संसार 'मृगतृष्णा' है, केवल वही स्वामी है तथा अन्य केवल रामस्वामी या कृष्णस्वामी हैं जो नाम के शुरू में नहीं किन्तु नाम के अन्त में 'स्वामी' की उपाधि लगाने के अधिकारी हैं।

प्रकृति या 'नेचर' एक अति प्राचीन या पुरातन आस्तित्व है। जीवि भी पुरातन है और इसने पहले अनेक बार प्रवेश किया तथा बाहर आया।

किन्तु, अब यह नयी पोशाक में आया है तथा यह नूतन है जो यात्री के रूप में एक पवित्र स्थान का चक्र लगाने आया है। जीवि के लिये एक पथदर्शक होना आवश्यक है जो पवित्र स्थलों को दिखायेगा तथा तीर्थयात्रा को पूर्ण करने में सहायता करेगा। वह पथदर्शक परमात्मा स्वयं है तथा वेद, उपनिषद् एवं शास्त्र पथदर्शिका पुस्तकें हैं। शास्त्रों के इस एक नियम में निहित है—"भगवान् का नाम बारम्बार लो तथा मन के सामने उसकी महिमा निरन्तर रखो।"

भगवान् कल्पतरु है—वह दिव्यवृक्ष जो मुँहमांगी वस्तु देता है। किन्तु तुम्हें उस वृक्ष के पास जाना पड़ेगा और जो चाहते हो, उससे वह मांगना पड़ेगा। अविश्वासी मनुष्य वह है जो इस वृक्ष से बहुत दूर है, तथा आस्तिक वह है जो उस वृक्ष के निकट आया है— यही दोनों में अन्तर है। वृक्ष कोई भेद नहीं रखता है तथा यह सबको वरदान देता है। यदि उसको नहीं मानते हो तोभी परमात्मा तुम्हें दण्ड नहीं देगा तथा न प्रतिशोध लेगा। किसी विशिष्ट प्रकार की उसकी पूजा नहीं है कि जिससे ही वह प्रसन्न हो सकता है।

यदि तुम्हारे कान हैं तो तुम प्रत्येक शब्द में भगवान् की उपस्थिति की घोषणा करते हुए 'ओम्' सुन कहते हो। सभी पंच तत्व 'ओम्' ध्वनि को उत्पन्न करते हैं। सर्वव्यापी परमात्मा के प्रतीक के रूप में 'ओम्' को पहुंचाने के उद्देश्य से मंदिर में घंटी बजायी जाती है। जब घंटी में 'ओम्' ध्वनित होता है तब तुम्हारे भीतर 'ईश्वरता' जागृत होती है और तुम उसकी उपस्थिति से अवगत होते हो। मन्दिर के पुण्यस्थल के सम्मुख लटकती हुई घंटी का यही अर्थ या प्रयोजन है।

बिना भय के भगवान् के पास पहुंचने का सही ढंग अर्जित करो और अपने उत्तराधिकार के लिए मांग करने का अधिकार प्राप्त करो। तुम इतने

मुक्त बनो कि जब तुम परमेश्वर के पास पहुँचो तब प्रशंसा के शब्द तुमसे न निकल सकें। प्रशंसा करना दूरी एवं भय का सूचक है। तुमने कालीदास की कहानी अवश्य सुनी होगी। उन्होंने कहा था कि उसी क्षण मुक्ति मिल जायेगी ज्योंही उनका 'अहं' दूर हो जायेगा। अर्थात् अहंकार ज्योंही अदृश्य होगा त्योंही वे अपने स्वाभाविक भव्यता के साथ—अर्थात् ब्रह्मन् के रूप में, या अविनाशी आत्मा के रूप में चमक उठेंगे। आई (I) को जब काटा जाता है तब 'क्रास' या शूली का प्रतीक बन जाता है। स्मरण रखो, जिसे फांसी दी जाती है वही 'अहंकार' है। तत्पश्चात् दिव्य स्वभाव स्वयं अबाधित रूप से जन्म लेता है।

भक्ति के द्वारा, परमेश्वर के वैभव का ध्यान करने से तथा विनम्रता एवं भगवान् की अन्य सन्तानों की सेवा करने से 'अहंकार' अत्यन्त सरलता से नष्ट होता है। तुम परमात्मा को किसी नाम से पुकार सकते हो; क्योंकि सभी नाम उसके ही हैं। जो तुम्हें सबसे अधिक प्रिय हो वह नाम एवं रूप तुम चुन लो। इसीलिए भगवान् के अनेक रूपों के लिए सहस्रनामों की रचना की गई है। सहस्र में से कोई एक नाम चुनने की तुम्हें स्वतन्त्रता एवं अधिकार है। तम्हारे स्वभाव एवं संस्कार के अनुकूल गुरु तुम्हें नाम एवं रूप प्रदान करेंगे। यदि गुरु तुम्हें धमकी के साथ आदेश देते हैं तथा साधना की रीति को अपनाने का उपदेश देते हैं यह कहते हुए, "यह मेरी आज्ञा है", तब उनसे कहो कि प्रधानता 'मेरी' सन्तुष्टि की है, न कि आप की; क्योंकि आनन्द एवं तृप्ति के वातावरण में ही तुम्हें साधना करनी है।

गुरु को बाध्य नहीं करना चाहिए कि शिष्य एक मोड़ से उसकी (गुरु की) चाही दिशा में बढ़े; बल्कि शिष्य को यह अधिकार है कि वह अपनी लाइन से बढ़े—अपने संस्कारों एवं मानसिक झुकाव के अनुसार बढ़े। गुरु एवं शिष्य का प्राचीन सम्बन्ध आज उलट-पुलट गया है—समृद्ध एवं प्रभावशाली शिष्य अब गुरु पर शासन करते हैं और आदेश देते हैं कि उन्हें किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए। ख्याति एवं संपत्ति संचित करने की तीव्र इच्छा के कारण

गुरु भी शिष्यों द्वारा अनुमोदित उपायों तक झुकते हैं तथा अपने स्तर को निम्नतर बनाते हैं। इसलिए, गुरु को स्वीकार करने के पूर्व गुरु की, उनके प्रमाणों की, उनके आदर्शों की एवं उनके आचरण की परीक्षा करो। यहां तक कि मेरे विषय में भी, जो कुछ मैं हाथ घुमाकर 'रचना' करता हूँ उनकी कहानियों मात्र से तुम आकृष्ट मत होओ। आंखें बन्द करके निर्णय मत करो। ध्यानपूर्वक देखो, अनुशीलन करो तथा तौलो। तब तक तुम किसी के सामने नहीं झुको जब तक तुम्हें यह आन्तरिक सन्तोष नहीं है कि तुम सही रास्ते पर हो।

सबसे बड़ी बात यह है कि महापुरुषों एवं सन्तों की निन्दा नहीं करो। यही घोर अहंकार एवं दुराग्रह, जो मिथ्या घमण्ड से पैदा होते हैं, के लक्षण हैं।

आज, तुम्हें मेरा यह निर्देश है : जिस प्रकार तुम शरीर को ठीक दशा में चलते रहने के हेतु इस शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करते हो तथा इसे तीन-तीन बार खिलाते-पिलाते हो, उसी प्रकार, अपनी अन्तरात्मा को भी अच्छी दशा में रखने के लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक कुछ समय दो। भगवान् का जप एवं ध्यान करने के लिए एक घन्टा सुबह, एक घन्टा सायंकाल तथा एक घन्टा प्रातःवेला, जिसे ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं, का समय दो। जब साधना में तुम प्रगति करोगे तब तुम अपने भीतर एक महाशान्ति अवतरित होती हुई तथा एक नवीन महाशक्ति का स्रोत उमड़ता हुआ पाओगे। कुछ समयोपरान्त, तुम जहां भी रहोगे और चाहे जिस कार्य में लगे रहोगे, तुम्हारा मन नाम पर टिका रहेगा तथा तब शान्ति एवं आनन्द तुम्हारे अभिन्न सहचर बने रहेंगे।

१०. विवेक एवं वैराग्य

(गुदूर, दिनांक २२-७-५८)

तुम खुले स्थान में व सड़क पर खड़े हो तथा कुछ लोग पेड़ों पर चढ़े हैं। अधिक समय तक तुमसे बातें करना मेरे लिए सचमुच निर्दयता ही है। इन कठिनाइयों के बावजूद भी, तुम लोगों में मेरी वाणी सुनने की मैं तीव्र उत्कण्ठा देखता हूँ। इसीलिए मैं तुम्हें सन्तुष्ट करूंगा। अच्छा, मनुष्य ईश्वर है—यह मुझसे ग्रहण करो। वस्तुतः, यहाँ पर वह एक पवित्र दैवी उद्देश्य के लिए आया है। उसे नीच, दुर्बल या पापी समझना एक महान् त्रुटि है। यह स्वयं एक पाप है। मनुष्य अपने जन्मसिद्ध अधिकार शान्ति को अवश्य प्राप्त करे। उसके लिए अशान्ति अप्राकृतिक दशा है। उसकी वास्तविक प्रकृति शान्ति है। अपनी शान्ति की वसीयत को प्राप्त करने के लिए वह अनेक प्रणालियों को अपनाता है—सम्पत्ति का संचय करता है, स्वास्थ्य कायम रखता है, ज्ञान पर अधिकार प्राप्त करता है तथा कलाओं को सीखता है। किंतु ये बस्तुयें मूलभूत नहीं हैं। इन सभी प्रणालियों के प्रयोग के बाद तीन आधारभूत इच्छायें—यथार्थता के लिए, प्रकाश के लिए तथा अमरत्व के लिए इच्छायें—अभी शेष रह जाती हैं। जब सत्, ज्योति, एवं अमृत प्राप्त होते हैं तभी शान्ति स्थिरता प्राप्त करती है।

मेरा विश्वास करो : तर्क एवं विवाद में लीन होने से कोई लाभ नहीं है; क्योंकि जो जोर से चिल्लाता है, वह सत्य को नहीं समझा है। साक्षात्कार प्राप्त व्यक्ति की भाषा मौन मात्र है। बोल-चाल में सुधार करने का अभ्यास करो। यह अनेक प्रकार से तुम्हारी सहायता करेगा। यह प्रेम को विकसित करता है। अधिकांश गलत विचार एवं झगड़े लापरवाही से कथित शब्दों से ही उत्पन्न होते हैं। पैर के फिसलने से जो चोट लगती है, वह अच्छी हो

सकती है; किंतु जीभ के फिसलने से किसी दूसरे व्यक्ति के हृदय में जो चोट लगती है, वह जीवन भर दुख देती है। जीभ से चार बड़ी गलतियां हो सकती हैं—मिथ्या बोलना, निन्दा करना, दूसरों को दोषी बताना तथा अत्यधिक भाषण करना। व्यक्ति एवं समाज के लिए यदि शान्ति आवश्यक है, तो इन सबको दूर रखना चाहिए। कम एवं मधुर बोलने से भ्रातृत्व का संबन्ध अधिक दृढ़ बनेगा। इसीलिए शास्त्रों ने साधकों के लिए 'मौन' रहना प्रतिज्ञा के रूप में निर्धारित किया है। तुम सभी साधनापथ के विभिन्न स्थितियों के साधक हो। इसलिए, तुम्हारे लिए भी यह नियम या अनुशासन महत्वपूर्ण है।

उन्नति के लिये व्यक्ति एवं राष्ट्र को अवश्य प्रेम पैदा करना चाहिये। प्रेम के कारण ही हिन्दुस्तान महान् बना था तथा यह (प्रेम) शताब्दियों तक सारे देश में छाया हुआ था। सभी संबंधों—सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, व्यावसायिक, पारिवारिक, धार्मिक, कानूनी एवं अन्य—को पुनः प्रेम अवश्य रूपान्तरित करे। पिता बालक को थोड़ी अधिक गहराई एवं बुद्धिमत्ता के साथ प्यार करे, अपने प्रभाव में आने वाले सब पर माँ प्रेम अवश्य बरसावे, बच्चे नौकरों से प्रेम अवश्य करें, इत्यादि। समता की धारणा, कि हर व्यक्ति ईश्वरीय सार का एक भण्डार है, सामाजिक एवं वैयक्तिक व्यवहार को अवश्य बदले।

तुम मुझको 'प्रेमस्वरूप' कह सकते हो। तुम गलती नहीं करोगे। प्रेम ही वह सम्पत्ति है जो मेरे पास है तथा जिसे मैं दीन-दुखियों में बाँटता हूँ। मेरे पास और दूसरी सम्पत्ति नहीं है। भगवान् का अनुग्रह निरन्तर बहता है जैसे तार द्वारा विद्युत् प्रवाह। बल्ब लगाओ, तुम्हारा घर उसी मात्रा में प्रकाशित हो जायेगा जिस शक्ति का बल्ब होगा। बल्ब वह साधन है जो तुम करते हो तथा घर तुम्हारा हृदय है। प्रसन्नतापूर्वक मेरे पास आओ, सागर में गोता लगाओ एवं गहराई का पता लगाओ। किनारे पर गोता लगाने से, तथा यह शपथ करने से कि समुद्र छिछला है एवं इसमें मोती की सीपियाँ नहीं हैं, कोई लाभ नहीं है। गहरा गोता लगाओ तथा अपनी कामनाओं को प्राप्त करो।

स्मरण रखो कि प्रेम की तलवार को विवेक की म्यान में रखना है। मनुष्य को अनिवार्यतः प्रदत्त दो विचार—विवेक एवं वैराग्य हैं, जिनके द्वारा उसे इन्द्रियों को कठोरतापूर्वक नियंत्रित करना है। विवेक तुम्हें शिक्षा देता है कि तुम्हें किस प्रकार अपने व्यवसाय एवं साथी चुनने चाहियें। यह तुम्हें वस्तुओं एवं आदर्शों के सापेक्षिक महत्व को बताता है। वैराग्य तुम्हें अत्यधिक मोह-आसक्ति से बचाता है तथा हर्ष या दुःख के समयों पर विश्रान्ति का भाव उत्पन्न करता है। वे दोनों चिड़िया के दो पंख हैं जो उसे हवा में उड़ाते हैं। तुम्हारे सामने संसार की अस्थायिता एवं ईश्वर के आनन्द की स्थायिता को व्यक्त करते हैं। वे तुम्हें आध्यात्मिक साधना और परमेश्वर की महिमा का कभी न टूटने वाले ध्यान की ओर तुम्हारे जीवन को संचालित करने के लिये तुम्हें उत्तेजित करते हैं।

●

११. नर नारायण

(नेल्लौर, दिनांक, २५-७-५८)

लोग कहते हैं कि हर वस्तु अपने ही समय से अच्छी होती है। यथा, खट्टापन के मधुरता में परिवर्तन होने के पहले फल बढ़ता है और पकता है। मैं इस नगर में दस वर्षों से आ रहा हूँ; किन्तु, केवल आज सायंकाल ही तुम लोग इस अपार भीड़ में मुझे वार्ता करते सुनने का आनन्द प्राप्त कर सके हो। एक शुभ अवसर पर एक ही स्थान में एकत्र तुम सब लोगों से मिलकर प्रसन्न हूँ। आध्यात्मिक साधना के विषय में मैं जो कुछ कहूँगा, वह पहले भी प्रायः कहा गया है। मनुष्य की क्षमता, प्रकृति, बुद्धि आदि उसकी प्रचीन सम्पत्तियाँ हैं। इसलिये, उनको किस प्रकार प्रयोग किया जाय, इस सम्बन्ध में परामर्श भी अति प्राचीन है।

एकमात्र नवीन बात है मनुष्य का विपरीत आचरण उन विभिन्न दिशाओं में, जिसमें वह अपनी बुद्धि को बरबाद कर रहा है, अपनी सामर्थ्य का दुरुपयोग कर रहा है तथा अपनी प्रकृति के प्रति झूठा अभिनय कर रहा है। अपने स्वभाव को उन्नत बनाने के लिये शास्त्रों में बताये गये मार्ग को वह भूल रहा है, इसलिये ही यह सब कष्ट हो रहा है तथा इसलिये ही मेरा अवतरण है।

मनुष्य अनिवार्यतः विवेकप्राप्त विचारशील प्राणी है। वह पाशविक आवश्यकताओं की तृप्ति मात्र से सन्तुष्ट नहीं होता है। उसे कुछ अभाव खटकता है—कुछ गम्भीर असन्तोष एवं कुछ अतृप्त प्यास का अनुभव करता है,—क्योंकि वह अमरता का पुत्र है और वह अनुभव करता है कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है एवं न इसे होना ही चाहिये। यह विवेक उसे

परेशान करने वाली समस्या का उत्तर ढूँढने के लिये, मनुष्य से आग्रह करता है:—मैं कहाँ से आया, मैं कहाँ जा रहा हूँ, यात्रा का अन्त कहाँ है ? इस-लिये, बुद्धि को तीव्र एवं स्पष्ट रखना पड़ेगा। तीन गुणों में से किसी एक या दूसरे के प्रभुत्व के अनुसार बुद्धि तीन प्रकार की होती है:—तामस बुद्धि जो सत्य को असत्य एवं असत्य को सत्य बताती है ; राजस बुद्धि जो लट्टू की तरह इधर से उधर दौड़ती है तथा दोनों के बीच लटकती हुई उनमें भेद नहीं कर पाती है एव सात्विक बुद्धि जो यह जानती है कि कौन सत्य है और कौन असत्य है।

आज, संसार तामसी बुद्धि की अपेक्षा राजसी बुद्धि से कष्ट भोग रहा है। लोगों की इच्छायें एवं अनिच्छायें हिंसात्मक हैं; वे हठधर्मी एवं गुटबाज बन गये हैं; वे तड़क-भड़क, कोलाहल, आडम्बर एवं प्रचार से प्रभावित होते हैं। इस कारण, विवेक आवश्यक हो गया है। लक्ष्य तक पहुंचने के लिये सत्वबुद्धि अनिवार्य है। यह शांतिपूर्वक सत्य को खोजेगी तथा उसका पालन करेगी, चाहे परिणाम जो हो।

सात्विक स्वभाव प्राप्त करने में सबकी सहायता करने के लिये मैं आया हूँ। मेरे चमत्कारों—मेरा इस चीज को 'रचना' एवं उस चीज को देना, तुम्हारी सब इच्छाओं को, मेरा पूरा करना, तुम्हारी बीमारियों को मेरा दूर करना—के विषय में तुम कदाचित सुन चुके हो। किंतु, वे उतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं जितना सत्वगुण जिसकी मैं प्रशंसा करता हूँ तथा जिसके प्रभाव को बढ़ाता हूँ। मैं तुमको स्वस्थता एवं समृद्धि का वरदान निश्चय रूप से देता हूँ; किंतु केवल इसलिये कि श्रेष्ठतर उत्साह एवं कम से कम बाधा के साथ आध्यात्मिक साधना के साथ चल सको। अच्छी तरह खाओ ताकि तुम्हारी शारीरिक शक्तियाँ बढ़ें और समय पर उत्तम शरीर तुम्हारी बुद्धि का अधिक पूर्णतः विकास करेगा। भक्ति शक्ति के पास ले जाती है तथा शक्ति युक्ति प्रदान करेगी। युक्ति तुम्हारे राग या मोह को उचित वस्तु पर टिकाने में सहायता करेगी। इस प्रकार तुम्हारी भक्ति विकसित होगी तथा अन्ततः मुक्ति में फलित होगी।

शरीर एवं उसकी देखरेख की ओर तथा निर्धनता की पराभवकारिणी कमियों से बचने के लिये एक निश्चित मात्रा में ध्यान देना पड़ता है। किंतु तुम सदैव सतर्क रहो कि कहीं इसके चक्कर में न फँस जाओ। तथा इन सबकी क्षणभंगुरता को भूल जाओ। अपने विचारों को निरन्तर आत्मा की ओर लाओ; क्योंकि वही इस समस्त दृश्यमान जगत का सार तथा इस सारे दृश्य के पीछे वही आधारभूत सत्य है।

आत्मविचार की प्रथम सीढ़ी है इस सत्य का अभ्यास कि जो कुछ तुमको पीड़ा देता है वह दूसरों को भी पीड़ा देता है तथा जो तुम्हें आनन्द देता है वह दूसरों को भी आनन्द देता है। इसीलिये, दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम उनसे अपने प्रति कराना चाहते हो। दूसरों के प्रति उस कार्य से अपने को रोको, जो यदि तुम्हारे प्रति उनके द्वारा किया जाता तो तुम्हें कष्ट होता। इस प्रकार तुम्हारे तथा दूसरों के बीच एक पारस्परिक संबंध बढ़ेगा तथा क्रमशः तुम उस स्थिति को प्राप्त होगे जब दूसरों को आनन्दमय देखकर तुम्हारा हृदय आनन्दित होगा एवं दूसरों को दुःखी पाओगे तो तुम्हारा हृदय दुःख से कांप उठेगा। अपने प्रिय जनों अथवा कुटुम्बियों के प्रति जो स्नेह होता है उस प्रकार का प्रेम यह नहीं है। वह तो माया का लक्षण है, किन्तु यह दूसरों के सुख एवं दुःख की साझेदारी स्वतः, तुरन्त एवं सार्वजनीन है। यह आध्यात्मिक साधना के महान् विकास का लक्षण है। लहर यह जानती है कि वह महासागर की एक अंग है तथा सभी लहरें उस एक ही आत्मा रूपी महासागर की अस्थाई रचनायें हैं तथा उनकी वही रुचि है जो महासागर की स्वयं है। दूसरे तुम्हारी आत्मा के ही अंग हैं; तुम्हें उनके विषय में चिन्ता नहीं करनी चाहिये, तथा तुम्हें अपनी ही चिन्ता करनी चाहिये, यही पर्याप्त है। तुम जब बिल्कुल ठीक हो जाओगे; वे भी बिल्कुल ठीक हो जायेंगे; क्योंकि तब तुम्हें अपने से पृथक रूप में उनका ज्ञान नहीं रहेगा। दूसरों की आलोचना करना, दूसरों के दोष देखना,—यह सब अहंकार से पैदा होता है। इसके बदले अपने दोषों को ढूँढो। दूसरे के

दोष देखना अपने ही व्यक्तित्व की विशिष्टता की झलक है। तुच्छ चिन्ताओं की ओर ध्यान मत दो, अपने मन को परमात्मा से लगाओ। तब तुम आगे बढ़ोगे, अच्छे लोगों का साथ पाओगे, तथा तुम्हारी बुद्धि परिवर्तित हो जायेगी।

मधुमक्खी बनो, जो प्रत्येक पुष्प के अमृत को पीती है तथा दूसरों का रक्तपान करने वाला एवं बदले में बीमारी बांटने वाला मच्छर न बनो। सर्वप्रथम सबको भगवान् की सन्तान समझो, अपने भाई एवं बहन के रूप में मानो ; प्रेम के सद्गुण का विकास करो तथा सदैव मानवता की भलाई करो। प्रेम करो और बदले में लोग तुम्हें प्यार करेंगे। यदि प्रेम का विकास करोगे तथा सबका प्रेमपूर्वक सम्मान करोगे, तो तुम्हें घृणा कभी नहीं मिलेगी। यही एक शिक्षा है जो मैं सदैव प्रदान करता हूँ तथा यही मेरा रहस्य भी है। यदि मुझे प्राप्त करना चाहते हो तो प्रेम करो, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, निन्दा करना एवं मिथ्यापन का तुम परित्याग करो। मैं तुमसे विद्वान, एकान्तवासी तथा जप एवं ध्यान में दक्ष सन्यासी बनने के लिये नहीं कहता हूँ। क्या तुम्हारा हृदय प्रेम से परिपूर्ण है ? यही सर्वस्व है जिसकी मैं परीक्षा लेता हूँ।

विश्वास करो कि "प्रेम ही परमेश्वर है", "सत्य ही परमेश्वर है" तथा प्रेम ही सत्य है एवं सत्य ही प्रेम है, क्योंकि जब तुम प्रेम करते हो तब तुम्हें कोई भय नहीं होता है। यह भय ही असत्यता या झुठाई की जननी है। कोई भय न होने पर तुम सत्य का पालन करते हो। प्रेम के दर्पण में तुम्हारी आत्मा झलकती है तथा तुमसे यह रहस्य खोलती है कि आत्मा सर्वजनीन है, प्रत्येक प्राणी में व्याप्त है।

मैं तुमको गूढ़ बातें बताऊँगा तथा जिन बुराइयों से तुम पीड़ित हो रहे हो उनका केवल सरल निदान करूँगा। यहाँ पर बहुत से विद्यार्थियों को देखता हूँ। अच्छा, वे किस लिये पढ़ रहे हैं ? उनका लक्ष्य क्या है ? हम किस प्रकार निर्णय करें कि उन्होंने ठीक तरह से अध्ययन किया है ? जो वेतन

वे प्राप्त कर सकेंगे अथवा जो पद वे प्राप्त कर सकेंगे, क्या उससे हम निर्णय करेंगे ? नहीं। शिक्षा, विवेक एवं विनय के विकास के रूप में, अवश्य फलित हो। शिक्षित मनुष्य क्षणिक एवं महत्वपूर्ण, शाश्वत एवं क्षणभंगुर वस्तुओं में विभेद करने में अवश्य समर्थ हो सके। उसे चमकीले एवं आकर्षक वस्तुओं के पीछे कभी नहीं दौड़ना चाहिए; किन्तु इसके बदले, उसे सुन्दर एवं सुनहली वस्तु के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

उसे यह अवश्य जानना चाहिए कि शरीर को ठीक दशा में, मन को अच्छी तरह नियन्त्रण में, बुद्धि को ईर्ष्या एवं घृणा द्वारा अदूषित, तीव्र एवं स्पष्ट, तथा भावनाओं को अहंकार से अस्पर्शित किस प्रकार रखा जाय। उसे आत्मन् को भी अवश्य जानना चाहिये ; क्योंकि यही उसका केन्द्र या हृदय है तथा वही वह प्रकाश है जो उसके अन्तः एवं बाह्य आत्माओं को आलोकित करता है। यही ज्ञान उसके लिये आजीवन आनन्द, शान्ति एवं साहस स्थिर करता है। बालकों को विनय अथवा दूसरों को पीड़ा पहुँचाने से बचने की कला अवश्य सीखनी चाहिये।

विद्यार्थियों से मैं यह भी अवश्य कहूँगा कि वे अपने माता-पिता के प्रति अवश्य आभारी बने रहें ; क्योंकि वे महान् त्याग करके उन्हें वे सुविधायें प्रदान करते हैं जिनका वे आनन्दभोग रहे हैं। वस्तुतः परमेश्वर के दृश्यमान् प्रतिनिधियों के रूप में पूजना चाहिये ; क्योंकि तुम्हारी सत्ता मात्र के लिये तथा दैहिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में इन सब सुखों एवं साहसपूर्ण उद्योगों के लिये वे ही उत्तरदायी हैं। इसी कारण, उनकी देख-रेख, सम्मान्य तथा पूज्य होनी चाहिये।

एक बालक था जो अपनी बीमार माँ तथा दो छोटी बहनों को जीवित रखने के लिये गलियों में भोजन मांग रहा था। एक रात में, जब वह एक धनी व्यक्ति के मकान के सामने चिल्लाया, तब वह गृहस्वामी उसकी

करुणा-जनक पुकारों के लिये उस पर क्रोधित हो उठा। उस दिन वह बालक बड़ा ही अभागा रहा ; क्योंकि वह कुछ ही टुकड़े संचय कर सका था जब कि उस समय रात को नव बजने वाला था। इसलिये, वह अत्यन्त करुणा-पूर्वक पुकारा तथा इसने महल के भीतर उस धनाढ्य के क्रोध को भड़का दिया। वह बाहर निकला तथा बालक को ठोकर मारकर नाली में गिरा दिया। माँ तथा बहनों को खिलाने के लिये वह भूखा रहने के कारण पहले ही बहुत दुर्बल हो गया था। इसलिये, वह गिर पड़ा तथा इस प्रकार बिलखते हुए उसने दम तोड़ दिया, "माँ ! यहाँ तुम्हारे लिये थोड़ा सा भोजन है।" यद्यपि उसका हाथ निर्जीव हो चुका था, तिसपर भी आंतों को वह कसकर पकड़े था।

ऐसी भक्ति है जिसको माँ अभिमंत्रित करती है तथा वह इसके योग्य है; क्योंकि पुत्र स्वस्थ, सुखी एवं सुन्दर बना रहे—इस हेतु ही उसने सभी पीड़ाओं को सहन किया तथा सभी कुछ बलिदान किया। बालको ! माता-पिता के प्रति उस कृतज्ञता को दिखाओ, उन्हें स्मरण करो तथा उनके वार्षिक मृत्यु-दिवस पर कम से कम एक आँसू द्वारा सम्मान दो। इसे श्रद्धापूर्वक करो। इसलिये, इसे श्राद्ध कहते हैं। यह बात नहीं कि जो कुछ भेंट तुम चढ़ाते हो वह किसी दूसरी दुनियाँ में उन्हें प्राप्त होती है अथवा उसके लिये वे प्रतीक्षा करते रहते हैं; बल्कि यह वह सम्मान है जो तुम्हें कृतज्ञतावश उन्हें प्रदान करना चाहिये, इस वास्ते कि उन्होंने तुम्हें संसार में, जो यह आत्म-साक्षात्कार के लिये सब आश्चर्यजनक अवसरों को प्रदान करता है, रहने के लिये महान् अवकाश प्रदान किया।

माता-पिता बालकों को उस समय अवश्य उत्साहित करें, जब वे आध्यात्मिक प्रगति एवं अध्ययन में कोई सुरुचि प्रदर्शित करते हैं। उन्हें उत्तम उदाहरण भी अवश्य प्रस्तुत करना चाहिये। यहाँ पर मेरे सम्मुख जो बालक हैं, इनमें से अनेक विवेकानन्द एवं त्यागराज हो सकते हैं। उनके भीतर जो गुण

निहित हैं, उनके विकास हेतु बालकों को हर सुविधायें अवश्य प्रदान की जायें । जिस प्रकार, माली अपने स्वामी के बगीचे में पेड़-पौधों का पोषण करता है ; उसी प्रकार माता-पिता यह अवश्य विचार करें कि उनके घरों में जन्म लेने वाले छोटे बालकों की देख-रेख के लिये परमेश्वर द्वारा नियुक्त किये गए वे नौकर या सेवक हैं । अतीत के सन्तों एवं साधुओं के विषय में कहानियाँ सुनाकर वे इनके नन्हें हृदयों में सद्गुण एवं अच्छाई को अवश्य उत्पन्न करें । वे अवश्य ध्यान दें कि लड़कों में भय का विकास नहीं होता है तथा वे डरपोक हो जाँय एवं सीधे चलने में भी डरें ।

मुझपर विश्वास करो तुम सभी अविनश्वर आत्मा हो । हतोत्साह होने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं है । तुम स्वप्न में बहुत हानि उठाते हो : धन की चोरी, अग्निकाण्ड, बाढ़, अपमान इत्यादि । किन्तु, इससे तुम तनिक भी दुष्प्रभावित नहीं होते हो । जब ये बातें जागृत अवस्था में होती हैं तब तुम दुष्प्रभावित होते हो । सचमुच, यह यथार्थ 'तुम' नहीं है जो, वह सब कष्ट भोगता है । यह भ्रम त्याग दो कि तुम भौतिक अस्तित्व या सत्ता हो, तब तुम सचमुच मुक्त हो जाओगे ।

अन्ततोगत्वा मेरे विषय में, मेरे रहस्य को कोई नहीं समझ सकता है । सर्वोत्तम तुम यही कर सकते हो कि मेरे में ही विलीन हो जाओ । पक्ष-विपक्ष में तुम्हारे तर्क करने से कोई लाभ नहीं । गोता लगाओ तथा गहराई का पता लगाओ । खाओ तथा स्वाद समझो । तदनन्तर ; तुम जी भरकर मुझ पर विमर्श कर सकते हो । सत्य एवं प्रेम का विकास करो फिर तुम्हें यह-वह देने के लिये मेरी प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी । अयाचित तुमको सब कुछ प्राप्त होता रहेगा । नर एवं नारायण, दो 'पाजिटिव' एवं निगेटिव विद्युत-तार हैं जो एक साथ मिलने पर विद्युत लाते हैं । नारायण से नर सहयोग करेगा और वह दैवी शक्ति की सवारी बन जायेगा, यदि उसने सत्य एवं प्रेम के दो गुणों को अर्जित कर लिया है !

१२. सहनशीलता

(वेंटकगिरि, दि० २-८-५८)

आज शाम को तुम लोगों से वार्ता करने का मुझे कोई विचार नहीं था! किन्तु यह निश्चय है कि मुझे कोई 'तैयारी' की आवश्यकता नहीं है । मेरे संकल्प एवं सिद्धि तात्कालिक हैं । श्री सुब्बारमैया ने अभी जीवन के कुछ महत्व-पूर्ण पथदर्शक सिद्धान्तों का उल्लेख किया; जैसे, सद्गुणों का विकास, चरित्र का उन्नयन, घृणा का निरोध इत्यादि । इस प्रकार की परामर्ष प्रतिदिन सैकड़ों मन्चों से दी जा रही है । लोग उसे ध्यानपूर्वक सुनते हैं; तथा चले जाते हैं; किन्तु जो उन्होंने सुना है, उसका वे अभ्यास नहीं करते हैं । इसलिये, चीजें जहां की तहां पड़ी रह जाती हैं इसका कारण है कि परामर्ष-दाता जो उपदेश देते हैं उसका स्वयं आचरण नहीं करते हैं । अपने उपदेश की महिमा का स्वयं उदाह-रण बनना उन्हें आवश्यक है । अन्धे व्यक्ति के समान, जो हाथी का वर्णन दूसरों से श्रवण किये गये वर्णन के आधार पर करते हैं न कि अपने वर्णन के आधार पर, सद्गुणों के विकास से लाभ एवं घृणा के निरोध की उपयोगिता का वर्णन करते हैं ।

आज, प्रत्येक व्यक्ति इतनी अधिक आशान्ति में है; क्योंकि आन्तरिक एकता या समन्वय नहीं है । वर्णाश्रम के नियम, जो युगों से चले आ रहे हैं , एक प्रकार के आचरण बताते हैं, जो दूसरी पुस्तकें हम पढ़ते हैं तथा वे दूसरे प्रकार का आचरण बताती हैं । इस प्रकार, अनुभव में विरोधी परामर्श आती है । किंतु शांति मन पर तथा पसंघा या सन्तुलन के रहस्य की मन द्वारा जानकारी पर निर्भर करती है । शरीर कारवां-सराय है, जीवि तीर्थयात्री है तथा मन प्रहरी है । मन सुख चाहता है, यह सोचता है कि सुख इस संसार में प्रसिद्धि, समृद्धि, जमीन एवं सम्पत्ति तथा अन्य व्यक्तियों एवं सम्बन्धियों से प्राप्त होगा । फिर

वह स्वर्ग का महल बनाने लगता है जहां अधिक दीर्घकाल तक अधिक घना सुख रहता है। अन्ततोगत्वा उसे पता लगता है कि शाश्वत एवं अघट सुख अपनी ही आत्मा पर विचार टिकाने से प्राप्त हो सकता है और यही स्वयं आनन्द है।

जीवतत्व माया में छिपे हुये दाने के समान है, जिस प्रकार चावल धान में ढंका रहता है। माया को दूर करना है तथा जीवतत्व को उबालना है, उसे मुलायम बनाना है तथा उसे पचाना है ताकि यह स्वास्थ्य एवं शक्ति प्रदान कर सके। पके हुए चावल की परमेश्वर से तुलना की जा सकती है। इस प्रणाली में मन को काम में लाना है। इसे सत्यम् एवं नित्यम् पर स्थिर करना है। भ्रम या माया की भूसी हटाने के लिये विवेक ही अस्त्र है। विवेचनशक्ति का विकास करो, नित्य एवं अनित्य का, तथा उपयोगी एवं अनुपयोगी का पता लगाओ। यहां तक कि गुरु के चुनने में भी अपने विवेक का प्रयोग करना चाहिये। सभी बादल बरसते नहीं हैं। एक सच्चा गुरु साधकों को अपने व्यक्तित्व मात्र से सुदूर तक खींच लेगा। भड़कीली भाषा में उनके प्रति चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। उनकी उपस्थिति का अनुभव होगा तथा जिज्ञासु उनकी ओर वैसे ही तेजी से बढ़ेंगे जैसे पूर्ण विकसित कमल की ओर मधुमक्खियां दौड़ती हैं।

सदैव महाप्रकाश को ढूंढ़ो तथा आत्मविश्वास एवं अभिरुचि से परिपूर्ण रहो। निराशा के सामने झुको नहीं, इससे फल कभी नहीं प्राप्त होगा तथा यह प्रश्न को और जटिल बनाता है; क्योंकि यह बुद्धि को अंधियारी से ढंकता है एवं तुमको सन्देह में डाल देता है। अत्यन्त उत्साहपूर्वक तुम साधना-पथ का अवलंबन करो। अधूरे हृदय से तथा रुकते कदम से फल नहीं मिलेगा। यह कीचड़दार स्थल को जल की धारा द्वारा साफ करने के समान है। यदि जल की धारा मन्द है, तो कीचड़ साफ नहीं हो सकता है। धारा को अवश्य ही तीव्रता से बहना है ताकि अपने सामने की प्रत्येक वस्तु को ढकेलती हुई वह कीचड़ को बिल्कुल साफ कर सके।

मैं तुम लोगों से केवल प्रथम सीढ़ी की बात करूंगा; क्योंकि वे साधकों के लिये बहुत महत्वपूर्ण है तथा सभी साधक हो या तुम्हें साधक होना अनिवार्य है। "मोक्ष सूक्ष्म में निहित है।" सूक्ष्म साधनों द्वारा मुक्ति प्राप्त हो सकती है। दूसरों के प्रति वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम उनसे अपने लिये कराना चाहते हो। अतीत का ध्यान कभी न करो। जब तुम्हें शोक पराभूत करता है तब अतीत की वैसी ही घटनाओं का स्मरण न करो तथा न अपने शोक को बढ़ाओ। बेहतर है कि ऐसी घटनाओं का स्मरण करो जब शोक ने तुम्हारे द्वार को नहीं खटखटाया, किंतु तुम इसके बदले, सुखी थे। ऐसी घटनाओं से सान्त्वना प्राप्त करो तथा स्वयं को दुख के बहते हुये जल के ऊपर उठाओ। स्त्रियों को 'अबला' कहा जाता है; क्योंकि क्रोध एवं शोक के सामने वे मनुष्य की अपेक्षा अधिक आसानी से झुक जाती हैं। इसलिये मैं उनसे कहूंगा कि इन दोनों को परास्त करने के लिये वे अतिरिक्त कष्ट करें। नामस्मरण इसकी सर्वोत्तम औषधि है तथा यदि पुरुष एवं महिलायें इसका अभ्यास करें, तो भगवान् उनकी रक्षा के लिये आयेंगे। वह उनमें यह विश्वास जगायेगी कि सभी परमेश्वर की इच्छा है तथा शिक्षा देगी कि अत्यन्त हर्षित होने या दुखी होने का तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है।

जब तुम डाक्टर के पास जाते हो, तो जो दवा वे बताते हैं उसे तुम्हें अवश्य लेना है तथा उनके परामर्श एवं निर्देशों का अवश्य अनुसरण करना है। यदि तुम चूक करते हो तो उसको दोष मढ़ने से कोई लाभ नहीं है। यदि तुम दवा नहीं पीते हो, बताये गये नियन्त्रणों का तुम पालन नहीं करते हो अथवा उनकी सलाह के अनुसार तुम अपना भोजन नहीं नियमित करते हो, तो वह तुम्हें किस प्रकार नीरोग कर पायेगा ? जैसा मैं कहता हूँ वैसा करो, मेरे परामर्ष का अनुसरण करो तथा तदनन्तर परिणाम को देखो।

दुर्घटनाओं एवं किसी समय की गई गलतियों पर विचार करते रहना तथा भोजन करने से अस्वीकार करके स्वयं को दण्ड देना मूर्खता का लक्षण है।

यह सुधारने का बहुत ही बचकाना तरीका है। मन को सुधारने के लिये शरीर के साथ दुर्व्यवहार करने से क्या लाभ है ?

यदि तुम दूसरों से प्रेम नहीं कर सकते हो, तो उनसे घृणा न करो अथवा उनके प्रति ईर्ष्या का अनुभव न करो। उनके उद्देश्य को गलत न समझो और न उनकी निन्दा करो; यदि तुमने केवल जान लिया, उनका उद्देश्य तुम्हारे उद्देश्य के समान ही महान् हो सकता है, अथवा उनका कार्य दुष्टता एवं शरारत की अपेक्षा अज्ञानता के कारण हुआ हो। दूसरे मनुष्य के अपराध को क्षमा करो; किन्तु अपने अपराध के लिये कठोरता से काम लो।

इस प्राचीन देश की पवित्र संस्कृति एक ही अपवित्रता से नष्ट हो गई है और वह है असहनशीलता, दूसरों की सफलता, समृद्धि एवं उन्नति को सहन न करना। यदि तुम दूसरों की सहायता नहीं कर सकते हो, तो कम से कम उसे हानि पहुंचाने या दुःख देने से दूर रहो। यह स्वयं एक महती सेवा है। दूसरों का दोष निकालने या उनकी बुराई करने का तुम्हें क्या अधिकार है। जब तुम कहते हो कि उसकी इच्छा के बिना संसार में कुछ भी घटित नहीं हो सकता है तो तुम क्यों उद्विग्न या क्रोधित होते हो ? स्वयं को स्वच्छ करना तुम्हारा धर्म है तथा तुम अपने ही अन्तःकरण को पवित्र करने में लगे रहो। यह प्रयास सभी सत्पुरुषों का सहयोग तुम्हें प्राप्त करायेगा तथा तुम्हें शक्ति प्राप्त होगी एवं तुम्हारे भीतर हर्ष प्रवाहित होगा।

१३. समर्पण द्वारा आनन्द

(राजामुन्द्री दिनांक २-६-५८)

आज का दिवस सचमुच आनन्द का दिवस है, क्योंकि हम लोग यहां **प्रेम** बांटने के लिए एकत्र हुये हैं। इस भवन में स्थान की कमी के कारण तथा तुम लोगों को जो कष्ट हो रहा है उससे कुछ हद तक आनन्द बाधित होता है। जब कि इस अपेक्षाकृत कम भीड़-संकुल मंच पर मुझे अधिक आराम है, मैं आप सबको इस शारीरिक यातना में अधिक समय तक रखना उचित नहीं समझता हूँ। इसीसे अशांतः प्रगट होता है कि तुम लोग क्यों अशान्त एवं उकताये हो, ऐसे अवसरों पर तुम्हें जो मनोवृत्ति रखनी चाहिये थी, उससे यह सर्वथा भिन्न है। तुमने अवश्य देखा होगा कि एक ही समूह के व्यक्ति विवाह-मण्डप में, सिनेमा गृह में, प्रदर्शनी के घेरे में, मन्दिर में या फुटबाल मैच के मैदान में जब वे रहते हैं तब उनकी प्रतिक्रिया एवं व्यवहार में अन्तर होता है। इन विभिन्न स्थलों में वे भिन्न-भिन्न संवेगों से प्रेरित होते हैं। आत्मा की आवश्यकताओं के लिए एक निष्ठावान समूह में जिस बात की आशा की जाती है, वह है उत्सुकता पूर्ण ध्यान, पूर्ण शान्ति तथा सम्मानपूर्ण एवं प्रार्थना पूर्ण मौन। यहां, स्पष्टतः केवल नेत्रों एवं कानों के काम करने की आवश्यकता है तथा जिह्वा के हिलने का कोई काम नहीं है। तुम्हारे साथ मैं उस **प्रेम** की भेंट का हिस्सा बटाने आया हूँ, जिसे मैं अपने साथ लाया हूँ; किन्तु तुम उस गड़बड़ी से ही सन्तुष्ट प्रतीत होते हो जो तुम्हें पहले से प्राप्त हुआ है।

अब, बहुत अधिक अच्छा है। जिन सभाओं में अपेक्षाकृत गहनतर आध्यात्मिक अनुशासनों के विषय में वार्ता हो वहां इसी मौन की आवश्यकता होती है। निश्चय ही, हर जगह एवं हर समय, यह सर्वोत्तम है कि तुम अपनी जीभ को रोको। आध्यात्मिक उन्नति के लिये यही प्रथम अभ्यास है जिसे मैं निर्धा-

रित करता हूँ। अब मैं जो कहूँगा, वह भक्ति भावना से भरे हुए लोगों के लिये नहीं है; क्योंकि वे पथ को जानते हैं तथा वे पहले से ही उस पर चल रहे हैं; और न यह उन लोगों के लिये है जिनके हृदय में भक्ति का फौवारा नहीं है; क्योंकि उनके लिये कुछ कहना केवल नितान्ततः समय व्यर्थ करना है। यह वार्ता विचलित, आस्थिर, तथा हिचकने वालों के लिये है जो उच्चतर शक्ति का ज्ञान रखते हैं तथा उससे संपर्क करने के लिये दुर्बल आकांक्षा रखते हैं। क्योंकि वे या तो विधि को नहीं जानते हैं अथवा वे परिणाम से डरते हैं। इस प्रकार के अर्ध-उत्सुक अर्ध-अरुचिपूर्ण भक्तों के लिये ही यह वार्ता है। मृत एवं परिपुष्ट, दोनों व्यक्तियों के लिये औषधि व्यर्थ है। अस्वस्थ तथा जीवन एवं मरण के मध्य लटकने वाले व्यक्ति को ही दवा देकर शक्ति प्रदान करनी है।

मैं चाहूँगा कि सबसे पहले तुम मनुष्यों के मध्य इस प्रकार जीवन-यापन करना सीखो कि तुम न तो दुःखी हो एवं न दूसरों को दुःखी करो। जीवन का सर्वोत्तम उपयोग करना सीखो। तुम्हें यह अवसर प्रदान किया गया है अपनी सहजात प्रकृतियों, संवेगों एवं वासनाओं को परिष्कृत करने के लिए तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक धरातल पर उच्चतर से उच्चतर उठने के लिए। इस प्रकार के अवसरों का सर्वोत्तम उपयोग करो तथा जितना अधिक लाभ तुम प्राप्त कर सको, उसे प्राप्त करते हुए प्रत्येक घड़ी से लाभ उठाओ। यह नगर पवित्र है। इसलिये, यहां अनेक आध्यात्मिक विद्यालय या संस्थान हैं तथा यहाँ पर अनेक पवित्र व्यक्ति आते हैं एवं महत्वपूर्ण परामर्श देते हैं। मुझे प्रसन्नता है कि जेरपेदु के मलयालस्वामी अब यहां चतुर्मास के लिये आये हैं। उनसे प्राचीन ऋषियों की शिक्षाओं को सीखने के लिये यह तुम्हारे लिये उत्तम अवसर है। मुझे निश्चय है कि तुम्हारे आध्यात्मिक गति को उन्नत करने के लिये वह सुन्दर विचार एवं सुन्दर संवेगों का प्रसार करेंगे।

हाथ में माला लिये रहना तथा तीर्थ-स्थलों में गन्दी बातचीत करना भक्ति

नहीं है। मैं यह सब नहीं चाहता हूँ और न इसे अच्छा समझता हूँ कि मेरी उपस्थिति में कोई फूल एवं फल लावे। अपने विशुद्ध हृदय का सुगन्धित पुष्प एवं साधना से पके हुये मन रूपी फल को मेरे पास लाओ। यही मुझे सबसे अधिक पसन्द है तथा मन को ऊंचा उठाता है। इतने पैसों से खरीदी गई तथा तुम्हारे स्वयं के बाहर बिना प्रयास के प्राप्य वस्तुओं को मैं पसन्द नहीं करता हूँ। उस प्रकार के प्रयास में स्वाद या आनन्द प्राप्त करने के लिये तुम्हें महान् एवं सज्जन पुरुषों का साथ करना चाहिये तथा सद् विचारों में आनन्दित होना चाहिये। जिन किसी प्राप्य साधनों से तुम अपने आनन्द एवं विवेक की राशि को बढ़ाओ, उनके गुण को उन्नत करो तथा उन दोनों का जितना अधिक संचय करना संभव हो सके उतना अधिक संचय करो ताकि जब कभी आवश्यकता पड़ने पर तुम उस भण्डार में से निकाल सको।

आनन्द का प्रमुख स्रोत भगवान् के प्रति समर्पण है। अन्य कोई वस्तु वह सच्चा एवं शाश्वत आनन्द नहीं प्रदान कर सकती है। भगवान् से अपनी घनिष्टता की चेतना प्राप्त करो। वह घनिष्टता कल्पना मात्र या एक मिथ्या सिद्धांन्त नहीं है। स्वयं काल के प्रारम्भ से यह युगों से चला आ रहा है। काल के अन्त तक यह चलता रहेगा, अथवा दूसरे शब्दों में जहां तक हम लोग संबन्धित हैं, काल के अन्त तक चलेगा। गोदावरी नदी, सभी सहायक नदियों का जल निरन्तर सागर में ले जा रही है। पर्वतों पर पानी बरसता है, मैदानों से नदियों के रूप में यह बहता है तथा गोदावरी लबालब डैल्टा से होकर बहती है। उसी प्रकार, जीव भी धर्म मार्ग में पैदा हुआ है, यह मर्ममार्ग से यात्री करता है तथा ब्रह्ममार्ग तक पहुंचने के लिये यह साधुमार्ग से गुजरता है। मर्ममार्ग एवं साधुमार्ग का अनुसंधान ज्ञानेन्द्रिय या प्रातिभज्ञान की इन्द्रिय द्वारा होता है। आसुरी वृत्तियों से उन्हें आदूषित रखो तथा सतर्कतापूर्वक देखते रहो ताकि वे कहीं फिसल न जायें। कर्मेन्द्रियां या विषयेन्द्रियां तुम्हें स्वयं प्रकृति के फन्दों में घसीटती हैं। गाय घास खाती है तथा मांड़ पीती है; किंतु इससे वह मधुर एवं पुष्टिकारक दूध बना देती है। इसी प्रकार अपनी इन्द्रियों द्वारा

जो अनुभव ज्ञान प्राप्त करते हो, उसे दया की मधुरता, भक्ति की पावनता एवं शांति के आधार या आहार को उत्पन्न करने दो।

प्रत्येक प्राणी में **सत्य** की एक चिनगारी है तथा उसके बिना कोई जीवित नहीं रह सकता। प्रेम की एक लौ हर व्यक्ति में है तथा इसके बिना एक अंधकार मय शून्य हो जाता है। वही चिनगारी, वही लौ परमेश्वर है, क्योंकि वही **सर्वसत्य** का तथा **सर्व प्रेम** का वही उदगम स्थान है। मनुष्य **सत्य** को जानने का—या वास्तविकता को जानने का प्रयास करता है; क्योंकि उसका **सत्व** ही परमेश्वर से, जो **सत्य** है, प्राप्त किया गया है। वह **प्रेम** खोजता है दूसरों को बांटने के लिए एवं हिस्सा लेने के लिये; क्योंकि उसका स्वभाव (सत्व) परमेश्वर का है तथा **परमेश्वर प्रेम** ही है।

धान, जिसमें चावल रहता है, के समान माया ही छिलका या भूसी है जो अपने भीतर बीज को छिपाये रहती है। चावल ही जीव है तथा चावल का सार जो पुष्टिकारक तत्व अन्न है, वही परमात्मा है। इसलिये अर्न्तदृष्टि का विकास करो, दूसरों के प्रति उनके दोषों के प्रति चिंता नहीं करो। थोड़ा आत्मविचार करो, उपनिषदों एवं शास्त्रों का अध्ययन करो। वे तुम्हारी अल्प सहायता कर सकेंगे। स्मरण रखो केवल अल्प सहायता। वे नक्शे एवं सूचक-स्तम्भ हैं। तुम उन्हें अवश्य अभ्यास, कार्य एवं अनुभूति में लाओ।

सत्य का ध्यान करो। तुम्हें पता लगेगा कि तुम जल में पैदा होने वाले, थोड़े क्षण तक टिकने वाले तथा उसकी गोद में मरने वाले एवं उसी में विलीन होने वाले चमकते हुये पानी के बुलबुले मात्र हो। तेरी उत्पत्ति का कारण परमेश्वर है, तुम परमेश्वर पर आश्रित हो तथा परमेश्वर में विलीन होते हो। हर जीवधारी उसी अन्तगति को प्राप्त होता है तथा हर जड़ वस्तु भी। क्यों? इस लिये अभी से कर्म करो। प्रथम साधन को अपनाओ—हृदय को शुद्ध करो। बुद्धि को तीव्र बनाओ, अथवा कम से कम परमात्मा का नाम जपना शुरू करो।

समय आने पर, तुम्हें वह शेष सब कुछ प्रदान करेगा। जब कोई व्यक्ति आम का बीज रोपता है, तो उसे यह निश्चय नहीं है कि उसका फल खाने के लिये वह जीवित रहेगा; किंतु यह बात मुद्दे से भिन्न है। रोपना, सेवा करना, रखवाली करना, विकास करना—यही उसका कर्त्तव्य है; शेष उसकी (भगवान की) मरजी पर है। यही सच्चा कर्म-फल-त्याग है।

सर्वोपरि, सबके प्रति प्रेम पैदा करो। वह ईर्ष्या, क्रोध, एवं घृणा को नष्ट कर देगा। राम एवं काम (वासना) एक ही हृदय में एक साथ नहीं रह सकते हैं। विश्वास से विश्वास पैदा होता है तथा प्रेम से प्रेम पैदा होता है। तुम मेरे प्रति कोई द्वष या घृणा नहीं विकसित कर सकते हो। प्रेम समस्त विश्व को एक कुटुम्ब बना देता है। मेल-मिलाप का यह सर्वश्रेष्ठ अस्त्र है। कृषक बीज बोता है तथा बड़ी सतर्कता से रखवाली करता है, घासें निकालता है, कीटाणुओं को नष्ट करता है, आवश्यकता पड़ने पर वह समय से सिंचाई करता है, वह खाद छिड़कता है तथा वह उस समय की प्रतीक्षा करता है जब वह फसल काटेगा तथा अपनी खत्ती को भरेगा। ठीक उसी प्रकार, तुम प्रेम का विकास अवश्य करो तथा घृणा एवं ईर्ष्या की घासों को निकाल डालो। लाल ऐनक लगाओ और सभी चीजें लाल दिखाई देंगी। प्रेम के ऐनक लगाओ और सभी प्रिय एवं सुन्दर दिखाई देंगे। यहाँ, दरिद्रनारायण का उल्लेख किया गया। प्रेम की आंखें केवल निर्धनों को ही नहीं, किंतु धनी को भी या सभी व्यक्तियों को नारायण रूप में देखेंगी। धनी के प्रति भी सहानुभूति रखनी है। तुम धनिकों पर अवश्य तरस खाओ; क्योंकि वैराग्य की मनोवृत्ति को विकसित करने का उन्हें अत्यल्प अवसर प्राप्त है। सबको नारायण स्वरूप देखो तथा प्रेम-पुष्पों से सबकी पूजा करो।

जब तुम पवित्रता के ऐनकों को धारण करोगे तभी मेरे सत्व को समझ सकोगे; पवित्र वस्तुओं की पहचान पवित्र शोधक ही कर सकते हैं। जो तुम खोजते हो वही पाते हो; तुम वही देखते हो जिसके लिए तुम्हारी आँखें

लालायित होती हैं। जहाँ रोगी जुटते हैं, वहीं डाक्टर मिलता है; किन्तु सर्जन चीरफाड़-कक्ष में रहता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी निरन्तर कष्ट-भोगियों एवं प्रयत्न करने वालों के साथ रहता है। जहां कहीं, लोग "ओ भगवान्!" आर्तस्वर से पुकारेंगे, वहाँ भगवान् प्रगट होगा।

एक डाक्टर के प्रमाण-पत्र की जांच किसी दूसरे डाक्टर द्वारा ही की जा सकती है; किन्तु, रोगी को, यदि वह सुधार चाहता है, उसके आदेशों का पालन करना ही पड़ेगा। उपचार की अवधि समाप्त हो जाने के पश्चात् ही, वह अपना निर्णय डाक्टर के विषय में दे सकता है। जब तक वह डाक्टर के आदेशों का कड़ाई के साथ एवं अक्षरशः पालन नहीं करता, तब तक उसे निर्णय बताने का अधिकार नहीं है। इसलिए, **मेरे** विषय में तुम क्या कह सकते हो? मेरे निर्देशों का अनुसरण करो! स्वभावतः, तुममें से प्रत्येक के लिए यह भिन्न-भिन्न होगा। यह स्वभाव, आयु तथा बीमारी की प्रचण्डता, जिसे दूर करने के लिये तुमने पहले निदान किये थे—इन पर वह निर्देश निर्भर करेगा। खाने-पीने तथा अन्य नियमों का, जिसे डाक्टर बताते हैं, पालन करो। अर्थात्, जप, ध्यान, नामस्मरण आदि की तरह केवल साधना ही नहीं करनी है, किन्तु उनके प्रभाव को पुष्ट करने के लिये तुम्हें नियमित जीवन भी व्यतीत करना होगा जो सात्विक भोजन एवं प्रयास सहित सद् विचारों के लिए शुभदायक होगा। जब तक मेरे निर्देशों का तुम पूर्णतया एवं सच्चाई से अनुसरण नहीं करते हो, तुम्हारा चुप रहना ही सर्वोत्तम है। तुम्हें एक कंकड़ का भी ज्ञान नहीं है। फिर तुम एक पर्वत की श्रेणी का मूल्याँकन कैसे कर सकोगे?

तुम निर्भय बने रहो। तुम किसी दूसरी बात से न डरो सिवाय सत्य से। सत्य के समान भय का संचार करने वाली कोई वस्तु नहीं। उदाहरणार्थ, तुम्हारा सत्य ब्रह्माण्ड का सत्य है।

आज, तुम सोच सकते हो कि तुम्हें ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है;

किन्तु जब क्षुधा की वेदना तड़पाने लगती है, तब तुम भोजन के लिये विलपने लगते हो। इसलिये, अपने हृदय को आनन्द के आँसुओं से प्रक्षालित करो, ताकि परमेश्वर उसमें स्वयं प्रतिष्ठित हो सके। किसी जमींदार के पास अन्तरिक्ष तक विस्तृत सभी खेत हो सकते हैं, किन्तु वह एक स्वच्छ टुकड़े पर ही बैठने की नम्रता दिखायेगा। ठीक उसी प्रकार, जब भगवान् किसी भक्त के हृदय को चुनते हैं, तो इसका यह अर्थ नहीं कि अन्य सब हृदय उसके नहीं हैं; किन्तु उसका अर्थ यही है कि वे सब स्वच्छ नहीं हैं। वह हर जगह है तथा हर चीज उसकी है; किन्तु उसकी दृष्टि सब नहीं है। यदि परमेश्वर यह सब न होता, तो वे कैसे चमकती अथवा कैसे अस्तित्व में होतीं जितना वे इस समय भी करती हैं।

अतएव, ईश्वर में एवं अपने में पूर्ण विश्वास रखो। सदैव सद्कार्यों में लीन रहो, सत्य बोलो, तथा विचार, वाणी एवं कर्म से किसी को व्यथा न पहुँचाओ, शान्ति प्राप्त करने का यही मार्ग है। यह सर्वोच्च लाभ है जो तुम इस जीवन में अर्जित कर सकते हो।

●

१४. चतुर किसान

(मितिपदु दिनाङ्क २-६-५८)

आज मैं सचमुच आनन्दपूर्ण हूँ; क्योंकि मेरे सम्मुख वे लोग उपस्थित हैं जो कठोर परिश्रम में लीन रहते हैं तथा जो मजदूरों को सुखी बनाने के लिये अपने सुखों का बलिदान करते हैं। इस भावना से काम करना ही संसार की आवश्यकता है। हर व्यक्ति में ईश्वरता, तथा सत्यता एवं माधुर्य भरा है। उस ईश्वरता को कैसे व्यक्त किया जाय, उस सत्य की कैसे अनुभूति प्राप्त की जाय तथा उस माधुर्य का आस्वादन कैसे किया जाय ?—केवल यही वह नहीं जानता है। इसलिये, वह हर्ष एवं शोक के युगल भार को ढोता है जो एक ही दंड के दोनों सिरों पर बंधे हैं तथा उसके कन्धे के आर-पार लटक रहे हैं। शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य एवं शक्ति को प्राप्त करने के लिये साहस एक टॉनिक (शक्तिवर्धक औषधि) है। सन्देह, हिचक एवं भय का परित्याग कर दो। अपने मन में इन्हें जड़ जमाने के लिये कोई अवकाश न दो। अपनी आन्तरिक दैवी शक्ति से, जिससे वह सम्पन्न है, मनुष्य कुछ भी प्राप्त कर सकता है, यहां तक कि वह **माधव** बन सकता है।

भय एवं शंका का परित्याग करने में सहायता प्राप्त करने के लिये भगवान् के नाम को सदैव अपनी जीभ पर एवं अपने मनमें रखो। नाम दुहराते समय भगवान् अनन्त रूपों, एवं उसकी असीम महिमा का ध्यान करो। तुम स्वयं को **उससे** संयुक्त कर दो, तब इन अचिर दृश्यों से तुम्हारा मोह टूट जायेगा, अथवा कम से कम तुम उन्हें उनके उचित समानुपात में केवल सापेक्षिक यथार्थता-युक्त देखना प्रारम्भ करोगे। जब अत्यल्प अहंकार विशाल महत्व धारण करता है तभी ये सब चिन्तायें होती हैं। सभी परेशानियों की जड़ यही है। तुम्हारे हृदय में आत्माराम, राम हैं जो शाश्वत आनन्द प्रदान करते

हैं। इसलिये, राम नाम जपो। यह वह सूर्य है जो हृदयस्थ कमल को खिला सकता है। 'राम' 'दशरथ' के पुत्र नहीं हैं; किन्तु वह दस इन्द्रियों के शासन-कर्त्ता हैं। रामनाम का उच्चारण श्वांस सदृश स्वतः, बारम्बार एवं अनिवार्य होना आवश्यक है। 'राम' शब्द में शिवमंत्र एवं नारायण मंत्र दोनों का बीजाक्षर है; क्योंकि यह दोनों के द्वितीय अक्षर से बना है। ना-रा-यनाय एवं नमः शिवाय। अतएव, यह नाम सभी सम्प्रदाय के लिए मान्य है यह तुम्हें शक्ति एवं सभी आध्यात्मिक पूंजी से, जिसकी तुम्हें आवश्यकता है, सुसम्पन्न बनाता है।

मन को उद्वलित करने वाले संवेगों के रूपान्तरण मात्र से ही सच्चा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है। यह धन में नहीं प्राप्त होता है। तुम सोचते हो कि धनी व्यक्ति सुखी है। मुझसे पूछो तथा मैं तुम्हें बताऊँगा कि वे दुःखपूर्ण हैं; क्योंकि वे मेरे पास उद्धार के लिये अधिक संख्या में आते हैं। उन्हें बिल्कुल शान्ति नहीं है। एक मजबूत शरीर स्वयं शान्ति नहीं देता है और न पाण्डित्य, अथवा सन्यास अथवा कर्मकाण्ड। केवल, भगवान् के नाम का निरन्तर ध्यान ही वह अडिग शान्ति प्रदान करता है, जो जीवन के उत्थान-पतन से अप्रभावित है। यह मनुष्य को धीर बनाता है।

आज तक, **साई बाबा**, तुम्हारे लिये एक रूपरहित नाम था; किन्तु, अब, यह रूपसहित आया है तथा तुम इस रूप को अपने मन में धारण कर सकते हो। उसी प्रकार राम नाम का भी रूप है तथा तुम जब नाम का जप करते हो. उस समय रूप का चित्र अवश्य (अपने मन में) लाओ तदनन्तर नाम स्थूल हो जाता है तथा जप सरलतर हो जाता है। रूपमय नाम के साथ सदैव निवास करो। तब जीवन भगवान् की निरन्तर पूजा बन जायेगा। यदि सच कहा जाय, तुम कृषक पवित्र आत्मायें हो; क्योंकि जो सेवा तुम करते हो उसके भार से ही झुक जाते हो तथा ईश-प्रार्थना में हाथ उठाये हुये तुम रात-दिन परिश्रम करते हो और धूल तथा कूड़ाकर्कट को सब मनुष्यों को खिलाने के हेतु अन्न को पुष्टिकारक फसल के रूप में परिवर्तित कर देता हो।

तुम्हारा कर्म पवित्र है तथा तुम्हारे प्रयत्नों का फल भी पवित्र है। सद्-गुणों के विकास द्वारा इस कर्म को अधिक फलदायक क्यों नहीं बनाया जा सकता है ? वही सच्ची फसल है जो भगवान् को प्रसन्न करती है तथा विश्व का पोषण करती है।

एक या दूसरे प्रकार की चिन्ता एवं दुःख सदैव रहेंगे। भूतकाल, वर्तमान एवं भविष्य में, जागते, सपनाते एवं सोते समय वे थे, हैं एवं रहेंगे। किन्तु, परमेश्वर में अपनी आस्था रखो तथा समर्पित करके कर्म करो। तब, वे गायब हो जायेंगे। नारदमुनी ने विष्णु भगवान के सामने अपनी प्रशंसा करते हुये कहा कि कोई भी भक्त उनसे श्रेष्ठतर नहीं है; किन्तु यह आत्मश्लाघा अहं-कार-मुक्त भक्त की प्रथम विशेषता के ही विपरीत था। इसलिये विष्णु ने एक किसान को, जो अपने छोटे से खेत को जोतता था, उनसे श्रेष्ठतर भक्त बताया तथा नारद को उसके पास जाने एवं उससे 'भक्ति की कला' सीखने की संस्तुति की। नारद ने बहुत अपमानित अनुभव किया तथा अत्यन्त वेदना के साथ उस निर्दिष्टि ग्राम कि ओर चल पड़े। उन्होंने किसान को खेत में काम करते पाया तथा गोशाला में, तथा घर में देखा; किन्तु अत्यन्त सतर्क दृष्टि रखने पर भी उसे दिन भर में तीन बार से अधिक भगवान् का नाम लेते हुये नहीं पाया— एक बार जब वह बिस्तर से उठता था, दूसरी बार जब उसने दोपहर को भोजन किया तथा अन्त में जब वह रात में सोने गया। स्वभावतः नारद क्रुद्ध हो उठे कि वे एक भक्त के इस तुच्छ दृष्टान्त से हीन ठहराये गये। वे भगवान् की लीला का सदैव मधुर गान करते रहे तथा सर्वत्र नाम संकीर्तन का सन्देश फैलाते रहे। इसके विपरीत, यहां पृथ्वी का सींग सरीखे हाथों वाला एक पुत्र है, जिसने भगवान् को एक दिन में केवल तीन बार स्मरण किया, तथा जिसको विष्णु नें उससे श्रेष्ठतर निर्णीत किया। वे जल्दी से स्वर्ग पहुंचे, उनका चेहरा क्रोध से तथा लज्जा से लाल हो गया; किन्तु उनकी दुर्दशा पर विष्णु केवल हँस पड़े। उन्होंने उन्हें पानी से लबालब एक घड़ा दिया तथा अपने सिर पर रखने एवं एक बूंद भी पानी गिराये बिना कुछ चक्कर लगाने को कहा। नारद

ने वैसा ही किया। यह पूछने पर कि वे कितनी बार भगवान् का नाम स्मरण किये, उन्होंने स्वीकार किया कि घड़ा के न हिलने एवं पानी की एक बूंद न टपकने की चिन्ता में वे भगवान् का नाम स्मरण करना बिल्कुल भूल गये थे। तदनन्तर, विष्णु ने उनसे कहा कि कृषक अपने सिर पर पानी के एक घड़े से अधिक मूल्यवान एवं अधिक गिरने योग्य भार को वहन कर रहा था तथा उनमें से किसी को हानि न पहुँचे, इसके लिये जो सतर्क था, दिन में भगवान् का नाम कम से कम तीन बार स्मरण करने के लिये हठात् उसकी प्रशंसा अवश्य करनी है।

अतएव, यदि दिन में कम से कम तीन बार या दो बार भी भगवान् को कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करते हो, तो यह एक बड़ी उपलब्धि होगी तथा यह तुम्हें महती शान्ति प्रदान करेगी। अपने सांसारिक कर्त्तव्यों का परित्याग न करो, किन्तु अपने अधरों पर परमेश्वर का नाम लेते हुए तथा अपने सिर पर परमेश्वर की कृपा का वरदान मांगते हुए उन कर्त्तव्यों को पूरा करो। अपने पड़ौसियों या दूसरों के मामलों में अपने को उस हद तक न फँसाओ जहाँ तुम उसमें से अपने को नहीं छुड़ा सकते हो। तुम्हारे सम्मुख धरती एवं आकाश में जो सौन्दर्य बिखरा हुआ है उसके ध्यान में अपना समय व्यतीय करो; जैसे, तुम्हारी उगाई हुई फसलों का हरा-भरा विस्तार, शीतल पवन जो तृप्ति एवं हर्ष का संचार करता है, रंग बिरंगे मेघों का सौन्दर्य, पक्षियों का कलरवगान, और जिस समय तुस खेतों की मेढ़ों तथा नहरों के किनारों पर चलते हो, भगवान् की महिमा गान करो। प्रेम के इन सब साक्ष्य के सामने घृणापूर्ण बातें न करो; शान्त वातावरण में क्रोध न करो तथा अपने चिल्लाहटों एवं अभिशापों से गगन को क्षुब्ध न करो। प्रतिशोधपूर्ण आत्मप्रशंसा से वायु को दूषित न करो।

अंकुरित पौधे बढ़ने एवं अधिक फसल देने के लिये पानी एवं खाद्य चाहते हैं। बन्धन-मुक्ति के हेतु आध्यात्मिक लालसा का नन्हा सा पौधा ये दो चजें चाहता है। यह वह सच्ची खेती है जो तुम अवश्य करो। चतुर कृषक का यह लक्षण है।

सबकी अपेक्षा, अपनी आदतों को व्यवस्थित करो, अपने आचरण को शुद्ध करो, तथा अपने व्यवहार को स्वच्छ बनाओ। इस क्षेत्र में धूम्र-पान की एक बुरी आदत ने गहरी जड़ जमा ली है। यह अरोग्यता, आनन्दम्, उत्साहम् 'आण्डम्' का भी नाश करती है। अर्थात् स्वास्थ्य, सुख, क्रियाशीलता एवं आकर्षण का नाश करती है। धुँआ तुम्हारी प्यास को नहीं बुझायेगा और न भूखे पेट को भरेगा। यह तुम्हारे वदन को भद्दा बनाता है तथा तुम्हारे फेफड़ों को खराब करता है। यह तुम्हें दुर्बल एवं रोगी बनाता है। अपने आप को संयमित करो तथा मित्रों या समाज या तथा कथित सामाजिक परम्परा के जाल में न पड़ो तथा इस अन्य बुरी आदतों के शिकार न बनो।

शरीर भगवान् का मन्दिर है तथा इसे अच्छी एवं मजबूत दशा में रखो। यह राजसी एवं तामसी भोजन पानी से तथा राजसी एवं तामसी व्यवहार; जैसे, क्रोध, घृणा, लोभ इत्यादि, अथवा सुस्ती, निद्रा एवं अकर्मण्यता, से भी विगड़ता है। जब तुम्हें किसी पर भयंकर क्रोध आता है तब शांति-पूर्वक चले जाओ तथा एक गिलास ठण्डा पानी पी लो अथवा इसे परास्त करने के लिए भगवान् का नाम जपो, अथवा अपना विस्तर बिछा कर तब तक लेटे रहो जब तक क्रोध का आवेश दूर न हो जाय। क्रोध में तुम दूसरों को गालियाँ देते हो तथा वह भी वही करता है। तापमान बढ़ता है तथा उत्तप्तता पैदा होती है तथा स्थायी हानि पहुंचाती है। पाँच मिनट का क्रोध पाँच पीढ़ियों के सम्बन्ध को विगाड़ देता है, इसे स्मरण रखो। अस्थिपंजर ही वास्तविक हस्तिनापुर है; जहाँ हमारा अन्धा राजा धृतराष्ट्र है, जो अज्ञान का प्रतीक है तथा युधिष्ठिर है जो सुज्ञान के प्रतीक हैं। श्री कृष्ण की सहायता से युधिष्ठिर की सेनाओं को विजय बनने दो, तथा रसना को संसारिक विजयों एवं विनाशों के 'मारगोसा' फल की कटुता का अभ्यस्त होने दो तथा नाम स्मरण की मीठी मिश्री का स्वाद लो। कुछ समय इसका प्रयोग करो तथा तुम परिणाम पर आश्चर्य करोगे। तुम अपने भीतर एवं अपने चारों ओर शांति एवं स्थिरिता में विस्तृत सुधार, अनुभव कर सकते हो। यह शिक्षा सीखो, आनन्द में डूब जाओ तथा अपने साथ को भी आनन्द में भाग लेने दो।

१५. बहादुर बनो

(स्थान—पेद्दापुरम्, दिनाङ्क ३-९-५८)

मुझे हर्ष है कि इतने अधिक लोगों से एक ही समय बातचीत कर सका। कल एवं परसों मुझे यही सुखद अनुभव मिला तथा सहस्रों व्यक्तियों ने मेरी वाणी को ध्यान पूर्वक सुना। इस समय सारा संसार बहुत ही व्यग्र है, यह असन्तोष, चिन्ता, भय, छोटे-छोटे गुट तथा घृणा से परिपूर्ण है। इसे शांत एवं चुप करने के लिये तथा असन्तोष एवं चिन्ता को दूर करने के लिए, तुममें उत्साह एवं साहस अवश्य हो। जब पराजय या निराशा तुम्हें घूर कर देखती है तुम कम-जोरी या नैराश्य से परास्त मत होओ। तुच्छतर या निरर्थक कहकर स्वयं की निन्दा न करो। पराजय का विश्लेषण करो तथा दूसरे समय उनसे बचने के लिए कारणों को ढूँढ़ो।

तुम्हारी मांसपेशियां लौह की तथा नाड़ियाँ फौलाद की हों। तब तुम्हारा संकल्प स्वयं आवश्यक विश्वास का संचार करेगा तथा वह विरोधियों को जीत लेगा। जीवन की फसल के लिये, साहस एवं विश्वास सर्वोत्तम उर्वरक है तथा वे सर्वोत्तम कीटाणु नाशक भी हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र में सिंह के समान बनो, इन्द्रियों के जंगल पर शासन करो तथा पूर्ण विश्वास के साथ निर्भयतापूर्वक भ्रमण करो। बहादुर बनो, शून्य नहीं। मनुष्य, माधव की प्रकृति का है तथा वह अविनाशी, शाश्वत आत्मा है। जिस प्रकार संसार के विभिन्न भागों में पड़ने वाला वर्षा का जल सहस्रों मार्गों से बहता है तथा अन्त में वह महासागर में पहुँचता है; उसी प्रकार विशाल आभाष्य अतीत के लिये मानवेच्छा से उत्पन्न मत, कर्मकाण्ड, धर्म एवं सिद्धान्त सहस्रों भिन्न-भिन्न रूपों में बहते हैं, तथा अनेक प्रदेशों को उर्वरक बनाते हुए, अनेक समाज को शीतलता प्रदान करते हुए, श्रान्त मनुष्य को अनेक प्रकार से नवशक्ति प्रदान करते हुए, वे, अन्ततः आनन्द के महासागर के पास पहुँचते हैं।

परमेश्वर सम्पूर्ण प्रेम है। इसलिये, प्रेम के द्वारा उसे देखा जा सकता है। चन्द्रमा को स्वप्रकाश से ही देखना है. दूसरा प्रकाश उसे आलोकित नहीं कर सकता है। व्यामोह या माया की निशा में भगवान उसी प्रकाश से देखा जा सकता है जो वह स्वयं है--विशुद्ध प्रेम का प्रकाश। वह सत्यं एवं नित्यं है, इसलिये वह मिथ्या या जगत् के परे है।

इस भ्रम का परित्याग करो कि तुम बूढ़े या रोगी हो गये हो या तुम कमजोर एवं दुर्बल हो गये हो। कुछ लोग वर्षों की गणना करते हैं बढ़ती हुई आयु पर शोक करने लगते हैं तथा मृत्यु से भयभीत कायरों की भांति कम्पित होते हैं। किन्तु, स्मरण रखो, हर्ष ही स्वर्ग है एवं विषाद ही नर्क है। सदैव कुछ काम करने के लिये रहे तथा इसे इतनी उत्तमता से करो कि तुम्हें इससे आनन्द प्राप्त हो। व्यामोह वह धूल है जो लालटेन के शीशे पर जम जाता है तथा प्रकाश को मन्द कर देता है। ऐन्द्रिक दृश्यों से तथा उनसे प्राप्त होने वाले सुख से मोह लालटेन के शीशे के भीतर जमने वाली कालिख है और वह भी प्रकाश को मन्द करती है। प्रतिदिन नाम स्मरण के द्वारा शीशे को साफ करो और तब वह तुमको एवं दूसरों को आलोक प्रदान करेगी। अच्छे कार्य करो एवं उत्तम साथी बनाओ। वह आध्यात्मिक साधना में तुम्हारी बहुत सहायता करेगी; क्योंकि जिज्ञासु के लिये उचित वातावरण अत्यन्त अनिवार्य है। यही कारण है कि अतीत में साधक ऋषियों द्वारा कायम आश्रमों में जाकर रहा करते थे। वहाँ पर, उत्तम विचारों, उत्तम कार्यों एवं उत्तम संग में लिप्त होने का अनुपम अवकाश प्राप्त होता था। यह पानी के घड़े को पानी में डुबोकर रखने के समान है; क्योंकि, तब, घड़े का पानी भाप बनकर समाप्त नहीं होगा। किन्तु यदि पानी का घड़ा खुले स्थान में रख दिया जाय ताकि वायु इस पर क्रीड़ा कर सके तथा सूरज इस पर चमकता रहे, तब घड़ा बहुत ही जल्दी रिक्त हो जायेगा। इसलिये बहुत सावधान रहो कि सद्गुणों के विकास में, हानिकर आदतों पर विजय पाने में, नियमित रूप से नियमों के पालन में जो सफलता तुमने प्राप्त की है, वह कुसंग, भद्दी बातों, दोषपूर्ण आलोचना अथवा उच्चतर प्रयत्नों के अभाव के द्वारा नष्ट न हो जाय।

विजय की दैवी केवल बहादुर, परिश्रमी, प्रतापी एवं साहसी योद्धाओं पर मुस्कराती है, जो स्वयं को सिंह बना लेते हैं। ईश्वरीय अनुकम्पा प्राप्य करने पर तुम इतनी अधिक शक्ति द्वारा पुनः सुसज्जित हो जाते हो कि तुम कठिन से कठिन कर्म को पूरा कर सकते हो। इसलिये परमेश्वर को अपने अनुकूल बनाओ तथा अपनी सभी आवश्यकताओं के लिये उसकी अनुकम्पा प्राप्त करो।

जो भण्डार आशंकित रूप से बहुमूल्य है वह है शान्तम् का सद्गुण या समरसत्ता या विक्षेपहीनता। इसका अभ्यास करो तथा इसे अपनी स्वाभाविक मनोवृत्ति बना लो। गलती देखने पर हतोत्साह क्यों होते हो ? बुराई देखकर तुम आकर्षित क्यों होते हो ?

स्मरण रखो कि बुराई में भी उत्तम बनाने की सम्भाव्यता निहित है तथा अच्छाई में बुराई बन जाने की सम्भावना है। क्योंकि धुएँ की कुछ रेखाओं से विहीन अग्नि नहीं है तथा अग्नि की कुछ चिनगारियों से विहीन धुआँ नहीं है। न तो कोई पूर्णतया दुरात्मा है और न कोई पूर्णतया निर्भ्रान्त है। संसार जिस रूप में है उसे उसी रूप में स्वीकार करो। इसे अपनी आवश्यकताओं या मानदण्डों के अनुकूल होने की आशा कभी नहीं करो। यह माया अच्छाई को बुराई की मलिनता से आच्छादित कर देती है तथा यह बुराई को अच्छाई की चमक से जगमग कर देती है। अपनी क्षमता भर विवेचन करो तथा विवेचन करने की क्षमता का विकास करो। विजय करने के लिये संघर्ष करो—यही सर्वोत्तम है जो तुम कर सकते हो। अल्प लोग ही यह कह सकते हैं, 'मैंने विजय पाली है।" तुम्हारी चेतना आनन्द के वास्तविक उद्गम को जानती हैं, यह तुम्हें सही मार्ग पर ठेलेगी। तुम्हारा काम यह है कि तुम इसे 'पथ प्रदर्शक' के रूप में मानों तथा जब हर बार यह तुम्हारी कल्पना का विरोध करता है, तब इसका उल्लंघन न करो।

एक पेड़ पर दो तोते थे। अधिक संक्षेप में वे जुड़ुआं थे। एक शिकारी ने उन्हें फँसा लिया तथा उनमें से एक को निर्दय कसाई के हाथ बेच दिया

तथा दूसरे को एक ऋषि के हाथ बेचा, जो वेद पढ़ाने के लिये एक आश्रम चला रहे थे। कतिपय वर्षों के उपरान्त उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक बहुत गन्दी तरह शपथें लेता था तथा दूसरा भगवान् की लीलाओं का उच्चारण मधुर संगीतमय स्वर में करता था जिससे श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे। वातावरण का ऐसा प्रभाव होता है। अतएव, प्रयत्नपूर्वक सत्संग प्राप्त करो।

यदि सत्य को परिव्यक्त करके मनुष्य असत्यता के पथ पर चलने लगे तब, जैसा अप्पाराव ने अभी कहा है, क्षेम के बदले इस पृथ्वी पर क्षाम (विनाश) का आगमन होगा तथा समृद्धि के स्थान पर अकाल से देश में सूखा पड़ जायेगा। अप्पाराव ने बताया कि हिन्दुस्तान में भगवान् के अनेक अवतार हुए हैं। यह सत्य है, क्योंकि जहाँ पाठशालायें हैं, वहाँ शिक्षकों को उपस्थित होना ही है। यह नहीं हो सकता कि शिक्षक कहीं हों, पाठशाला दूसरे स्थान पर हो, श्यामपट्ट और कहीं है तथा घंटी दूसरी जगह हो। गुंढूर के निकट अबरक की खदानें हैं तथा तुम यह प्रश्न नहीं कर सकते हो कि पेद्दापुरम के पास वे क्यों नहीं पाई जाती हैं। यह ऐसा ही है, इतना ही सब है। उसी प्रकार भारतवर्ष में भी आध्यात्मिक्ता की खदानें हैं। इसलिये इसे चलाने के लिये, इसे निकालने के लिये तथा इसे काम के योग्य तैयार करने के लिये इंजीनियरों को यहाँ आना पड़ता है। यही कारण है कि यहाँ पर भगवान् के अधिक अवतार प्रकट होते हैं। मानवता के लाभार्थ इसके निकालने एवं उपयोगिता की नवीन दशाओं एवं प्रणालियों के व्यावहारिक प्रयोगार्थ यहाँ पर वातावरण भी हितकर है।

भारत का अर्थ है उन व्यक्तियों का देश जो भगवान् की ओर रति या प्रेम रखते हैं। भगवान् को भी मानव रूप में आना पड़ता है तथा मनुष्यों में इधर-उधर भ्रमण करना पड़ता है ताकि उनकी बातें ध्यानपूर्वक सुनें, उनसे सम्पर्क करें, उनसे प्रेम करें, उनका आदर करें, सम्मान करें तथा उनके आदेशों का पालन करें। एक जमात के सदस्य के रूप में उन्हें मनुष्य की भाषा में बोलना पड़ता है तथा मानव के समान व्यवहार करना पड़ता है। अन्यथा, लोग उनका निषेध करेंगे, उपेक्षा करेंगे, उनसे भयभीत होंगे तथा उनसे दूर रहेंगे। अवतार

मानवता को गलाने वाले बर्तन में लेजाकर डालता है ताकि तलछट एवं अन्य निम्न कोटि की धातुएँ, जो उसके असली मूल्य को नष्ट कर देते हैं नीचे बैठ जाएं। जब छोटे बालक पानी की पेंच को, उसकी याँत्रिक कला को न जानते हुए भी घुमातें हैं तथा पानी उनके ऊपर वृत्ताकार बौछारों की वर्षा करके उन्हें सराबोर कर देता है। उसी प्रकार मनुष्य शोक से भीग जाता है; क्योंकि वह समतल प्रवाह पर चलने की कला को जानता ही नहीं।

यदि नायक उत्तम है, तो नाटक शानदार होगा; किन्तु यदि नायक अकुशल है तो नाटक नष्ट हो जायेगा। देशवासियों के नेता अपने आत्मा में अवश्य आस्था रखें तथा उससे उत्पन्न होने वाले भरोसे में भी आस्था रखें तभी वे दूसरों का नेतृत्व कर सकते हैं तथा दूसरों को वे गुमराह भी नहीं करेंगे; क्योंकि वे सबमें आधारभूत आत्मा से घनिष्ठता का अनुभव करेंगे।

अप्पाराव ने मेरे विषय में कहा, मेरे रहस्य का ज्ञान केवल मेरे पथ पर, जिसकी मैंने यहाँ स्थापना की है, चलने से ही प्राप्त होगा। तुम स्वयं को समझो तथा वह तुम्हें मुझे भी व्यक्त कर देगा।

अपने अन्तः सत्य को जानने तथा अपने निम्नतर स्वभाव पर विजय पाने के लिये जंगल में या किसी गुफा में जाने की आवश्यकता नहीं हैं। वस्तुतः, वहाँ तुम्हें अपने क्रोध को प्रदर्शित करने का कोई अवसर ही नहीं है। इसलिये, वहाँ पर प्राप्त विजय शाश्वत या वास्तविक नहीं होगी। जीवन-संग्राम में विजयी बनो—इस संसार में रहते हुए भी इसके स्पर्शों से अति दूर रहो। यही वह विजय है। जिसके लिये तुम बधाईयों के पात्र हो।

●

१६. शिक्षण

(वेंकटगिरि, दिनांक ६-६-५८)

एक घंटे पहले तक, इस समारोह के संगठनकर्त्ता निराश थे कि मैं नहीं आ सकूँगा। संचित नैराश्य से उन्होंने समझौता कर लिया था और वे विकल्प व्यवस्था करने में बड़ी तत्परता के साथ जुटे थे ; क्योंकि उन्होंने सुन लिया था कि गोदावरी में भारी बाढ़ है तथा मैं राजमुन्दरी में हूँ। उन्हें भय था कि मैं बाढ़ को पार नहीं कर सकूँ तथा इस कार्य के लिये दक्षिण नहीं आ सकूँ। मैंने इस समारोह के हेतु अपने आगमन की घोषणा करने के लिये अनुमति प्रदान की थी। इसी बात से उन्होंने यह निष्कर्ष भलीभाँति निकाला होगा कि बाढ़ शाँत हो जायेगी तथा मैं उनके बीच उपस्थित होऊँगा ; क्योंकि एक बार मेरा शब्द निकलने पर तदनुसार ही अवश्य घटित होना चाहिये। इसमें सन्देह न करो। राम के सामने क्रुद्ध लहरें मौन हो गई थीं, तथा मेरे लिए भी बाढ़ ठीक समय से नीचे उतर गई।

विगत रात्रि के ११ बजे, हम लोगों ने चेब्रोल छोड़ा तथा नुजविद भोर में पहुँचे। वहां से हम लोगों ने दिन भर मोटर दौड़ाई और रास्ते में कहीं एक स्थान पर भी नहीं रुके और इस नगर के बाहर पुल के पास कुमार-राजा तथा अन्य लोगों को देर तक मैंने देखा फिर भी मोटर की गति को मन्द नहीं किया गया, क्योंकि जैसा मैंने वचन दिया था, ५ बजे सायंकाल वहां पहुंचने के लिए निश्चय कर लिया था तुम्हें मैं बताता हूँ कि संगठक थोड़ा हक्के-बक्के हो गए; क्योंकि वे अफवाहों से घबड़ा गए थे कि मैं रुक गया हूँ तथा मुझसे डाकखाने, तार या टेलीफोन से भी बात नहीं हो सकती है। उन्होंने मुझसे कुछ समय माँगा और करीब दो घंटे में उन्होंने जल्दी-जल्दी व्यवस्था करने के लिए बताया। मेरा विश्वास करो, मुझे कोई नहीं रोक सकता, मेरी इच्छा अवश्य विजयी

होगी। जिन लोगों ने मेरे रुकने की कथा फैलाई थी, वे मेरी सत्यता से अपरिचित हैं।

इस मानव रूप में, मुझे कोई रोक नहीं सकता है, तथा मुझ पर कोई छाया भी नहीं डाल सकता है, इसे निश्चय समझो। निन्दा, अविश्वास एवं अज्ञानता की ताकतों के द्वारा मेरा एक बाल-बाँका नहीं हो सकता है। मेरा संकल्प अवश्य पूरा होगा तथा मेरा कर्म अवश्य परिपूर्ण होगा। मेरा मिशन—उद्देश्य अवश्य सफल होगा। दैवी आलोक से मैं मानव हृदय को आलोकित करने एवं उस शान्ति के पथ से दूर घसीटने वाली माया से मनुष्य को मुक्त करने के लिए आया हूँ जो आत्म साक्षात्कार की पूर्ण समरसता है।

यह विद्यालय राजा साहब के स्वर्गीय बन्धु से सम्बन्धित है। वे अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में भी मेरे नाम का ध्यान करते रहे। इसी कारण, इसका उद्घाटन करने के लिये मैं सहमत हुआ। मैं देखता हूँ कि उनका नाम जो परमेश्वर की अनेक सुन्दर पदवियों का दीर्घ संयोजन है तथा उनमें से प्रत्येक ईश्वरी महिमा से सुरभित है, एक-एक अक्षर की एक रस्सी में संक्षिप्त कर दिया गया है। इसमें कोई सौरभ या माधुर्य या महत्त्व नहीं है। यह उचित नहीं है। किसी नाम को काट-छाँट करके अथवा उसके प्रकाश को मिटा करके उसको आभा से विहीन क्यों किया जाय। उनके पूर्ण नाम के लिए आपने अब टूटे हुए अक्षरों की जो सूची रखी है, कदाचित अधिक सुविधा के लिए, मुझे मौलिक नाम की अपेक्षा अधिक गूढ़ मालूम होता है। वह नाम, यद्यपि बड़ा था, भगवान की भव्यता का स्मरण कराता था। इसी कारण, शास्त्रों में ऐसे नामों का अनुमोदन किया गया है, ताकि जब कभी उनका उल्लेख हो, परमेश्वर का कोई भी मधुर एवं सुन्दर चित्र मन की आंखों के सामने प्रगट हो जाय।

यह सचमुच, उत्तम बात है कि इस नगर की बालिकाओं के लिए एक हाई-स्कूल हो गया। इसे प्रारम्भ करने के लिए आप सबके प्रयास की मैं प्रशंसा करता हूँ तथा मैं देखता हूँ कि भवन तथा अन्य सामग्रियां सन्तोषजनक हैं। मैं

आशीर्वाद देता हूँ कि यहाँ तथा अन्यत्र पढ़ने वाली बालिकायें (क्योंकि सभी विद्यालय मेरे हैं, चाहे मैं उनका व्यक्तिशः उद्घाटन करता हूँ या नहीं)। धर्म में आस्था का विकास करें तथा सबके प्रति सहानुभूति रखें। भारत को एक बार पुनः समस्त मानवता के लिए गुरु का स्थान लेना है। इस लिये इस देश के प्रत्येक बालक एवं बालिका का आचरण निष्कलंक हो तथा वे कठोर नैतिक अनुशासन का जीवन व्यतीत करें। भारत शब्द भगवान एवं रताः से लिया गया है—भगवान से निरन्तर लगाव या रति। यह शब्द उस जाति का बोध करता है जो मनुष्य के भीतर ईश्वरता की सेवा एवं उत्थान में अर्पण कर चुकी है। इसलिये, वर्तमान दशाओं में तथा ऐसे विद्यालयों में जो अध्ययन तुम करते हो, जो अध्ययन तुम्हें आजिविका उपार्जित करने में सहायता करता है एवं जो तुम सबको कुछ 'पालिश' एवं 'चमक' प्रदान करता है, उसके साथ-साथ तुम प्राचीन अनुशासन में भी प्रशिक्षण प्राप्त करो ; क्योंकि वह तुम्हारी सहजात प्रवृत्तियों को पालतू बनाता है, संवेगों को नियंत्रित करता है एवं चरित्र की दृढ़ता का निश्चय कराता है। किन्तु ये बातें तुम्हारे ही लिये आवश्यक हैं, भारत को जो अभिनय करना है उसकी कोई बात नहीं।

शिक्षण एक विधि है जिसमें शिक्षक एवं शिक्षार्थी सहयोग करते हैं तथा यह दोनों के लिये एक आनन्ददायक अनुभव प्रदान करें तथा यह एक उपयोगी एवं उत्साहवर्धक प्रयास हो। क्षण का अर्थ एक सेकण्ड है तथा मैं चाहता हूँ कि अपने विद्यालय के जीवन के प्रत्येक क्षण में एक उत्तम शिक्षा अवश्य ग्रहण करो। उदाहरणार्थ, जब शिक्षक कक्षा में प्रवेश करता है, बालक उसे प्रणाम करते हैं। यह नम्रता की, आयु एवं विद्वता की एवं सेवार्थ कृतज्ञता की शिक्षा है। शिक्षक को भी चाहिये सच्चाई एवं निःस्वार्थ सेवा से अपनी देख-रेख में सौंपे गये छात्रों के नमन के योग्य बनने का निर्णय करें। छात्र भय से शिक्षक का सम्मान कभी न करें ; किन्तु प्रेम से द्रवित होकर करें। भयभीत या आतंकित करने के सभी तरीकों का शिक्षक अवश्य परित्याग करें। फूल के खिलने के समान शिक्षा एक मन्द प्रणाली है—समस्त पुष्प के एक-एक पंखुरी

के शान्त विकास के साथ सौरभ अधिकाधिक तीव्रतर एवं प्रतिभासित होने लगता है।

यदि शिक्षक आवृत्ति पाठन एवं परिक्षार्थ अध्यापन की अपेक्षा विवेक, विनय, एवं विचक्षण का सुन्दर आदर्श है तो बालकों के विकास में सहायता प्राप्त होगी। उपदेश नहीं, आदर्श ही अध्यापन का सर्वोत्तम साधन है।

यह बालिकाओं का विद्यालय है, इसलिये यह चरित्र की महिमा पर अधिक बल देना चाहिये। शीलता एवं परमेश्वर की भक्ति सभी जाति के लिये सच्चे रत्न हैं। हमारी संस्कृति के परम्परागत मूल्यों की स्त्रियाँ रक्षा करती हैं तथा राष्ट्र को एक सम खूंटी पर रखती हैं। यदि वे असफल हुई तो यह क्षाम होगा, न कि क्षेम—मेरा विश्वास करो। अतएव, छात्रों के चरित्र-निर्माण पर सारे शैक्षणिक प्रयत्नों को आश्रित करो तभी तुम पाठ्यक्रम आदि के ऊपरी ढांचे को उठाने का आत्मविश्वासपूर्वक विचार कर सकते हो। सुखी जीवन एवं समाज के अन्य सदस्यों के सुखद सहयोग के रहस्य का ज्ञान शिष्यों को अवश्य हो। स्वयं के प्रति, अपने परिवार के प्रति तथा अपने समाज के प्रति कर्त्तव्यों का पालन चातुर्यपूर्वक एवं आनन्दपूर्वक होना चाहिये। तभी जीवन रागात्मक और फलदायक सोगा। मैं घोषणा करता हूँ कि शिक्षा का पुनरुद्धार एवं पुनर्रचना मेरे उद्देश्य का एक अंग हैं तथा शीघ्र ही तुम मुझे इसमें व्यस्त पाओगे। जो केवल चिल्लाते एवं लम्बी बातें बनाते हैं उनको दण्डित करने में तथा आध्यात्मिक मूल्यों के पुनर्निमाण एवं संरक्षण में लगा हुआ देखोगे।

इस देश के घरों को बनाने वाली बालिकायें हैं इसलिये इस नगर के लिए यह अत्यावश्यक एवं अत्यन्त आधार रूप विद्यालय है। इस देश में स्त्रियों का सम्मान गृह लक्ष्मी के रूप में, ईश्वर के लिये या आत्मसाक्षात्कार के लिये तीर्थ यात्रा में धर्म पत्नी या सहचरी के रूप में तथा गृह स्वामिनी के रूप में होता है। यदि जिस देश की महिलायें सुखी हों, स्वस्थ हो, पवित्र हों, तो उस देश के मनुष्य परिश्रमी, ईमानदार एवं सुखी होंगे। त्यागराज ने एक गीत गाया है कि

बहादुरों में भी सबसे बलवान 'कराडदास' होते हैं—अर्थात्, स्त्री की कामनाओं से वह जाते हैं। इसलिये वैयक्तिक एवं सामाजिक अभ्युत्थान में एक महिला का अति प्रामाणिक स्थान है। अतएव, मैं अमेरिका, आस्ट्रेलिया या जर्मनी की भौगोलिक बारीकियों से बालिकाओं को बोझिल नहीं करूँगा। इसकी अपेक्षा मैं चाहूँगा कि वे मानसिक शान्ति, सामाजिक एकता, सेवा एवं आर्थिक तृप्ति की विद्या को जानें। उनमें मिथ्यापन का नैतिक त्रुटियों में फिसलने का भय विकसित हो ; क्योंकि यह परमेश्वर के भय से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। वे उस आनन्द के विषय में भी कुछ जाने, जो दीन दुखियों की सेवा प्रदान कर सकती है तथा सहानुभूति प्रदर्शित करने के बाद प्राप्त लाभ के विचार से रहित सेवा होती है। वे उस अहंकार को भी त्याग दें, जो इस क्षेत्र के महान् अनुभवी सेवकों की सेवा को विषाक्त कर देता है यथा वे निर्धनों एवं दीनों की सेवा हेतु अनेक संस्थाओं के संस्थापक एवं उन्नायक के रूप में स्वयं इधर-उधर अपनी प्रशंसा करते फिरते हैं। सेवा का आनन्द स्वयं कार्य में ही है; क्योंकि सेवा का फल अहंकार के निवारण में है, न कि उसके गुणित होने में है।

इस विद्यालय के विद्यार्थी अत्यन्त महिमाशाली एवं अत्यन्त दायित्वपूर्ण मातृत्व के स्थान को ग्रहण करेंगी। इसलिये, बालिकाओं के विद्यालयों के शिक्षकों के सामने एक महान् कर्म है—स्वयं इस देश के भावी इतिहास की रचना करना माँ, गृह, समाज, राष्ट्र, एवं इसी प्रकार स्वयं मानवता की स्तम्भ है। इसलिये मानसिक शांति, आन्तरिक शाँति, आध्यात्मिक साहस, एवं महत्तम सम्पत्ति संतुष्टि, एवं चिरानन्द प्रदान करने वाले आध्यात्मिक नियमों को मातायें अवश्य जानें।

माताएँ बालकों को नामस्मरण तथा मानसिक एवं शारीरिक स्वच्छता का मूल्य अवश्य सिखायें। वह ऐसी माँ बने जैसे स्वामी विवेकानन्द के द्वारा वर्णित कहानी की माँ है, जो अपने बेटे को पाठशाला अकेले एवं असहाय दशा में जाते समय श्रीकृष्ण को पुकारने की सलाह देती है।

विद्यालय में शिक्षक द्वारा दिये गये शिक्षण को माता-पिता घर पर अवश्य

पढ़ावें। विद्यालय में बालक को जो शिक्षा दी जाती है, उसका ज्ञान माता-पिता अवश्य रखें तथा वे यह ध्यान रखें कि अपने सम्मानित शिक्षक द्वारा बालक जो कुछ सीखता है उसका, उनके आचरण एवं सलाह से विरोध या टकराव तो नहीं होता है।

शिक्षक एवं माता-पिता इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि इस निर्माण अवधि में बालक कुछ अच्छी आदतें एवं मनोवृत्तियाँ सीखते हैं। पुस्तक से जो कुछ पढ़ा जाय उसका मनन-चिंतन अवश्य किया जाय। शान्तिमय स्थिति में तथा मौनता में विचार किया जाय। बौद्धिक विकास के लिये तथा मानसिक शान्ति अर्जित करने के लिये बहुत उत्तम अभ्यास है। सभी गलत धारणाओं से झगड़ने एवं लड़ने की सहजात प्रवृत्ति को संयमित एवं परिमार्जित अवश्य किया जाय। बालकों को पीड़ा पहुँचाने में आनन्दित नहीं होना चाहिये तथा न उन्हें शारीरिक कष्ट या मानसिक वेदना का शिकार न होने दिया जाय। कम से कम अपनी पुस्तकों को सुरक्षित रखने एवं उचित दशा में रखने का दायित्व का भाव उनमें अवश्य हो।

पाठशाला के अपेक्षाकृत कम भाग्यशाली विद्यार्थियों के सामने अपने वस्त्रों, आभूषणों अथवा स्तर या सम्पत्ति को प्रदर्शित करने में उन्हें आनन्द नहीं लेना चाहिये।

वैयक्तिक स्वच्छता की विचारपूर्ण आदत एवं सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ठीक समय पर ईश्वर प्रार्थना की आदत उन्हें अवश्य सिखानी है।

उन्हें प्रतिदिन ९ बजे रात को सोने एवं ५ बजे प्रातःकाल उठने के लिये मुंह धोने तथा आँख एवं दाँत साफ करने के पश्चात् उन्हें ईश्वर प्रार्थना या ध्यान के लिये भी बाध्य किया जा सकता है। कभी यह न सोचो कि कालांतर में जीवन में कदाचित बुढ़ापे में प्रार्थना करने के लिये काफी समय है। आदत की नींव डालने का समय अभी है। पाठशाला में भी, दिन का कार्य पाँच मिनट

की प्रार्थना से ही शुरू करना चाहिये तथा सबको इसे गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करना चाहिये, केवल औपचारिक या झूठा दिखावा नहीं हो, जो अधिकांश विद्यालयों में दिखाया जाता है। प्रार्थना के समय की व्यवस्था में विद्या द्वारा तनिक भी उपेक्षा होने पर, बालकों के मन पर प्रतिक्रिया होगी तथा शीघ्र ही छल-कपट का विचार करेंगे। इसलिये, प्रार्थना को शिक्षा का सम्पूर्ण भवन की नींव के रूप में समझो। जब दिन की अन्तिम घंटी बजती है, विद्यार्थियों को कक्षा में तुरन्त खड़ा कीजिये तथा एक-दो मिनट उन्हें मौन रखें और वे तब तितर-बितर हों। तुम्हारे हृदय की तरंङ्गों को शान्त करने के लिये मौन के समान कुछ भी नहीं हैं।

अध्यापक बालकों को हमारे सन्तों एवं वीरों की प्रेरक कहानियाँ अवश्य सुनावें तथा उनके हृदय में आध्यात्मिक साहित्य के प्रेम का पौधा लगावें। यदि यह विद्यालय इन नियमों के साथ बढ़ता है, तभी इस विद्यालय की स्थापना के लिये इतनी उदारता से दिये गये तथा इतनी प्रसन्नता से अर्पण किये गये धन का उत्तम व्यय होगा। मुझे पूर्ण निश्चय है कि अल्पावधि में ही यह विद्यालय एक बहुत ही उपयोगी विद्यालय के रूप में विकास करेगा।

१७. गुण एवं पैसे

[दिव्य जीवन समिति, अरकोनम्-दिनांक १४-१२-५८]

मुझे यह पता है कि आपने केवल इतना ही उल्लेख किया है कि सत्य साई बाबा सम्मेलन में उपस्थित होंगे। आपने कोई भाषण मुझे नहीं सौंपा है, इसलिये मैं मौन भी हो सकता हूँ। किन्तु जहां तक मैं सम्बन्धित हूँ, कोई औपचारिता अथवा घोषणा की आवश्यकता नहीं है। मैं आपका हूँ और आप मेरे हैं। मैं तो निमन्त्रण की भी प्रतीक्षा नहीं करता हूँ, हम लोगों का सम्बन्ध बाह्य नहीं है, बल्कि यह आत्मा के साम्राज्य में अधिक गहराई में है। मैं आप लोगों के साथ हूँ तथा आप सब में हूँ। इसलिये, मुझे स्वागत की अथवा पूर्व अनुरोध की आवश्यकता नहीं है।

'दैवी जीवन समिति' (डिवाइन लाइफ सोसाइटी) मनुष्य को उस दैवत्व का स्मरण दिलाती है कि जो उसकी आधारभूत सत्यता है, प्रत्येक जीव में दैवत्व जन्मगत, एवं व्याप्त है तथा मनुष्य को इस सच्चाई का स्मरणादि लाने की प्रणाली मानवीय इतिहास की प्रातःवेला से ही प्रारम्भ हुई थी। दैवी जीवन यापन करने के लिये हमें उस कुहासे को दूर करना है जो सत्य को छिपा लेता है तथा मनुष्य को यह कल्पना कराता है कि वह कुछ अन्य ही है, बहुत ही तुच्छ क्षणभंगुर, भौतिक एवं क्षणिक है। सभी पवित्र, शुद्ध एवं शाश्वत के अंश हैं। किन्तु यह वस्तु साधना के अनुपात में किसी-किसी व्यक्ति में उसी प्रकार जगमगाती है, जैसे, बल्ब अपनी शक्ति के अंशानुसार प्रकाश फैलाते हैं। कोई भी प्राणी नहीं है जो परब्रह्म द्वारा पोषित नहीं होता तथा कोई भी नाम नहीं है जो **विश्वजनीन** (परमात्मा) का बोधक नहीं है। सभी वस्तुएं उस **आदर्श** द्वारा परिपूर्ण हैं तथा सभी नाम उसकी महिमा की विशेषतायें हैं।

प्रत्येक मनुष्य को इस संघ में सम्मिलित होना चाहिए, क्योंकि यह इस

मूलभूत सत्य की वीणा बजाता है तथा मानव के मन की गहराई में स्थित अमरता की तीव्र लालसा को भोजन प्रदान करता है। मन्त्री ने रिपोर्ट पढ़ी और हम लोगों को बताया कि जो कोई चार आने मासिक देगा, उसके लिये इस संघ की सदस्यता खुली है। मैं निर्देश देना चाहूँगा कि चार आने के बदले जो लोग चार गुण प्रदान कर सकते हैं उन सबके लिये इसकी सदस्यता का दरवाजा खोल देना चाहिये। जिनमें सत्य, धर्म, शक्ति एवं प्रेम के गुण हैं वे सदस्यता के लिये प्रमुख रूप से उपयुक्त हैं। गुणों पर जोर दीजिये, पैसों के लिए मत देखिये।

अपनी कामनाओं को पूर्ण करने की चेष्टा करके मनुष्य सदैव सुख खोजता है। जब उसकी इच्छायें पूरी हो जाती हैं तब वह आनन्दित होता है तथा जब इच्छायें पूरी नहीं होती हैं, तब दुःख का अनुभव करता है। किन्तु, कामना अस्थि-अग्नि है जो अधिक रोष के साथ जलती है तथा अधिक ईंधन चाहती है। एक इच्छा दस इच्छाओं को पैदा करती है तथा मनुष्य इच्छाओं की मांग को समाप्त करने की चेष्टा करने में स्वयं समाप्त हो जाता है। कभी न समाप्त होने वाली इच्छाओं के पथ से उसे विमुख होना है तथा आन्तरिक सन्तोष एवं आनन्द के पथ की ओर मुड़ना है। 'दैवी जीवन समिति' का यही धर्म है।

मनुष्य दुःखी होता है, क्योंकि उसने असत्य से मोह या आसक्ति विकसित कर लिया है। वह धन के लिये विवेकहीन प्रेम बढ़ाता है, किन्तु अपनी संतानों का प्राण बचाने के लिये वह धन का त्याग करने के लिये तैयार है, क्योंकि अर्जित धन की अपेक्षा सन्तान का मोह अधिक शक्तिशाली है। जब अपनी सन्तान का कल्याण तथा अपने जीवन में से किसी एक को चुनने की बारी आती है तब वह अपनी सन्तान की उपेक्षा करने के लिये झुक पड़ता है। किन्तु, जब वह सभी आनन्द के उदगम एवं चश्मे वाली आत्मा में वास करता है तब वह जो जानन्द प्राप्त करता है, वही असीम एवं अविनश्वर होता है। वही सच्चा आनन्द है।

सन्तरा का छिलका होता है जो स्वादिष्ट नहीं होता है, किन्तु यह फल

की रक्षा करता है तथा उसे पोषित करता है। सन्तरा का माधुर्य के चखने लिये तुम छिलके को उघेड़ते हो और फेंक देते हो। जीवन के वृक्ष का फल ऐसा ही है। निश्चय ही, यह कटु छिलकों द्वारा रक्षित होता है, किन्तु चतुर मनुष्य छिलके को खाने की चेष्टा नहीं करता है। वह इसे उपयुक्त महत्व देता है तथा इसे फेंकने का उपक्रम करता है। तत्पश्चात् वह माधुर्य का आस्वादन करता है।

इस विवेक की जिन व्यक्तियों को महती आवश्यकता है, यह विवेक उत्पन्न करने के हेतु वयोवृद्ध जन विवेक एवं वैराज्ञ का आदर्श अवश्य प्रस्तुत करें। यदि वे ही ऐन्द्रिक सुखों की ओर प्रचण्ड उत्तेजना के साथ दौड़ेंगे, तब युवा पीढ़ी को उनकी स्वार्थपरता एवं लोभ के लिये किस प्रकार दोषी ठहराया जा सकता है? वृद्धजन जो कहें उसका अवश्य आचरण करें। वे दिखावें कि किस प्रकार दैवी जीवन आनन्द एवं मानसिक सन्तुलन, सन्तुष्टि एवं वास्तविक सुख प्रदान करता है। कम से कम प्रति-दिन, वे भगवान का नाम जपने अथवा भगवान का ध्यान करने में कुछ समय अवश्य दें तभी, बालकगण भी उस वातावरण का अनुकरण करेंगे तथा अपने लिये शान्ति प्राप्त करने के निश्चित साधनों को अपनायेंगे। आप कहते हैं कि परमात्मा के नाम सदृश कोई भी वस्तु मधुर नहीं है, किन्तु आप इसका जप बिल्कुल नहीं करते हैं। इस प्रकार आप ने लापरवाही एवं लम्पटता पूर्णक सड़क को विनष्ट कर दिया है, किन्तु आप बालकों को उस पर चलने की सलाह देते हैं। वे इस आडम्बर का पता लगालेंगे, आप को स्वयं उस पर यात्रा करने के लिये तथा अपना नेतृत्व करने के लिये कहेंगे। इसलिये, 'दैवी जीवन समिति' के सदस्यों का दायित्व बहुत महान है। वास्तविकता तो यह है कि जो कोई व्यक्ति किसी आदर्श को धारण करता है, उसका दायित्व महान होता है, क्योंकि दूसरों को इसे अंगीकार करने के लिये सलाह देते हुए उसे स्वयं वहाँ तक पहुँचना है। यही कारण है कि एक भारतीय का दायित्व इतना अधिक है। इसी देश में सन्तों एवं ऋषियों ने जन्म लिया है तथा उन्होंने संसार को आध्यात्मिक उत्थान

के उच्चत्तम सत्यों की शिक्षा दी है तथा जो कोई अपने को भारतीय बनने का दावा करता है, उसे अपने पूर्वजों की योग्य सन्तान कहलाने के लिये तथा समस्त संसार के जिज्ञासुओं के प्रशासक होने की योग्यता प्राप्त करने के लिये, उनके द्वारा सिखाया गया जीवन यापन करना होगा।

दैवी जीवन सत्वगुण पर आश्रित है। इसे अवश्य विकसित करना है। सात्विक भोजन पर ही, जो स्वास्थ्य, शक्ति, आत्मा के प्रकाश एवं प्रयत्न की पवित्रता को उन्नत बनाता है, इस गुण का निर्माण हो सकता है। कम खूराक पाने वाले एवं दुर्बल व्यक्तियों के लिये अध्यात्मरस का वितरण नहीं है। उन्हें पहले अन्नरस प्रदान करो, खूब मजबूत बनाओ ताकि वे दृढ़ विश्वास पैदा कर सकें तथा दृढ़ आदर्श अपना सकें, क्योंकि शारीरिक क्षुधा को साधारण सात्विक आहार द्वारा प्रथम तुष्ट करना आवश्यक है।

तदनन्तर, भगवान के उस नाम का जप करने की चेष्टा करो जो तुम्हें सबसे अधिक प्रिय लगता है। नाम को हल्के भाव से न लो, एक भिखारी के अधरों से निकलने वाले नाम को भी सुन कर उसका आदर करो, यद्यपि वह भिक्षा प्राप्त करने के लिये इसे लेता है। नाम का उच्चारण करने वाला व्यक्ति यद्यपि बुरा है, या उसके उच्चारण की मनोवृत्ति बुरी है, फिर भी, नाम के साथ दुर्व्यवहार नहीं करो, क्योंकि इसकी पावनता कभी विनष्ट नहीं की जा सकती है। परमेश्वर का तुम्हें स्मरण कराने के लिये तुम उन्हें धन्यवाद दो और अपनी राह पकड़ो,। सर्वोपरि, परमेश्वर को पुकारने वालों की हँसी नहीं उड़ाओ तथा न उन्हें हतोत्साहित करो। जहाँ आनन्द है वहाँ शोक, तथा जहाँ आस्था है वहाँ शंका, आरोपित करने का तुम्हें क्या अधिकार है ?

प्रेम का आचरण करो, उसका विकास करो, उसका विस्तार करो। इससे आज की घृणा एवं द्वेष विलीन हो जायेंगे। यहाँ तथा अन्यत्र, दैवी जीवन समिति का यही कर्त्तव्य है।

१८. शिक्षा एवं शान्ति

(त्रिवेन्द्रम दि० २०-१२-५८)

आध्यात्मिक मूल्यों के विकास की आवश्यकता के विषय में राज्यपाल, डा० रामकृष्ण राव ने अभी इतना अधिक हृदयस्पर्शी भाषण दिया है, जब कि आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का निर्माण किये बिना ही आर्थिक उन्नति हो रही है, और जब अहंकारवादिता, प्रतियोगिता एवं लोभ समाज में दुःख पैदा कर रहे हैं। यहाँ त्रिवेन्द्रम में, आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के विस्मरण की कोई बात नहीं है। यहाँ पदमनाथ मन्दिर नगर को तथा लोगों के दैनिक जीवन को प्रभावित करता है, केवल इसी नगर के लोगों के जीवन को नहीं ; अपितु समस्त राज्य के जीवन को भी प्रभावित करता है। केरल स्वयं एक पवित्र प्रदेश है तथा श्री शंकराचार्य के अवतरण एवं उपदेशों से इसकी पवित्रता और भी बढ़ गई है।

यह देश बहुत सुन्दर है। कोयम्बतूर से इस राजधानी की नगरी को आते समय रास्ते भर मैंने देखा। राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक विस्तृत जलाशयों एवं नारियल के निकुञ्जों से विरचित दृश्य किसी महान कलाकार द्वारा एक विशाल पट पर निर्मित एक विस्तीर्ण चित्र के समान था। भगवान् एक कलाकार के रूप में इन वस्तुओं का आनन्द भोगता है, वह अपने ही हस्तकला की प्रशंसा करता है, स्वयं अपने चित्र या मूर्ति के सम्मुख खड़ा होकर अपने चतुर्दिक इस मनोरम दृश्य में भगवान के ही सौन्दर्य को देखने के लिये तुम्हें बाह्य नेत्रों की नहीं, परन्तु आन्तरिक नेत्रों की आवश्यकता होती है। यदि तुम्हें वह प्राप्त है, तो तुम धरती पर चलते हुये अथवा नदियों से यात्रा कर ही स्वयं किसी तीर्थस्थान की तीर्थयात्रा है तथा बादल के प्रत्येक धब्बे में अथवा हरीतिमा के चप्पे में तुम्हें यह भगवान की झलक देगा। किन्तु यह सब सौंदर्य मनुष्य को सत्यम तक अवश्य ले जाये तथा यह सर्वं सत्यम् मंगलम् तक ले

जाय। यही प्राकृतिक पेंवदा है। भगवान् के कला-कौशल का सौन्दर्य मनुष्य भगवान की विभूति तक ले जाता है तथा वह चित्र उस रंगरेज के प्रति तुम्हें उत्सुक बनाता है। जब उसकी सत्यता समझ में आ जाती है, तब भगवान आनन्द की वर्षा करता है जो स्वयं मंगल ही है।

मैंने यह भी पाया कि यहाँ के निवासी अत्यन्त कर्मठ एवं परिश्रमी हैं। राज्य के एक छोर से दूसरे छोर तक, लोग सड़कों के किनारे दूकानों एवं खेतों में, बागों में एवं नहरों में काम कर रहे थे। मेरे साथ जो लोग थे, उनके ध्यान को जिसे दूसरी बात ने आकृष्ट किया वह भी बालकों एवं बालिकाओं की भीड़, जो कुछ स्थानों में--पत्तियां लिये हुये, अथवा स्लेट या किताबों का बस्ता अपने कन्धों से लटकाये तेजी से पाठशालाओं की ओर जा रहे थे। मैं जानता हुँ कि यहाँ पर भारतवर्ष में सबसे अधिक साक्षरता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक कुटुम्ब में उच्च शिक्षा प्राप्त अनेक पुरुष एवं स्त्रियाँ हैं। त्रिवेन्द्रम अनेक महान शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं का केन्द्र है।

साँस्कृतिक विजय की सब प्राचीन परम्पराओं, आध्यात्मिक ज्ञान के सब भण्डार, समस्त कार्य एवं परिश्रम, शिक्षित होने की सब आकांक्षा तथा सभी अवसरों के, जिनको बड़ी प्रसन्नता के साथ समझा जाता है, बावजूद मैं देखता हूँ कि यहाँ अत्यधिक **अशान्ति** है। यहाँ पर 'आन्तरिक शान्ति' का प्रसार नहीं है, जबकि यहाँ कोई भी इसे अधिक परिमाण में प्राप्त करने की आशा रखता है। निश्चय ही जैसी कहावत प्रचलित है, "बूढ़े शेर में भी धारियाँ रहती हैं।" मैं तुमसे कहता हूं कि वहाँ साँस अब भी है किन्तु आध्यात्मिक विवेक के इस प्राचीन भण्डार से, जिसने एक समय सबको रहस्य अथवा समरसता या शान्ति की शिक्षा दी थी, शक्ति गायब हो चुकी है। ग्रामोफोन के सब रिकार्ड एक ही पदार्थ के बनाये जाते हैं। उसी प्रकार, सब हृदय एक ही **चैतन्य** से निर्मित है। सभी प्लेटों में नालियाँ एक ही सी दिखाई देती हैं। सबके हृदयों पर दुःख-सुख के द्वारा अंकित नालियाँ भी, कम या अधिक, एक ही सी होती हैं। यह सुई जो, नालियों से होकर दौड़ती है, ही ध्वनि-बक्स एवं

विद्युतशक्ति विस्तारक से उत्तम या खराब संगीत उत्पन्न करने वाली है। मन ही वह सुई है सुख एवं दुख की (नाली) पर दौड़ती है, वही उत्तर या अनुभूति को अनूदित या अतिशयोक्त करती है तथा तुम्हें उल्लास या उदासीनता का अनुभव कराती है। यदि सुई तेजधार की है तब संगीत कानों को आनन्द देती है। किन्तु यदि यह मुरदार या टूटी है तब ध्वनि एक कर्कश यातना बन जाती है।

मन वह पवन है जो हमें संसार की दुर्गन्ध या सुगन्ध लाता है। जब मन गन्दगी की ओर मुड़ता है तब यह तुम्हें दुःखी बना देता है तथा जब सुगन्ध की ओर मुड़ता है तब तुम्हें सुखी बनाता है। वायु चारों दिशाओं से बादलों को एकत्र करती है। ठीक उसी तरह, मन तुम्हारी चेतना में अनेक आशाओं की निराशाओं को लाता है। पुनः यह मन ही है, जो पवन के सदृश उन बादलों को जो उसे अन्धकार से ढक देते हैं, अथवा जो उसे संशय की निशा में खो जाने का विचार पैदा करते हैं, विकार्ण भी करता है। मन को नियंत्रित करो तथा तुम अनद्वेलित बने रहोगे। शान्ति का भी यही रहस्य है : यही वह शिक्षा है जिसे मनुष्य सबसे पहले अवश्य माँगे एवं प्राप्त करे। आज हम देखते हैं जो मनुष्य अत्यन्त उँची शिक्षा प्राप्त किये हैं वे ही व्यक्ति सबसे अधिक असन्तुष्ट एवं दुखी हैं। तब उसने पुस्तकों, मनुष्यों एवं वस्तुओं का जो इतना अध्ययन किया है, उससे क्या लाभ है ?

मानसिक स्थिरता या समरसता प्राप्त करने के लिये तुम्हें अध्ययन नहीं करना है, परन्तु व्यवस्थित साधना करनी है। तभी, तुम सुखी बन सकते हो चाहे तुम धनी हो या निर्धन, मान्य हो या अमान्य, भाग्यशाली हो अथवा आभागा। यह वह कवच है जिसके बिना जीवन के रंगस्थल में प्रवेश करना मूर्खता है।

यदि तुम केवल इन्द्रियात्मक आनन्द प्राप्त करने के लिये ही रंगस्थल में प्रवेश करते हो, तो तुम्हें सब प्रकार के कष्ट होंगे। यह तूफान से उद्वेलित

सागर में पतवार-विहीन नन्हीं-सी नाव में यात्रा करने के समान है। इसलिये स्वयं आध्यात्मिक संयम के पथ पर चलो। तुममें से प्रत्येक के पास अत्यधिक एकाग्रता है। तुम इस कला को भी जानते हो ; क्योंकि हर कर्म में इसकी आवश्यकता है तथा प्रत्येक व्यक्ति इससे लाभ उठाता है। बढ़ई, जुलाहा, लिपिक, नाविक—सबमें यह अधिक या कम अंश में है। इस काम के लिये भी इसका प्रयोग करो ; मन को उसकी क्रिया की ओर संचालित करो, इसकी परीक्षा करो तथा उसे सत्संग, उत्तम विचारों एवं उत्तम कर्मों की ओर ही स्वयं सीमित रहने के लिये प्रशिक्षित करो। भगवान के किसी स्वरूप के ध्यान का अभ्यास करो तथा भगवान के किसी एक नाम को, उसकी मधुरिमा के ज्ञान सहित, जपो। यह मन को तीव्र बनाना सिखायेगा तथा जीवन में घटित होने वाले हर्ष एवं शोक से उत्तम संगीत उत्पन्न करेगा।

स्मरण रखो, धरती के नीचे निहित जल की भांति, प्रत्येक मनुष्य के भीतर ईश्वरता है। भगवान् सर्वभूत अन्तरात्मा या सर्वव्यापी है। वह प्रत्येक प्राणी की अन्तरात्मा है। वह तुममें है तथा अन्य हर एक में है। वह धनिक में अधिक नहीं, या मोटे में बड़ा नहीं है। उसकी चिंगारी प्रत्येक प्राणी की हृदय-गुफा को प्रकाशित करती है। सूरज समरूपेण सब पर चमकता है तथा **उसकी अनुकम्पा** सब पर समरूप पड़ती है। यह केवल तुम ही हो, जो उसकी अनुकम्पा की रश्मियों को सुखी बनाने से रोकने वाली बाधाओं को खड़ा करते हो। भगवान को अपनी अबोधता, अज्ञानता एवं प्रतिकूलता के लिये दोष न दो। जिस प्रकार 'बोरिंग' के गहराई तक धँसाने पर धरती के नीचे का पानी एक तीव्र फव्वारे के रूप में फूट पड़ता है ; उसी प्रकार, निरन्तर राम-राम-राम-राम के जाप से ईश्वरता के झरने को स्पर्श करो। एक दिन, वह शीतलता के आधिक्य के रूप में उमड़ पड़ेगा तथा अनन्त आनन्द प्रदान करेगा।

जीवन परमेश्वर के लिये तीर्थयात्रा है ; तथा वह पवित्र स्थल बहुत-बहुत दूर है ! सड़क तुम्हारे सामने पड़ी है ; परन्तु, जब तक तुम पहला

कदम आगे नहीं बढ़ाते हो तथा दूसरे कदम से उसका अनुसरण नहीं करते हो, तब तक तुम कैसे वहाँ पहुँच सकोगे ? साहस, आस्था, उल्लास एवं दृढ़ता के साथ प्रस्थान करो ; तुम्हें सफलता अनिवार्यरूपेण मिलेगी। मन-बुद्धि दो बैल हैं जो गाड़ी रूपी 'यह आन्तरिक मनुष्य' से बाँधे हैं। बैल सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम के पथ पर चलने के अभ्यासी नहीं, इसलिये वे गाड़ी को स्व-परिचित पथ ; अर्थात् असत्यता अन्याय, दुःचिन्ता एवं घृणा के पथ से ले जाते हैं। उनको श्रेष्ठतर पथ पर चलने के लिये तुम्हें शिक्षा देनी है ताकि वे स्वयं को तथा उस गाड़ी को जिसमें वे जुते हुए हैं एवं उन मनुष्यों को जो उसमें बैठे हैं विध्वंश की ओर न घसीट सकें।

तुम्हारी सन्तान अपनी क्रीड़ा एवं तोतली बातों से बहुत आनन्द देती है किन्तु जब तुम किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो, यह काम में हस्तक्षेप करता है या तुम्हें चिढ़ाता है, तब तुम उससे अप्रसन्न हो जाते हो। इस प्रकार, आनन्द एवं शोक का एक साधन है। कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है जो अमिश्रित आनन्द नहीं देती है। यदि, कोई है भी, यो इसके खो जाने पर यह शोक पैदा करती है। यह सभी वस्तुओं की प्रकृति ही है। इसलिये, आनन्द एवं शोक में उदगम, मन को ही पकड़ने संयमित करने एवं इसे दृश्यमान जगत जो तुम्हें कभी अशिष्ट करता है कभी हटाती है, की वास्तविक प्रकृति को देखने के लिये प्रशिक्षित करो। शिक्षा का यह यथार्थ फल है।

१६. चन्द्रमा एवं मन

(प्रशान्ति निलयम, दिनाङ्क ७-२-५६ महाशिवरात्रि)

महाशिवरात्रि के पर्व की उत्पत्ति को समझाने के हेतु शास्त्रों में अनेकानेक कथायें अंकित हैं। उनमें से कुछ का वर्णन तुम्हारे सामने बोलने वाले वक्ताओं ने अभी किया है। दूसरी कथा यह है कि इसी दिन भगवान् शिव ने अपने परमानन्द में ताण्डव नृत्य किया था तथा सभी देवताओं एवं मुनियों ने इस सार्वभौमिक घटना में भाग लिया था। सभी भुवनों की प्रार्थना के उत्तर में क्षीरसागर से जो विष या हलाहल निकला था, उसने विश्व को विध्वंश करने की धमकी दी थी, तब उसे ही उन्होंने पान कर लिया और उसकी विषैली ज्वाला उनके लिये भी असह्य थी। इसीलिये, यह कहा जाता है कि उनके केश की गुम्फित लटाओं पर अविराम गंगाजल डाला गया ; (प्रत्येक शिव मन्दिर में अन्त में कई घण्टों तक तथा कुछ स्थानों में अविराम अभिषेक के लिये यह व्याख्या है।) किन्तु तब तक शिव को आन्शिक विश्रान्ति प्राप्त हुई। इसलिये शीतल शशि को शिर पर स्थापित किया गया तथा उसने कुछ विश्राम दिया। तब गंगा जी को गुम्फित लटाओं पर स्थापित किया गया। इसने महती सहायता की। तब, सभी देवताओं के साथ शिव ने ताण्डव नृत्य किया। यही कथा है, किन्तु यह सब किसी एक विशिष्ट दिन घटित नहीं हुआ। इसलिये, यह नहीं कहा जा सकता कि शिवरात्रि उस दिन की समृति मनाने के लिये है। कुछ लोगों का कहना है कि उस दिन शिव ने जन्म लिया था, मानो किसी मर्त्य के सदृश शिव भी जन्म लेते एवं मृत्यु को प्राप्त होते हैं। एक कथा है कि एक शिकारी मारने के लिये जानवरों की खोज में एक बिल्व वृक्ष पर बैठ गया तथा पूजा के विचार से विहीन अनजाने उस बिल्व वृक्ष की पत्तियों को नीचे एक लिङ्ग पर गिराना शुरू किया। इसलिये उसने मुक्ति प्राप्त की। यह कथा इस दिन के महत्व को व्यक्त करती है, पर यह इस दिन की उत्पत्ति पर प्रकाश

नहीं डालती है। इसके अतिरिक्त, हम लोग केवल महाशिवरात्रि ही नहीं मनाते हैं, हम लोग हर मास में एक शिवरात्रि मनाते हैं जो शिव की आराधना में अर्पित होती है। पुनः इस रात्रि का महत्व क्या है ?

अच्छा ! यह रात्रि चन्द्रमा द्वारा प्रभावित होती है। चन्द्रमा की १६ कलायें या अंश हैं। जब यह प्रत्येक दिन घटता है, तब इसकी एक कला शीण होती है तथा नूतन चन्द्र रात्रि को यह विनष्ट हो जाती है। इसी प्रकार, इसके अनन्तर प्रति दिन एक-एक कला बढ़ती है तथा पूर्ण चन्द्र रात्रि को यह पूरी हो जाती है। चन्द्रमा मन का अधिपति देवता है, "चन्द्रमा मनसो जाताः।"— पुरुष के मानस से चन्द्रमा पैदा हुआ। इस प्रकार, चन्द्रमा एवं मन में घनिष्ट सम्बन्ध है तथा दोनों पतन एवं उत्थान के शिकार होते हैं। चन्द्र का घटना मन के घटाव का भी प्रतीक है, मन को नियंत्रित करना है; शीण करना है तथा अन्त में निष्काषित एवं विनष्ट करना है।

सारी साधना इसी उद्देश्य की ओर संचालित करनी है—'मनोहार।' अर्थात् मन को मार डालना है ताकि निहित माया विदीर्ण हो सके तथा सत्यता अभिव्यक्त हो सके। महीने के अर्ध कृष्णपक्ष में प्रत्येक दिन चन्द्रमा तथा मानव में उसका प्रतीकात्मक सहचर मानस घटता है तथा उसकी एक कला क्षीण होती है; उसकी शक्ति घटती है तथा अन्त में चतुदर्शी की रात्रि में एक नन्हा सा टुकड़ा शेष रह जाता है। यदि उस दिन साधक द्वारा अतिरिक्त प्रयास किया जाय तो वह टुकड़ा भी साफ किया जा सकता है तथा मनोनिग्रह पूर्ण किया जा सकता है। इसलिये, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि कहलाती है, क्योंकि वह रात्रि शिव के जप एवं ध्यान में व्यतीत की जानी चाहिए तथा भूख एवं निद्रा तक का कोई अन्य विचार नहीं लाना चाहिए। तब, सफलता निश्चित है। वर्ष में एक बार महाशिवरात्रि की रात्रि में आध्यात्मिक क्रिया के एक विशिष्ट उद्योग का उल्लेख है ताकि इस मैल रूपी मानस के निवारण के पश्चात् जो 'शवम्' हो वह 'शिवम्' बन सके।

शिवरात्रि का यही उद्देश्य है। इसलिये, यह कल्पना करना कि इसको मनाने के लिये "जागते रहना" ही अनिवार्य है, मूर्खता ही नहीं; वरञ्च हानिकारक प्रवंचना भी है। लोग ताश खेलकर, अविराम चलचित्र या नाटक देखकर नींद से इस दिन बचना चाहते हैं। यह वह साधना नहीं जिसे शिवरात्रि को गहन किया जाये। यह 'अनिद्रता' की प्रतिज्ञा का उपहासजनक वस्त्र है। यह तुम्हें असभ्य बनाती है तथा बुराई, आलस्य, दुष्टता एवं पाखण्ड को प्रोत्साहित करती है।

शिवरात्रि के दिन मन अवश्य लय हो जाय या अशेष हो जाय। लिंगम् का अर्थ है वह तत्व जिसमें यह जगत लय हो जाता है 'लीयते' या जिसमें जगत जाता है—गमयते। लिंग की परीक्षा करो। त्रिचक्र पीठ के द्वारा तीनों गुणों का प्रतिनिधित्व होता है। उपरी लिंग जीवन के लक्ष्य का प्रतीक है। लिंगम् का अर्थ है प्रतीक—सृष्टिरचना का प्रतीक जो तीनों गुणों एवं ब्रह्मन, जो इसमें व्याप्त है तथा जो इसे अर्थ एवं मूल्य प्रदान करता है, की क्रिया का फल है। लिंगम् की पूजा करते समय तुम इस प्रतीकात्मक गरिमा में आस्था सहित इसका पूजन करो।

शास्त्रों में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द एवं प्रत्येक रूप एक प्रतीकात्मक अर्थ रखता है, जो इसे मूल्य प्रदान करता है। इस रचित संसार के लिये जो 'प्रपंच' शब्द तुम बहुधा प्रयोग करते हो, उसका अर्थ जो "पंचभूतों से निर्मित है अथवा, जो मिट्टी, अग्नि, जल, वायु एवं आकाश से बना है।" दिल के लिये प्रयुक्त 'हृदय' शब्द को ही लीजिये। इसका अर्थ है हृदय में वह—हरि+अयम्। अर्थात् इसका अर्थ यह नहीं कि वह अंग जो शरीर में रक्त संचार करता है, परन्तु परमेश्वर का आसन, वह वेदिका जिसपर शिव को प्रतिष्ठित किया जाता है, वह दीवट जहाँ ज्ञान का दीप जलाया जाता है। पुनः मानवीय भाषा में बैल कहे जाने वाले पशु पर शिव जी सवार नहीं होते हैं; 'बैल' धर्म का एक प्रतीक मात्र है—जो सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम के चार पैरों पर खड़ा है। शिव के

तीनों नेत्र वे हैं जो भूत, वर्तमान एवं भविष्य को व्यक्त करते हैं; केवल शिव के पास तीनों नेत्र हैं। मृगचर्म, जिसे वे धारण करते हैं, वह उन तत्वीय जंगली चरित्रिम विशेषताओं का प्रतीक है जिन्हें उनकी अनुकम्पा विनष्ट करती है। वे उनको शक्ति रहित एवं अहानिकर बना देते हैं। वस्तुत, कहने का अर्थ यह है कि वह उनको चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं, उनकी खाल खींच लेते हैं तथा प्रभावहीन बना देते हैं। उनके चार बदन, शान्तम्, रौद्रम्, मंगलम् एवं उत्साहम् के प्रतीक हैं। इस प्रकार, लिंग का पूजन करते समय शिव की अनेक विशेषताओं के आन्तरिक भाव को समझिये। इस दिन, इस प्रकार शिव का ध्यान कीजिये ताकि माया के अन्तिम रुके हुए अवशिष्ट से मुक्ति प्राप्त कर सको।

जिस प्रकार 'ओम' परमेश्वर का एक मौखिक प्रतीक है, उसी प्रकार, ईश्वर का प्रतीकात्मक रूप लिंगम् है। यह एक रूप मात्र है। प्रत्येक वस्तु माया है तथा इसे समझने के लिए माया के साथ अवश्य क्रीड़ा करो। अन्यथा, तुम माया शक्ति को नहीं समझ सकते हो। परमात्मा ब्रह्माण्ड में उसी प्रकार परिव्याप्त है जैसे अण्डे में प्राण। मुर्गी का बच्चा अण्डे के प्रत्येक अंश में है, उसी प्रकार परमात्मा भी विश्व के प्रत्येक अंश में है। 'सर्वभूतान्तरात्मा' की अपेक्षा 'सर्वान्तर्यामि' के वर्णन को मैं अधिक पसन्द करता हूँ। सभी इस भवन में हैं, कोई अपने में भवन नहीं लिये हैं; क्या यह बात नहीं है ? उसी प्रकार, सभी उसमें हैं, यह कहना 'वह सबमें है।' कहने की अपेक्षा श्रेष्ठतर है, यह माया ही है जो मानव को बाँधती एवं सीमित करती है। इसलिये सारी साधना माया को विजित करने के लिये है। लोहे का एक छोटा टुकड़ा पानी में डूब जायेगा; किन्तु उसे पीटा-जाय तथा खोखला बना दिया जाय तो वह पानी पर तैरेगा। इसलिये, मन को पीटो तथा उसे खोखला बना दो। तब वह संसार-सागर में तिरेगा।

सर्वोपरि, विवेक रखो तथा गलत कदम उठाने में किसी से बाध्य नहीं हो। मेरा तथा मेरी प्रकृति का आन्वेषण करने के प्रयत्न में समय व्यर्थ करने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है। जो मैं शिक्षा देता हूँ उसे समझो, 'शिक्षक कौन' है,

इसे समझने की कोशिश नहीं करो; क्योंकि मैं तुम्हारी बुद्धि एवं शक्ति के परे हूँ। तुम मुझे केवल मेरे काम द्वारा ही समझोगे। इसीलिए, तुम्हें कभी वह व्यक्त करने के लिये कि मैं कौन हूँ, मैं स्वयं तुम्हें अपने 'आगमन पत्र' को प्रदर्शित करता हूँ, जिसे तुम 'चमत्कार' कहते हो। तुम मर्म या रहस्य को जानो तथा कर्म या कर्त्तव्य जो तुम्हें निर्धारित करता हूँ, को पूरा करो।

आगामी पन्द्रह वर्षों में, इस समय बढ़ने वाले युवक आध्यात्मिकता के क्षेत्र में एकनिष्ठ जिज्ञासुओं के रूप में चमकेंगे। वे यह जानते हैं कि उसमें से प्रत्येक नित्यम् एवं सत्यम् है, पवित्रम् एवं अमृतपुत्रं या अमरता की सन्तान हैं। विवेक एवं वैराग्य के क्षेत्र में वे बढ़ रहे हैं तथा नामस्मरण द्वारा वे स्वयं को निखार रहे हैं। किन्तु बूढ़े लोग ऐसे बालकों पर हँस रहे हैं, क्योंकि वे ईश्वरीय पथ को अपनाये हैं। कदाचित यह देखकर वे सुखी होंगे कि वे बालक धूम्रपान करते हुए, शपथ लेते हुए, एवं पोस्टरों पर घूरते हुए झुण्डों में गालियों में घूमते रहें। बूढ़े लोग अवश्य हर्षित हों कि उनकी सन्तान शाही पथ पर है, सच्चे आनन्द एवं सन्तोष की खोज में है तथा वे स्वयं की एवं संसार की उत्तमतम सेवा कर सकेंगे। स्वर्ण से आभूषण कैसे बनाया जाय, यह तुम नहीं जानते हो। इसीलिये, तुम इसे सुनार को देते हो। यदि वह इसे पिघलाता है, पीटता है, टुकड़े-टुकड़े करता है, तार के रूप में उसे खींचता है एवं इसे काटता है, तो तुम्हें क्यों चिन्ता करनी चाहिए ? जो कला को जानता है उसे बालक को समाज के एक आभूषण के रूप में ढालने दो तथा तुम चिन्ता न करो।

दिन-प्रतिदिन, तुम केवल शरीर से ही नहीं, आध्यात्मिक जिन्दगी में भी बढ़ते रहो। वर्णमाला के अक्षरों को लिखते हुए तुम प्राइमरी पाठशाला में कितने समय तक पड़े रहोगे ? उठो, परीक्षा की मांग करो, तथा उत्तीर्ण होकर उच्चतर कक्षा में आगे बढ़ो !

इस समय तुम भवन के धरातल पर बैठे हो तथा ऊपरी तलों को भी

देखने के लिए साधन प्राप्त करो। बढ़ो, आगे आओ ! तब, शिवरात्रि तुम्हारे लिये मंगलरात्रि बनती है। अन्यथा, यह एक और रात्रि व्यर्थ बीतेगी।

तुम्हें बहुतेरे हतोत्साहित कर सकते हैं तथा कह सकते हैं कि एक परिपक्व अधिक आयु के पश्चात् ध्यान एवं पूजन को अपनाया जा सकता है, मानो बूढ़ों के लिये वे अध्यादेश या विशिष्ट दण्ड है। उनकी यह धारणा दिखाई देती है कि जब तक तुम संसार का सुख भोग सकते हो तब तक इसका भोग करो तथा बाद में दूसरे संसार की बात सोचो। किन्तु, घर की सापेक्ष्य सुरक्षा में ही बालक अपने कुछ कदम उठाता है, जब तक उसके कदम दृढ़ नहीं होते हैं जब तक संतुलन पूर्ण नहीं होता तथा बिना साध एवं भय के इधर-उधर भाग नहीं सकता, तब तक वह भीतर ही इधर-उधर लड़खड़ाते चलता है। तदनन्तर ही, वह गलियों में तथा विस्तीर्ण बाहरी संसार में बाहर निकलने का साहस करता है। उसी प्रकार, जीवि को भी पहले आन्तरिक संसार पर अधिकार अवश्य प्राप्त करना है तथा लोभ के लिये अभेद्य बनना है। इन्द्रियाँ जब उसके कदमों पर चलें तो उसे गिरना नहीं चाहिये, परन्तु मन के सन्तुलन को सीखना चाहिये जो किसी एक ओर अधिक नहीं झुकने देगा। इस पर अधिकार प्राप्त करने के उपरान्त, **विवेक** बाहरी संसार में, अपने व्यक्तित्व के प्रति किसी दुर्घटना की आशंका के बिना ही, विश्वासपूर्वक भ्रमण कर सकता है। यही कारण है कि 'निद्राहीनता' या जागरण पर इतना बल दिया जाता है। जब तक तुम आत्मसंयम के विज्ञान पर अधिकार नहीं करते हो तथा माया के मूल कारण का उच्छेदन नहीं करते हो तब तक तुम शिक्षित अथवा बड़े होने का दावा नहीं कर सकते हो। तुम्हें केवल यही रात्रि शिव के चिन्तन में नहीं व्यतीत करनी चाहिये; बल्कि समस्त जीवन भगवान् (शिव) की निरन्तर उपस्थिति में अवश्य व्यतीत करना चाहिए।

मुझसे यह न कहो कि तुम उस आनन्द की परवाह नहीं करते हो तथा तुम माया से ही सन्तुष्ट हो। इसलिये तुम जागरण की यन्त्रणाओं का शिकार नहीं होना चाहते हो। मुझ पर विश्वास करो—तुम्हारा बुनियादि स्वभाव

खाने, पीने एवं सोने की निष्क्रिय एवं भयावह दिनचर्या से घृणा करता है। वह किसी वस्तु को खोजता है जिसे वह जानता है कि वह खो दिया है—शान्ति-आन्तरिक तुष्टि। हेय एवं अचिर वस्तुओं के वन्धन से वह मुक्ति चाहता है। अपने हृदय के अन्तस्थल में प्रत्येक व्यक्ति इसकी आकांक्षा करता है और यह केवल एक ही दुकान में प्राप्य है—जिसे उच्चतम आत्मा का चिन्तन कहते हैं तथा जो इस सारे दृश्य का आधार है।

कोई पक्षी कितना भी ऊँचा उड़े, उसे शांति पाने के लिए शीघ्र ही या विलम्ब से किसी वृक्ष की चोटी पर बैठना ही है। उसी प्रकार एक दिन आयेगा, जब अति घृष्ट, अति कामी, घोर अविश्वासी, यहाँ तक की उच्चतम आत्मा के चिन्तन में कोई आनन्द या शांति नहीं है—इसकी दम भरने वालों को भी प्रार्थना करनी पड़ेगी, "परमेश्वर, मुझे शान्ति दो, मुझे सान्त्वना, शक्ति एवं आनन्द दो।"

२०. बुद्धिवाद नहीं, शास्त्रवाद भी नहीं

(वेंकेट गिरि, आध्यात्मिक सम्मेलन, दिनांक १२-४-५९)

वाराणसी सुब्रह्मण्य शास्त्री ने वर्तमान समय के दो प्रकार के जिज्ञासुओं- शास्त्रवादिन् एवं बुद्धिवादिन् के विषय में उन दोनों के विरोध के विषय में बहुत समय तक बताया। उन्होंने बताया कि शास्त्रवादिन् शास्त्रों में अभिलिखित प्राचीनों के ज्ञान को प्रामाणिक एवं आधिकारिक माना है। उन्होंने बताया कि बुद्धिवादिन् तर्क के मार्ग का अनुसरण करना अधिक पसन्द करते हैं तथा उनके तर्कों को जो बातें सन्तुष्ट करती हैं, केवल उन्हीं को आधिकारिक मानते हैं। निश्चय ही, उन्होंने लोगों के दूसरे समूह के दोषों को अनेक दृष्टान्तों को लेते हुए तथा बुद्धिवादियों की कोरी कल्पनाओं का भण्डाफोड़ करते हुए दिखाया। उन्होंने आध्यात्मिक ग्रन्थों से अतिश्य उद्धरण दिये तथा अपनी वार्ता को अतिगूढ़ एवं पाण्डित्यपूर्ण बनाया। मैं सोचता हूँ कि जो कुछ उन्होंने कहा उसका अधिकांश तुम्हारी समझ में नहीं आया तथा जो सारांश को वे प्रेषित करना चाहते थे उसे तुम लोग नहीं पाये हो।

बुद्धि विमर्ष एवं विवाद में अतीव आनन्द लेती है। यदि तुम एक बार भी तार्किकता के लोभ के सामने झुके, तो इसके जुए से छुटकारा पाने एवं इसे मिटाने में तथा उसकी निरर्थकता से प्राप्त होने वाले आनन्द का उपभोग करने में दीर्घ समय लगेगा। हर समय तुम्हें तर्क की अल्पता का ज्ञान अवश्य रहे। निर्वितर्क के सम्मुख सवितर्क अवश्य पराजित हो तथा सविचार निर्विचार के लिए कुर्सी खाली कर दे। ईश्वरोन्मुख पथ पर बुद्धि कुछ दूरी तक ही तुम्हारी सहायता कर सकती है तथा शेष अन्तर्ज्ञान या सहजज्ञान के द्वारा प्रकाशित होता है। तुम्हारी भावनाओं एवं स्थायी भाव तुम्हारी चिन्तन प्रणाली तक को ऐंठ या मोड़ देते हैं तथा तर्क एक जंगली साँड़ बन जाता है। अतिप्राय,

अहंकारिता जंगलीपने को प्रोत्साहित करने एवं न्यायसंगत बताने की दिशा में चलता है; क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने ही तर्क द्वारा गलत रास्ते पर, जिसे यदि वह पसन्द करता है, चलाया जाता है। अतिप्राय, तुम उसी निष्कर्ष पर आते हो जहाँ तुम पहुँचना चाहते हो। जब तक तुम तर्क की प्रणाली की, इसके चालू समय में ही परीक्षा करने के लिए अतिरिक्त सावधानी नहीं बरतते हो, तब तक यह खतरा है कि तुम उसी पदचिह्न का अनुसरण कर सकते हो जिसको तुमने स्वयं स्थापित किया था। तर्क को केवल संयम के द्वारा पालतू बनाया जा सकता है—जुए का व्यवस्थित ढंग से प्रयोग एवं नत्थी, चाबुक आदि के द्वारा। अर्थात्, दया, शान्ति, क्षमा एवं सहन आदि के द्वारा। सर्वप्रथम, इसे सड़क की संकीर्ण पटरियों से शान्तिपूर्वक चलना सिखाओ। तत्पश्चात्, इसके पालतूपने से आश्वस्त होने के उपरान्त, तुम इसे कष्टमय षड्लोभों की सड़क से—विषय-वासना, क्रोध, लालच, माया या भ्रम, मद एवं मत्सर की सड़क से ले जा सकते हो। भस्मासुर (पद्मासुर) परमात्मा की कृपा से विस्तृत शक्ति पाया। यहाँ तक किसी के भी सिर पर उसके हाथ रखते ही जलकर भस्म हो जाने का वरदान पाया था; किन्तु उसकी सहजात प्रवृत्तियाँ पालतू नहीं हुई थीं तथा उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई थी। इसलिए, उसने अपने लोभ एवं अहंकार में, वरदाता को भस्मीभूत करने की चेष्टा की थी।

शास्त्र सड़क के नक्शे मात्र हैं। अधिक से अधिक वे पथदर्शक-पुस्तिकायें हैं; जिनमें सड़कों का वर्णन एवं यात्रा की दिशायें दी गई हैं। किन्तु यथार्थ यात्रा ही कठिनाइयों, विलम्ब, धरती की फिसलनों एवं गड्ढों, सामने के दृश्यों के सौन्दर्य एवं अन्तिम लक्ष्य की भव्यता को प्रकट करेगी। प्रथम श्रेणी के अनुभव की बराबरी दूसरी श्रेणी का कोई वर्णन नहीं कर सकता है। किसी वस्तु के विषय में, उसे भलीभाँति समझने के लिये शास्त्र, केवल उनका विस्तार करने के लिए, अनेक प्रकार से कह सकते हैं। यहाँ तक कि वेद भी एक ही वस्तु की विभिन्न दृष्टिकोणों एवं विचारों से दस भिन्न-भिन्न छन्द रूपों में प्रशंसा करते हैं। किन्तु कतिपय विद्वान प्रत्येक वर्णन को एक पृथक एवं भिन्न

अर्थ देने वाला मानते हैं। इसलिए, वे गड़बड़ी को और बढ़ाते हैं, न कि उसे कम करते हैं। भिन्न-भिन्न विद्वान् नक्शे पर अंकित प्रतीकों का भिन्न-भिन्न अर्थ, अपने प्रातिभज्ञान, पूर्वाग्रहों (पक्षपात) एवं प्रिय सिद्धान्तों के अनुसार बताते हैं। इसलिए, शास्त्रवादिन् भी सदैव सही नहीं होते हैं। अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय प्राप्त करने की कामना द्वारा वे भी पथभ्रष्ट किये जा सकते हैं; क्योंकि वे किसी एक दार्शनिक विचार से सम्बन्धित होते हैं और यह भी, शास्त्रों के वास्तविक अर्थ को ढूंढने एवं जानने में प्रभाव डालता है।

मैं न तो शास्त्रवादी हूँ और न बुद्धिवादी हूँ। मैं तो प्रेमवादी हूँ। इसलिए मेरा दोनों में से किसी से भी विरोध नहीं है—न तो शास्त्र मानने वाले विद्वान से और न तर्क के पुजारी से। दोनों में अच्छाइयाँ हैं तथा दोनों में कमियाँ भी हैं। यदि तुम प्रेम अर्जित कर लो, तो तुम शास्त्रों को त्याग सकते हो; क्योंकि सभी शास्त्र का उद्देश्य केवल 'सर्वजनसमानप्रेम'—सबके लिए एक समान प्रेम पैदा करना तथा उस मार्ग में रोड़ा डालने वाले अहंकार को मिटा देना है। यदि, इस प्रेम के पथ में तर्क रुकावट डालता है तो वह भी दूषित समझ कर त्यागने योग्य है। यदि अध्ययन एवं चिन्तन यह समझने में कि मन नशीले बन्दर से भी बुरा नहीं है, सहायता नहीं करते हैं, तो शास्त्रों के अनुशीलन में लगा सारा समय एवं शक्ति का नितान्त अपव्यय है। तीर्थ यात्रायें भी हृदय को ऊँचे उठाने के लिये, संवेगों को परिमार्जित करने के लिये तथा निम्नतर आत्मा को विचार एवं कार्य के उच्चतर स्तर को पहुँचाने के लिये हैं। तर्क भी उसी उद्देश्य की पूर्ति करता है, अथवा कम से कम इसे यही करना चाहिए। तर्क ब्रह्माण्ड की एकता, उत्पत्ति एवं इसका लक्ष्य, अणु एवं विराट को शासित करने वाले नियमों को जानने की खोज करता है तथा रस्सी को खींचने वाले सूत्रधार की एक झलक प्राप्त करने के लिये निरन्तर हटते हुए परदे के पीछे से झाँकता है।

'इच्छाकृषि' में स्वयं को व्यस्त न करो। अर्थात् इच्छा की खेती या

आवश्यकताओं एवं कामनाओं की वृद्धि न करो। यह बोने-काटने की कभी न समाप्त होने वाली प्रणाली है। तुम्हें कभी तृप्ति नहीं मिलेगी। एक आवश्यकता की पूर्ति दस अधिक को जन्म देगी। इस वर्ग का नाम विकारी या कुटिल है। इसलिये, सावधान हो जाओ! दानवी कामनाओं या कुटिल सन्तुष्टि के पीछे न दौड़ो। इन्द्रियों के साम्राज्य की ओर ले जाने वाली सभी सड़कें टेढ़ी-मेढ़ी एवं अन्धकारपूर्ण हैं। केवल ईश्वर की ओर ले जाने वाली सड़क ही सीधी है। नीति या हर बात में स्पष्टवादिता (सच्चाई) का पथ ग्रहण करो। वह आत्मा को व्यक्त करेगी। तीनों गुणों को परास्त करने में नीति तुम्हें सक्षम बनायेगी। इन गुणों को जिस प्रकार नमक, मिर्च एवं इमली को एक साथ पीसकर भोजन के लिए स्वादिष्ट चटनी बनाते हैं, उसी तरह हमें इन गुणों को पीसकर लेई बनाना है ताकि आनन्द का एक नूतन स्वाद पैदा हो सके। यही व्यवहार तुम्हें इन गुणों के साथ करना है। कोई एक गुण प्रभुत्वशाली न हो। सबको अवश्य पालतू बनाओ तथा आनन्द सरोवर को भरने के लिए मोड़ो। आन्तरिक आनन्द का ही महत्व है; बाह्य ऐन्द्रिक, वस्तुगत एवं सांसारिक का नहीं। यदि आन्तरिक स्थिति, आन्तरिक संतुलन बाह्य उत्थान एवं पतन से अव्यवस्थित नहीं होता है, तो यही वास्तविक सफलता है। प्रत्येक दिन दूसरों की भाँति समान है—सूर्योदय एवं सूर्यास्त, चन्द्रमा का बढ़ना एवं घटना, ऋतुएं इत्यादि। किन्तु ३६५ दिन समाप्त होने पर हम इसे नव वर्ष कहते हैं तथा इसे एक नई संख्या प्रदान करते हैं, यद्यपि इससे सूर्य एवं चाँद अप्रभावित रहते हैं। सूर्य एवं चाँद के सदृश बनो। इस बात की परवाह न करो कि वे पुराने वर्ष की घोषणा करते हैं अथवा नव वर्ष की।

आत्मन् के अन्वेषण के लिए किसी व्यक्ति को कुछ निश्चित या प्रत्यक्ष काम करना आवश्यक नहीं है। जब भ्रम का पर्दा हट जायेगा एवं नष्ट हो जायेगा, तब वह अपनी समस्त महिमा के साथ स्वयं प्रकट हो जायेगा। आवश्यकता इस बात की है कि कुहासे, बादल एवं रोगजनक पदार्थों को हटा दिया जाय तथा उन सभी पर्दों को फेंक दिया जाय तो आत्मन् को शरीर एवं उसके अनुबन्धों में सीमित कर देते हैं। कुहरे को कैसे दूर किया जाय? दर्पण को

किस प्रकार निर्मल बनाया जाय ताकि आत्मन् स्पष्टतया एवं बिना ऐंठन के प्रतिबिम्बित हो। मन एवं बुद्धि, दोनों को रगड़ कर साफ करना है एवं पालिश करना है; क्योंकि वे बहुत शीघ्र ही मलीन हो जाते हैं। मन वह है जो शास्त्रों में तुम्हें यह विश्वास कराता है कि वे अंतिम प्रमाण है तथा बुद्धि वह है जो तुम्हें यह विश्वास दिलाती है कि तर्क ही सर्वोच्च प्रमाण है। इसके लिये निरंतर ध्यान देने की आवश्यकता है। जैसे, पीतल के बर्तन को इमली से रगड़ा जाता है, धोया जाता है एवं सुखाया जाता है ताकि नये की भाँति चमके, उसी तरह मन के साथ भी करना है—नामस्मरण, सत्कार्य एवं सत्प्रवर्तन,—भगवान के नाम का जप, उपयोगी योजनाओं का कार्यान्वयन, भले कार्यों को हाथ में लेना एवं सबके कल्याण का चिन्तन के द्वारा उसे सदैव स्वच्छ रखना है।

सूर्य आकाश में रहता है। यह चलता हुआ बादल है जो तुम्हारी दृष्टि से उसको ओझल करता है। तुम्हारे हृदय के आसन में निरंतर चमकने वाले आत्मन् को आच्छादित करने वाला बादल, इन्द्रियों का संसार ही है। वही मन जो उन बादलों को संचित करता है, उन्हें एक क्षण में तितर-बितर भी कर सकता है; क्योंकि यह वायु के समान है जो उन्हें सब स्थलों से एकत्र करता है एवं आकाश को अंधकारपूर्ण बना देता है तथा दूसरे समय, दिशा परिवर्तन करके उन्हें एक ही पल में वहाँ पहुँचा देता है जहाँ से वे आये थे। बादलों को तितर-बितर करने के लिए मन को शिक्षित करो; न कि उन्हें एकत्र करने के लिए। एक व्यवस्थित अनुशासन या नियम का पालन करके प्रत्येक जिज्ञासु को यह करना है। एक कूद में तुम चोटी पर नहीं पहुँच सकते हो। इन्द्रियों की प्रत्यक्षता का निषेध करना एक कठिन कर्म है। सैकड़ों जन्मों से विकसित होने वाली प्रवृत्तियों पर हर व्यक्ति को विजय पाना है। संसार एक प्रवंचना या माया है तथा सब कुछ ब्रह्मन् है, केवल उसके लिये अन्तिम लक्ष्य को पहुँच चुका है। किन्तु, जब तक पूर्णपराज्ञान उत्पन्न नहीं होता है, तब तक हर एक को आशा रखते हुए एवं तैयारी करते हुए, धीरतापूर्वक प्रतीक्षा करनी है। विकासोन्मुख शिशु को बड़ों का भोजन नहीं खिलाया जा सकता; शिशु की

आवश्यताओं एवं क्षमताओं के अनुकूल भोजन को संतुलित करना है। तुम्हें अतिश्यकता नहीं करनी चाहिये और न काम करने से बचना चाहिए; क्योंकि दोनों रोगी बना देते हैं तथा स्वास्थ्य को नष्ट कर देते हैं।

साधकों के लिये शास्त्रों को या बौद्धिक पांडित्य को मैं अति अनिवार्य नहीं मानता हूँ। मैं तुम्हें परामर्श देता हूँ कि आनन्द का विकास करो; किन्तु इन कठोर एवं संशयपूर्ण साधनों द्वारा नहीं; बल्कि उस प्रेम की उत्पत्ति के द्वारा जो घर-परिवार एवं सभी प्राणियों के प्रति प्रसारित होता है। उस पैनी धार वाले अस्त्र को नीचे डाल दो जो विश्लेषण की चेष्टा करता हैं, जो विरोधी के तर्कों का गला घोंटता है ताकि उसके दृष्टिकोण को टुकड़े-टुकड़े कर दे। उस प्रेम के मोदक को हाथ में लो, जो आनन्द बिखेरता है तथा अड़ियल हृदयों को भी जीत लेता है।

यही मेरा पथ है...प्रेम का पथ है, जिसपर मैं तुम्हें ले चलूंगा। यही कारण है कि तुममें से जो भी मेरे पास आता है उसके पास मैं अपना आगमन-पत्र प्रदान करता हूँ। मैं तुम्हारा नाम, तुम्हारी डिग्री, तुम्हारा व्यवसाय, तुम्हारा स्तर एवं तुम्हारा इतिहास जानता हूँ; किन्तु तुम मेरा नहीं जानते हो। तुम्हारे पत्रों का अनुशीलन करके तुम्हारे विषय में सब कुछ जानने की मुझे आवश्यकता नहीं है; परन्तु मैं चाहता हूँ कि तुम **मेरी महिमा** का कुछ अंश जानो तथा इसीलिये, मैं महिमा के रूप में इसकी एक झलक देता हूँ। परन्तु, मैं तुम्हें अपना पर्याप्त प्रेम भी प्रदान करता हूँ ताकि तुम इसका अल्पांश उससे मिश्रित कर सको, जो कुछ तुम करते हो, या अनुभव करते हो, या विचार करते हो तथा उसे मधुर एवं स्वादिष्ट बना सको।

●

२१. जड़ और चैतन्य

(अखण्ड भजन के समय, बंगलौर, दि. १०-७-५६)

अखण्ड भजन के रूप में तुम सबने चौबीस घंटे तक भगवान के नाम की मधुरिमा का आस्वादन किया है। अखण्ड का अर्थ है अविराम, बिना किसी रुकावट के। मुझे प्रसन्नता है कि बिना किसी रुकावट के तुम लोगों ने गाया तथा लगातार एक ही विशेष नाम गाने के बदले तुम लोगों ने भगवान् के अनेक रूपों की नामावलियों को चुना ; क्योंकि भगवान के व्यक्तित्व का एक ही चेहरा नहीं है। एक ही मनुष्य अपनी सन्तान का पिता है, अपने भतीजों का चाचा है, किसी का भाई है, बहुतेरों का चचेरा भाई है तथा अपने माँ-बाप का बेटा है। उसी प्रकार परमेश्वर के अनेक पहलू हैं। जब तुम लोग भजन करते हो तो भजन में भाग लेने वाले सबको, केवल राम, कृष्ण या साईराम अवतारों के ही नहीं, परन्तु भगवान के अनेक अवतारों का स्मरण कराके सन्तुष्ट करो।

पुनः अखण्ड भजन का अर्थ है कि यह चौबीस घंटे या एक सप्ताह की बात नहीं होनी चाहिये ; बल्कि वस्तुओं के उद्गम एवं लक्ष्य के इस चिन्तन पर यह जन्म से मृत्यु तक अवश्य चलता रहे। श्मसान का जुलूस जन्म के तुरन्त पश्चात् ही प्रारम्भ हो जाता है तथा हृदय की धड़कन ही श्मसान यात्रा के लिये नगाड़े की आवाज है। कुछ लोग लम्बा रास्ता अपनाते हैं तथा कुछ शीघ्र पहुँचते हैं ; किन्तु सभी उसी पथ पर हैं। अतएव, भजन बचपन में ही प्रारम्भ हो तथा जारी रहना है। यह मनुष्य का निरन्तर साथी, उसका धीरज एवं शक्ति बना रहे। इसे बुढ़ापे के लिये स्थगित न करो ; क्योंकि मन के लिये यह अनिवार्य भोजन है।

यहाँ पर, इस भजन से तुम सब प्रफुल्लित हो गये हो तथा तुम्हें प्रसन्नता

है कि इसमें सम्मिलित होने का तुम्हें अवसर प्राप्त हुआ। किन्तु यह एक अस्थाई भावना है। तुम लोग जो भगवान के इस संकीर्तन में भाग लिये, कल बड़े उत्साह के साथ किसी ऐसे समूह में भाग लोगे जहाँ असत्यता एवं अन्याय का आदर होता है! तुम्हारे व्यवहार में एकरूपता नहीं है। जिसे तुम सही समझते हो तथा जो तुम करते हो वे एक दूसरे के विपरीत हैं। यह एक भक्त का लक्षण नहीं है। श्रद्धा न होने पर तुम शान्ति एवं सन्तोष कैसे प्राप्त कर सकते हो?

लोग सहस्रों पन्थों से सहस्रों प्रकार शाँति एवं सन्तोष को पागल होकर ढूंढते हैं। यहाँ मेरे आने के ठीक पहले डा० भगवन्तम् विज्ञान के टाटा इन्स्टीच्यूट में मुझसे कह रहे थे कि इस वस्तुगत संसार से परे कोई चीज़, कोई रहस्यात्मकता है जो विज्ञान की प्रत्येक प्रगति के साथ और भी गहन एवं अधिक रहस्यात्मक होती जाती है। जब एक द्वार खोला जाता है तब दस द्वार, जो बन्द थे, स्वयं प्रकट होते है तथा वैज्ञानिकों को आश्चर्य में डाल देते हैं। इसलिये, केवल आत्मा की गहराई में, मन के संयमन में, तथा इस सब प्रतीत्य अनेकत्व के **एक आधार** में आस्था में सच्ची शाँति प्राप्त की जा सकती है। जब वह प्राप्त हो जाती है, तब तुम इससे किसी प्रकार का आभूषण बनवा सकते हो, क्योंकि यह स्वर्ण पाने के समान ही है।

यह सब अनुभूति की बात है। उस अनुभूति के आनन्द, इसके साथ में जो अतिशय प्रसन्नता होती है उसको शब्दों के द्वारा संप्रेषित नहीं किया जा सकता है। यह सब श्रवणम् एवं कीर्तनम् तुम्हें उस अनुभूति के निकटतर ले जाने के लिये है। श्रवणम् वह दवा है जिसका सेवन तुम आन्तरिक रूप से करते हो तथा कीर्तनम् वह मलहम है जिसे तुम बाहर से लगाते हो। दोनों की आवश्यकता है। उसी प्रकार, धर्म एवं कर्म भी आवश्यक हैं। कर्म ही भक्ति की प्रथम नींव है। यही वह आधार है जिस पर भक्ति (के महल) का निर्माण होता है। धर्म वह मनोवृत्ति है जिसमें कार्य किया जाता है—सत्य, प्रेम एवं

एकरसता वे साधन हैं जिनसे मन, जब कुछ करना चाहता है, क्रियाशील बनता है।

धर्म में एवं धर्म से ही कर्म करना है। जो कर्म तामसी भाव से पराभूत होकर किया जाता है वह पूर्णतया उसके फल के निमित्त ही किया जाता है तथा वे सभी छल विद्या को हथियाते हैं ताकि उससे लाभ उठावें। उनके लिये उद्देश्य ही साधन का औचित्य ठहराता है। जो लोग राजसी भावना के प्रभुत्व में हैं, वे घमण्डी, व भड़कीले होते हैं तथा वे आत्मप्रशंसा करते हैं कि वे ही कर्त्ता हैं, वे ही परोपकारी हैं तथा वे ही अनुभवकर्त्ता हैं। सत्वगुण का प्रभुत्व जिन पर है वे उसके फल की कामना का परित्याग करके काम करते हैं तथा फल को भगवान पर ही छोड़ देते हैं। उन्हें यह चिन्ता नहीं रहती कि वे सफलता प्राप्त करेंगे या असफलता। वे अपने कर्त्तव्य मात्र के लिये सजग रहते हैं तथा अपने अधिकारों के लिये कभी नहीं।

सचमुच, वास्तविक कर्म करने का आनन्द आता है वह उससे निसृत परिणाम के आनन्द की अपेक्षा अधिक है। तुम्हें इसकी अनुभूति अवश्य हो। गृह स्वामी परिवार में किसी के विवाह के लिये जो वृद्ध व्यवस्था करता है—स्वागतम् भोजन कराना, रोशनी कराना, संगीत आदि योजना बनाते समय एवं कार्यान्वय करते समय उल्लासवर्द्धक होते हैं ; किन्तु पूरा हो जाने पर वे उतना आनन्द नहीं देते हैं। अन्त में जब, सब खर्चे की बिलें आती हैं तब वे घबड़ाहट एवं दुःख भी पैदा कर सकती हैं। इसलिये, कर्म के फल का त्याग करना अवश्य ही आसान है, यदि तुम कर्म की पद्धति पर तथा फल के मूल्य पर थोड़ा विचार प्रदान करो।

जीव ने जन्म पाया है उस ईश्वरता की चिनगारी के गौरव को प्रकट करने के लिये, जो वह है। शरीर दीपक की बत्ती है, परमेश्वर के लिये तीव्र आकांक्षा घी है जिससे लौ जलती है। किन्तु उस चूहे के समान, मनुष्य भी अपने वास्तविक सार को छोड़ देता है तथा नाशवान सम्पत्ति के लिये अपने

जीवन का अपव्यय करता है, जो जाल में रखे गये सस्ते भोजन की तेज महक से आकृष्ट होकर खत्ती में पड़े हुए अन्य खाद्यों की उपेक्षा करता है तथा अपनी मूर्खता का शिकार बनता है।

इन सब अनित्य वस्तुओं में तुम नित्यम् को अवश्य देखो एवं विस्मय करो। इस नाटक में केवल दो ही अभिनेता हैं जो लाखों क्रीड़ा करते हैं। वे हैं जड़ एवं चैतन्य। जिस प्रकार, वीणा बजाने वाले चौड़िया ने अभी यहाँ दस रागों को बजाया और चार सौ रागों को चार तारों पर बजा सकता है; उसी प्रकार जड़ एवं चैतन्य मिलकर यह सब अभिनय करते हैं। वर्णमाला के केवल २६ अक्षरों में से, शब्दकोश के सभी अक्षर बनते हैं तथा लाखों पुस्तकें लिखी, पढ़ी एवं समझी जाती हैं। किन्तु तुम्हें इस नाटक से देखना चाहिये तथा सूत्र-धार, जो ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है, का पता लगाना चाहिये।

यह निष्काम कर्म पर आश्रित भक्ति के द्वारा किया जा सकता है। भक्त के संस्कार उसके मन की दशा, तथा उसके विकास की स्थिति के अनुसार भक्ति अनेक प्रकार की होती है। भीष्म की शाँत भक्ति है, यशोदा की वात्सल्य भक्ति है, गौराङ्ग एवं मीरा की माधुर्य भक्ति है तथा गोपियों की अनुराग भक्ति है। इनमें दास्य भाव सबसे सरल है तथा इस काल के अधिकाँश जिज्ञासुओं के लिये सर्वोत्तम है। इसका अर्थ है शरणँगति या प्रापत्ति। यह शान्त भक्ति से निकलती है।

भक्ति का विकास अनेक या सभी साधनों से करना है। मन एवं बुद्धि को नियन्त्रित एवं अभ्यस्त करना है—यही लक्ष्य है। ये तुम्हें विशिष्टाद्वैत तक पहुँचा सकते हैं। कालान्तर में, अद्वैत अनुभूति उसकी अनुकम्पा पर निर्भर करती है तथा सायुज्यम् उसके हाथों में है। मुख्य साधन है श्रवण, कीर्तनम्, स्मरणम्, पादसेवनम्, वन्दनम्, दास्यम्, स्नेहम्, एवं आत्मनिवेदनम्। आत्म-निवेदनम् के ठीक पूर्व स्नेहम को रखा गया है; क्योंकि मित्रों के मध्य भय या सन्देह या अविश्वास या हिचक नहीं रहती है।

मनुष्य की आध्यत्मिक उन्नति के पथ को साफ करने के लिये ही अवतार का आगमन हुआ है। मनुष्य जिस अशान्ति में डूबा है, उसे नष्ट करना है। 'परित्राणाय साधूनाम्' का यही अर्थ है—साधुओं की रक्षा, सभी भले जीवों की अशान्ति या शोक के उन स्पर्शों से रक्षा करना है जो सांसारिक वस्तुओं के सापेक्षिक महत्वहीनता के ज्ञानाभाव के कारण पैदा होते हैं। सब जीव शाँति एवं सन्तोष अवश्य पावें, इसी उद्देश्य से भगवान बारम्बार इस पृथ्वी पर आते हैं। वह किसी स्थान को चुनते हैं जो पवित्रता एवं दिव्यता से परिपूर्ण होता है तथा वह मानवीय शरीर धारण करते हैं ताकि तुम उनसे मिल सको, बातें कर सको, समझ सको एवं प्रशंसा कर सको, ध्यान से सुन सको तथा अनुसरण कर सको, अनुभव कर सको एवं उससे लाभ उठा सको।

दुःख की बात यह है कि जब परमेश्वर अदृश्य, अरूप होता है तब तुम उसे अपनी पसन्द के अनुसार स्थूल बनाते हो, उससे प्रार्थना करते हो तथा उस प्रार्थना से सान्त्वना एवं शक्ति प्राप्त करते हो ; परन्तु जब वह तुम्हारे सम्मुख मानव रूप में स्थूल बन जाता है, तब तुम संशय करते हो विवाद करते हो तथा अस्वीकार करते हो ! लोग पाषाण के नाग के सामने दण्डवत करते हैं उस पर दूध उड़ेलते हैं तथा पवित्र जल से प्रेमपूर्वक धोते हैं, किन्तु जब वह वास्तविक विषधर सर्प के रूप में प्रकट होता के तब लोग भय से भागते हैं। किन्तु एक सच्चे भक्त में भय या अविश्वास नहीं रहता। स्तम्भ से नृसिंह के निकलने पर प्रह्लाद काँप रहे थे तथा जब भगवान ने इसका कारण पूछा तब उसने उत्तर दिया कि इस भय का कारण भगवान का रूप नहीं था ; क्योंकि उसके कथानुसार उनके सभी रूप सुन्दर हैं एवं दिव्य है तथा उसके कम्पन का कारण यह भय था कि वह रूप शीघ्र ही गायब हो सकता है तथा वह भगवान के शानदार दृश्य को खो सकता है। उसका पिता इतना अत्यधिक रजोगुण से भरा था कि उसने भयंकर नृसिंह रूप को देखा ; किन्तु प्रह्लाद ने उस रूप में उसको नहीं देखा। भगवान उसे सुन्दर एवं कृपामय दिखाई पड़े ; क्योंकि वह भक्ति से प्लावित था।

तुम्हें मोतियों को पाने के लिये समुद्र के गहरे तल में गोता मारना है। किनारे की लहरों में डुबकी लगाने से तथा यह शपथ खाने से कि समुद्र में मोती नहीं हैं एवं इसके अस्तित्व की सभी कथायें मिथ्या हैं, क्या लाभ है ? उसी प्रकार, यदि तुम इस अवतार का पूर्णफल अवश्य प्राप्त करना चाहते हो, तो गहरे में गोता मारो एवं साईबाबा में विलीन हो जाओ। अधूरा प्रेम, असमंजस, संशय, छिद्रान्वेषण, कहानियों का श्रवण—ये सभी अनुपयोगी हैं ! एकाग्र एवं पूर्ण आस्था—केवल यही विजय प्रदान कर सकती है। किसी भी भौतिक कार्य के लिये यह सत्य है। क्या यह नहीं है ? अतएव, आध्यात्किता के क्षेत्र में इसे कितना अधिक सत्य होना चाहिये ? किन्तु यदि तुम पहले से ही किसी नाम एवं रूप से संयुक्त हो, तो प्रेमस्वरूपम् के स्थान पर दूसरा न चुनो। तुम्हारे घर पर सैंकड़ों लोग आ सकते हैं तथा तुम से स्नेह का व्यवहार भी कर सकते हैं ; किन्तु तुम उन्हें 'पिता' के रूप में नहीं पुकारते हो। अपने मन को एक पर ही स्थिर रखो तथा बारम्बार संशय के बादलों को अपनी आस्था को मन्द करने के लिये अनुमति न दो। जैसे ; "क्या वह महान है ?" "क्या वह परमात्मा है ?" निर्भीक बनो। जिस महिमा को देखा है, उसे स्वीकार करो ; जिस आनन्द की अनुभूति किए हो, उसकी घोषणा करो ; तथा जो अनुकम्पा तुमने उपार्जित की है, उसे स्वीकृत करो। उदाहरणार्थ, जब लोग तुमसे पूछें कि क्या तुम पुट्टपरती जा रहे हो, तथा क्या तुम भजन कर रहे हो, तब तुम सगर्व कहो, "हाँ" ; क्योंकि सही पथ पर चलने में कोई लज्जा नहीं हैं।

कुछ गुरु हैं जो निर्विवाद आज्ञापालन का आग्रह करते हैं तथा अपने शिष्यों को परामर्श देते हैं उन्हें मारने-पीटने के लिये जो उनके गुरु की लेशमात्र विरोध करते हैं। ऐसे सब लोगों से मुझे घृणा है तथा उनको उचित परामर्श देने के लिये मैं आया हूँ। गुरु शिव के स्थान को कभी अधिकृत नहीं कर सकता है। जो घृणा एवं शक्ति पाने में लीन है इन शक्ति के मतवाले अहंकारी गुरु की अपेक्षा शिव को स्वयं अपना गुरु बनाना तुम लोगों के लिये

अधिक अच्छा है। जो लोग कड़ी आपत्ति करते हैं उन्हें उनके कर्मों एवं तामसिक आनन्द के साथ अकेला छोड़ दो। इसमें केवल वे ही नहीं आते हैं जो मुझसे अपरिचित हैं, परन्तु वे भी हैं जो परमेश्वर के हर स्वरूप का एवं ईश्वर के विचार मात्र का उपहास करते हैं। स्वयं विश्वास बढ़ाओ, ताकि तुम उस चट्टान की तरह अड़े रह सको जो निषेध की बाढ़ के द्रुतगामी प्रवाह का बहादुरी से सामना करती है। यह आस्था तुम्हें बाह्य संसार की बदलती हुई परिस्थितियों को विस्मृत करा देगी। रामदास को जब कारागार में बन्दी बनाया गया तब उन्होंने 'राम' को धन्यवाद दिया इस महान् वरदान के लिये क्योंकि उन्होंने विचार किया कि संसार से बिना किसी बाधा के वे अब नाम स्मरण कर सकेंगे उस स्थान में जो कारागार की ऊँची दीवालों के द्वारा दयापूर्वक बन्द कर दिया गया था।

यह सब इस मनोवृत्ति पर निर्भर करता है कि तुम सुखी हो या दुखी हो। यही सारे दृष्टिकोणों एवं सम्मतियों को रंजित करता है। लंका में आंजनेय की वीरता को रामदास ने गाया तथा ऐसा करते हुये उन्होंने द्वीप के श्वेत कुमुदिनियों का उल्लेख किया। आंजनेय ने उनको यह गाते हुए सुना तथा तुरंत ही इस वर्णन पर आपत्ति की। उन्होंने कहा कि वहाँ पर एक भी श्वेत फूल उन्होंने नहीं देखा था। उन्होंने घोषित किया कि लंका कुमुदिनी 'लाल' थी। रामदास ने फिर भी आग्रह किया कि वे श्वेत थीं। आंजनेय उन कवियों की निर्लज्जता पर रुष्ट हो गये, जिन्होंने प्रथम श्रेणी के चतुर साक्ष्यों के विरुद्ध अपनी कल्पना को भिड़ाने की चेष्टा की थी। उन्होंने राम से मध्यस्थता के लिये अनुरोध किया। रामचन्द्र जी रामदास से सहमत हुए। उन्होंने कहा कि आंजनेय ने उनको 'लाल' देखा क्योंकि समस्त राक्षस अर्भक के प्रति राजसिक क्रोध के कारण उनकी आँखें दुष्प्रभावित हो गई थीं।

इसलिये, यदि तुममें शान्ति है, तो तुम्हें संसार एक शाँतिमय स्थल दिखाई देगा, परन्तु यदि तुममें अशान्ति है, तो संसार अशान्ति से परिपूर्ण प्रतीत होगा। शान्ति को साधन से पाना है; पुस्तकों के अध्ययन से नहीं। एक न्यायाधीश

विशाल एवं बड़ी-बड़ी पुस्तकों को पढ़ता है तथा एक मुकदमें का फैसला लिखता है। दूसरा न्यायाधीश उन्हीं विशाल बड़ी पुस्तकों को पढ़ता है तथा उसी मुकदमें के लिये एक बिल्कुल प्रतिकूल फैसला लिखता है। पुस्तकें केवल पथ-दर्शिका हैं, पथ के कुछ अंश के लिये। तदन्तर, तुम्हें स्वयं पथ ढूंढना है तथा जैसे-जैसे चलते जाते हो, सरलतर होता जाता है। एक नया पैसा तथा दूसरे से दो पैसे होते हैं एवं चार और मिलकर एक आना होता है तथा सौ से एक रुपया होता है। प्रथम कदम अत्यन्त कठोर होता है तथा काशी के लिये तीर्थयात्रा प्रथम कदम से ही प्रारम्भ करनी है।

वैराग्य की ज्वाला में नन्ही लकड़ियों को तब तक डालते रहो, जब तक वह विशाल जयाग्नि (या होलिका) नहीं हो जाती है। विवेक के विकास हेतु अवसरों का अभिनन्दन करो। यदि तुम इस लोक के लिये भले हो तो **लोकनाथ** तुम पर प्रेम की वृष्टि करेंगे। एक कली बनो तथा सेवा एवं प्रेम के सौरभ को फैलाओ। तब तुम सबके द्वारा रचित हार को मैं प्रसन्नता पूर्वक पहनूंगा।

भगवान् का नाम नित्य लो तथा इसका जाप करो। कल तथा आज जो तुम लोगों ने भजन किया उसे मैं ध्यानपूर्वक सुन रहा था। तुम्हारी आवाज मन्द थी। यह बड़ी मुश्किल से इस हाल के बाहर जाती थी। मैं जानता हूँ कि किसी-किसी संस्था में जहाँ अखण्ड भजन का निर्णय करते हैं, वे प्रति घंटे की दर से कुछ लोगों को भाड़े पर लाते हैं, ताकि उनकी योजना सफल हो सके। आस्था एवं उत्साहपूर्वक भजन करो अपनी भक्ति से, जो तुम प्रत्येक नाम में गाते समय भरते हो, समस्त शहर को स्पन्दित होने दो। नाम सौख्य बढ़ाता है तथा एकता स्थापित करता है। यह सब आंधियों को शान्त कर देता है तथा शान्ति प्रदान करता है।

२२. भीतरी पर्दा

(तिरुपति, त्यागब्रह्मोत्सव, दिनांक १२-७-५९)

ऐसे समूह को 'बन्धुओ एवं बहनों' के रूप में सम्बोधित करना लौकिकता हो गई है; यद्यपि कोई भी वक्ता उस आदर्श के अनुरूप रहने को तैयार नहीं है, जो सम्बोधन के ऐसे स्वरूप से सूचित होता है। दैनिक आचरण में ऐसी अनेक खोखली औपचारिकतायें प्रवेश कर गई हैं। उदाहरणार्थ, अभी यह उल्लेख किया गया कि आज का दिन तिरुपत्ति के इतिहास में 'महत्वपूर्ण दिन' है। आज कल, 'महत्वपूर्ण दिन' या स्वर्णाक्षरों में अंकित होने वाले दिन नितान्त सस्ते हो रहे हैं। स्मरण रखो, केवल चार दिन उस सम्मान के योग्य हैं—वह दिन जब भक्त भगवान् की महिमा-गाने के लिये एकत्र होते हैं, जिस दिन भूखों को भोजन कराया जाता है, जिस दिन कोई महान् ऋषि या मुनि दर्शन देता है तथा जिस दिन किसी व्यक्ति को विवेक प्राप्त होता है। यह दिवस निश्चित रूप से उस श्रेणी में आता है। इसलिए, मंत्री का विवरण सही है।

यह समिति जिस कार्य में व्यस्त है, वह मैं पसन्द करता हूँ। इसलिए, मैं यहाँ बंगलौर से शीघ्र आया। कल वहाँ पर अनेक भक्तों द्वारा अखण्ड भजन किया गया था। मैं त्यागराज को पसन्द करता हूँ। उनके प्रति मेरा स्नेह आज की बात नहीं है। यह सौ वर्ष पुराना है। त्यागराज एवं तिरुपति परस्पर सम्बद्ध हैं। यहाँ पर ही उन्होंने प्रार्थना की थी कि उनके भीतर के प्रकाश को आच्छादित करने वाला पर्दा भगवान की कृपा से दूर हो जाये। यह समिति उस सन्त की पूजा के लिए एक मन्दिर तथा त्यागराजोत्सव मनाने के लिए एवं उनके गीतों के अध्ययन एवं अभ्यास हेतु एक विशाल भवन निर्माण करने के लिये बहादुरी के साथ प्रयास कर रही है। जब मैंने उनकी रिपोर्ट सुनी, तथा सूदूरस्थानों की इतनी यात्राओं को एवं अब तक उन्हें प्राप्त दान के तुच्छ भुगतानों को सुना तो मुझे दुःख हुआ।

यद्यपि यह रिपोर्ट उनकी भक्ति एवं त्याग का प्रमाण है, तिसपर भी यह मूल्यों के उन मिथ्या धारणाओं को भी व्यक्त करती है जो आज कल लोग विकसित कर रहे हैं। 'धन' भी रक्त की भाँति अवश्य संचरित हो ! अन्यथा वह भी अस्वस्थता पैदा करेगा। भक्ति के उन्नयन में धन का उपयोग करने की अपेक्षा और कोई श्रेष्ठतर प्रणाली नहीं हैं; क्योंकि इससे सभी व्यवस्था वैयक्तिक एवं सामाजिक लाभान्वित होगी। यदि धन भण्डार में ही रखा रहता है तथा उसको संचारित नहीं किया जाता है, तो इससे सामाजिक सूजन उत्पन्न होंगे तथा सूजन फोड़े बनेंगे एवं फूटेंगे।

मैं जानता हूँ कि नैराश्य में पड़े हुये मंत्रिगण इस इमारत को पूरा करने के लिये 'लाटरी' संचालन का विचार किये हैं। किंतु मैं इस योजना का बहुत विरोधी हूँ। 'लाटरी' लोभ से प्रेरित लोगों को आकृष्ट करती है; शीघ्र समृद्धि के आकर्षण को बढ़ाती है तथा मनुष्यों को बुरे विचार से लुभाती है। लाटरी टिकट बेचकर, पुरस्कार वितरण करके एवं शेष धन को काम में लाना—यह दूषित धन होगा। यद्यपि इसका उद्देश्य अच्छा है, परन्तु साधन भी अवश्य पवित्र हो। जो कोई एक पैसा भी देता है, वह इसे सच्ची निष्ठा के साथ देवे तथा यह जानते हुए दे कि उस भवन के लिये इसका पैसा प्रयोग किया जायेगा जिसे वह निर्मित करना चाहता है। अधूरे दिल से प्रदत्त धन को अथवा भक्ति के अतिरिक्त अन्येतर उद्देश्य से प्रदत्त धन को ग्रहण न करो। तभी यह भवन त्यागराज के योग्य होगा, जिसने तंजौर के राजाओं द्वारा प्रदत्त धन को ठुकरा दिया था। तथा मानव दानदाताओं की कृपावृष्टि की अपेक्षा भगवान् की 'सन्निधि' का अधिक सम्मान किया।

जब रोग तीव्र आक्रमण करते हैं, तब डाक्टरों की आवश्यकता अधिक होती है। इस समय, जब लोगों का नैतिक स्तर अत्यन्त गिर चुका है तब लोगों को त्यागराज जैसे डाक्टर के पास अवश्य पहुँचना चाहिये, जो 'रामनाम' की औषधि उनके ही मधुर स्वादपूर्ण वर्णनों सहित प्रदान करते हैं उस औषधि के स्वास्थ्य-प्रदान में हिस्सा लेने के लिये सबका समान अधिकार है। प्रत्येक भाषा

समूह में हमारे महान वैद्य हैं जो इस भवरोग का निदान सफलतापूर्वक करते हैं। उदाहरण के लिये हिन्दी में सूरदास, तामिल में रामलिङ्गस्वामी तथा कनाड़ में पूरन दास।

त्यागराज स्वयं एक श्रेणी में हैं। इसका कारण यह नहीं कि उन्होंने तेलगु में गीत गाये; किंतु इसका कारण यह है कि उनके गीत भक्ति की सच्चाई, काव्यात्मक सौन्दर्य एवं संगीतात्मक माधुर्य की विरल विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। गीत में अभिव्यंजित भावना के संवेगात्मक अभ्युत्थान के अनुरूप राग, अर्थ के संचार के नितान्त ठीक समय का उल्लेख, ताल को स्वतः आदेशित करने वाले एवं गायक को ध्वनि के साथ पथदर्शन कराने वाले शब्दों का प्रयोग तथा गायक में यौगिक भावना का उभाड़ने में सहायक गीत की समस्त संरचना—विज्ञान एवं कला, संगीत एवं साधना दोनों का ऐसा स्वतः स्वामित्व किसी भाषा या देश के इतिहास में विरला ही पाया जाता है। वे अनजाने गाते थे, आत्मसाक्षात्कार की परिपूर्णता में गाते थे। इसलिये गीतों में वह अनोखी सम्प्रेषणशक्ति है जो गायक एवं श्रावक को आनन्द वितरित करती है।

देवकी ने कृष्ण को जन्म दिया किंतु वह शिशु वृन्दावन में यशोदा के द्वारा पालित हुआ। यशोदा को सारी प्रसन्नता प्राप्त थी जो एक बालक प्रदान कर सकता था। उसी प्रकार, संगीत के तामिल भक्तों ने त्यागराज को स्वीकार किया है तथा तेलगु भाषियों की अपेक्षा अधिक उनके गीतों का अभ्यास किया है। वे त्यागराज के यशोदा हैं। तामिलों ने राग एवं ताल में विशिष्टता प्राप्त की तथा वे इनका कठोरता से पालन करते हुये गाते हैं। किंतु; चूंकि वे पाठ के पूर्ण अर्थ को नहीं समझ पाते हैं, इसलिये तेलगु भाषियों के कानों को कष्ट देने वाले तोड़-मरोड़ प्रायः घटित होते हैं। तेलगु भक्तों को अधिकाधिक त्यागराजकीर्ति-गान करना सीखना है, ताकि गीतों में तेलगु भाषा की अर्थछायान्तर

समाप्त न हो जाये। आखिरकार, राग, ताल एवं ध्वनियाँ गीत में समाहित संदेश के अधिक सरल पाचन या आत्मसातकरण में सहायता देने के लिये, तथा गायक एवं श्रोता में उस भाव के संप्रेषण के लिये है जिससे गीत प्रथम समय में उत्पन्न हुआ था। ये तभी शक्य हैं जब अर्थ स्पष्ट हो।

एक यान के रूप में संगीत समस्त संसार में लोकप्रिय है। सभी देशों के मनुष्य, स्त्री एवं शिशु इसके सूक्ष्म प्रभाव के शिकार हैं। यहाँ तक कि पशु एवं पौधे भी संगीत से संवेद्य हैं। भगवान् ने कहा है, "मद्भक्ताः यत्र गायन्ते, तत्र तिष्ठामि, नारद्।" जहाँ मेरे भक्त गाते हैं, वहाँ मैं स्वयं बैठा रहता हूँ। इसलिए संदर्भ एवं अर्थ को पूर्ण समझकर त्यागराज के भलि-भाँति गाये गये गीत भक्ति के प्रचार के लिये सर्वोत्तम माध्यम हैं। यही कारण है कि मैं, आज, त्यागराजोत्सव मनाने वाली समिति के सदस्यों को प्रोत्साहन करने एवं वरदान देने के लिये यहाँ आया। तीन चीजों ने संयुक्त होकर मुझे यहाँ बुलाया—इच्छा श्रद्धा एवं अनुकूलम-सुविधाओं का योग।

तिरुमलाई तिरुपति देवस्थानम्, जहाँ कहीं भी भक्ति के पौधे हों, उन्हें अवश्य पोषित करें। भक्ति के कारण ही तीर्थयात्री पहाड़ी तक आते हैं तथा वैंकटेश्वर के सामने प्रार्थना करते हैं। यदि भक्ति के सोते सूख जायें तो मानव मन का सिंचन कहाँ से होगा ? इस प्रदेश के समस्त मन्दिरों के लिये वह जलाशय है। इसलिए, इस समिति को आपत्ति से बचाने के लिए यह देवस्थानम् भली प्रकार प्रस्तुत हो सकता है। त्यागराज की कीर्ति की, जो भक्ति भावना का विकास करती है, उन्नति द्वारा यह देवस्थानम् का कार्य कर रही है। वे स्वयं वाल्मीकि थे तथा दक्षिण भारत में राम-महिमा को गाने एवं रामतारक-मन्त्र का प्रसारण करने आये थे। सतत्, मानव कल्याण एवं विश्व कल्याण की भावना उनमें थी। भगवान् की निरंतर उपस्थिति की उन्हें अनुभूति हुआ करती थी। इसलिये, भगवान् राम ने उन्हें अनेक बार दर्शन दिया था तथा

उनकी सहायता के लिये उन्हें आना पड़ा था। उनकी भक्ति ने उन्हें सदैव शांत एवं आनन्दमय रखा।

प्रार्थना एवं शोकार्तता दो ऐसे नियम हैं जिनसे मन को अहंकार एवं घृणा से प्रक्षालित किया जा सकता है। यह किस प्रकार किया जा सकता है त्यागराज सुन्दर उदाहरण हैं। वे अपने शब्दों एवं कर्मों के परीक्षण के उपक्रम में तथा उन्हें भक्ति की कसौटी पर परखने में निरंतर व्यस्त रहते थे। जिस प्रकार मधु की खोज में मधुमक्खी फलों को ढूँढने के लिए सुदूर तक घूमती है, जैसे लता वृक्ष से दृढ़ता पूर्वक एवं सहर्ष चिपकती है ताकि वह गिर न जाये, जैसे नालियाँ नदी की ओर दौड़ती हैं तथा नदी समुद्र की ओर दौड़ती है, उसी प्रकार त्यागराज राम के लिए तड़पते थे। उनके गीत भक्ति की निर्मल एवं सुरभित कलियाँ हैं। अतः वे अमर हैं।

प्रत्येक व्यक्ति विश्राम चाहता है; किंतु ऐन्द्रिक इच्छाओं की धूल मन पर जम जाती है। वह जंग पैदा करती है तथा उसके विस्फोट करने को धमकाती है। इसलिये, उसकी कड़ी परीक्षा लेनी है तथा उसे पूर्णतया साफसुथरा रखना है। उस जंग को हटाने के लिए त्यागराज की कीर्ति का गान बहुत ही लाभदायक है। कुछ समय के लिए अपनी पिशुनता को पृथक् कर दो तथा मनोहारी ध्वनि को ध्यान से सुनो एवं भाव को आत्मसात करो। आध्यात्मिक संस्कृति एवं मन के संयमन के विज्ञान का इस देश में सहस्रों वर्षों तक विकास हुआ तथा अभ्यास किया गया। यही कारण है कि भारतीय सभ्यता ने युगों के प्रहार एवं बवंडरों को, जो समस्त देशवासियों के पैर उखाड़ देते हैं, सहन किया। भारतवर्ष, अब भी नव युग की देहली पर, अपने प्राचीन आदर्शों के नेतृत्व में हराभरा एवं नूतन है।

आजकल उत्तम संगीत की अभिरुचि, चलचित्रों से आने वाले खटकीले लयगान एवं माधुर्य के आगमन के साथ, समाप्त हो गई है तथा भजन में भी

उनकी नकल करने की तृष्णा फैल गई है। किंतु त्यागराज की कीर्ति को पौराणिक रागों के साथ गाओ तथा मुझे निश्चय है कि उनका उत्तम असर होगा। वे 'गीत' मात्र नहीं हैं परन्तु वे कीमती पाषाणों की छाती है तथा वे तुम्हें परमात्मा के पथ पर ले जायेंगे। यदि त्यागराज की उपेक्षा की गई, तो यह पवित्र पहाड़ी अपनी उच्चता खो देगी, क्योंकि भक्ति के आसन पर आश्रित होने के कारण ही यह पहाड़ी इतनी ऊँची खड़ी है। जब इस देश के लोग बुरी तरह से भौतिकवादी हो जएं तथा अन्तस्थ परमात्मा की ध्वनि को न सुनें तभी त्यागराज की उपेक्षा हो सकती है।

२३. मन्दिर

(बुदली ग्राम, दि० ६-११-५६)

ग्रामों में जाने में तथा ग्रामीणों से मिलने में मुझ सदैव प्रसन्नता होती है। ग्रामवासी का मन निर्मल एवं विकारहीन होता है। तथा गाँव का वातावरण सच्चा होता है कृत्रिमता से अदूषित रहता है। आज का दिन तुम्हारे ग्राम के इतिहास में एक महान् दिवस है ; क्योंकि समाज का विकास योजना के अन्तर्गत तुम्हें एक अस्पताल एवं एक स्वास्थ्य केन्द्र प्राप्त हो रहा है। मुझे प्रसन्नता है कि तुम लोग इसके महत्व को जानते हो। इस जलसे को शानदार ढंग से मनाने के लिये तुम लोगों ने व्यवस्थायें की हैं। संगठनकर्त्ताओं द्वारा निर्धारित भिन्न-भिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए तुम सब एक साथ प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित हो रहे हो। तुम्हारे ग्राम ने जो यह सहयोग की तथा प्रसन्नतापूर्ण बन्धुत्व की भावना प्रदर्शित की है, इसी ने मुझे आज यहाँ बुलाया है। मैं प्रेम हूँ तथा मैं चाहता हूँ कि सर्वत्र एवं सभी मामलों में प्रेम फले-फूले।

मनुष्य दो प्रकार की बीमारियों—शारीरिक एवं मानसिक से पीड़ित होते हैं। इनमें से एक बात, पित्त एवं कफ—इन तीन प्रकृतियों के असन्तुलन से पैदा होती है तथा दूसरी बीमारी तीन गुणों सत्व, राजस एवं तामस के असन्तुलन से पैदा होती है। इन दोनों प्रकारी की बीमारियों के संबंध में एक विचित्र बात है कि सद्गुण दोनों प्रकार की बीमारियों को ठीक करता है। मानसिक स्वस्थता के लिए शारीरिक स्वस्थता एक पूर्व अनिवार्यता है तथा मानसिक स्वस्थता शारीरिक स्वस्थता को स्थिर रखती है। दया का दृष्टिकोण, शोक एवं हानि होने पर धीरता की मनोवृत्ति, भलाई करने के लिये उत्साह की भावना, अपनी सर्वोत्तम क्षमता के अनुरूप सेवा करने की भावना—ये मन एवं शरीर को भी निर्मित करते हैं। इन सेवाओं से प्राप्त आनन्द शरीर पर प्रतिक्रिया करता है

तथा तुम्हें रोग से मुक्त रखता है; क्योंकि शरीर एवं मन में अत्यन्त घनिष्ठ पारस्परिक सम्बंध है।

तुम लोग अधिकांशरूप से कृषक हो। इसलिये मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं कि तुम वर्ष भर अधिकाँश महीनों में आशा पर ही निर्भर करते हो। जब तक तुम खेत जोवते हो, बीज बोते हो, पौधे लगाते हो तथा अपनी उगाई हुई फसल में खाद देते हो, तब तक आशा ही तुम्हें जीवित रखती है। कृषि से भिन्न, अन्येतर कामों में भी तुम उस आशा को मानसिक आदत के रूप में आवश्य रखनी चाहिये। यह तुम्हें जिंदगी के सभी क्षेत्रों में जीवित रखेगी। कर्म एवं प्रयत्न की शक्ति को विनष्ट करने के लिए निराशा जैसी दुर्वृत्ति को कोई भी अवसर नहीं दो। निराशा परमेश्वर के प्रति एक पाप है। जब वह तुममें है तब तुम आशा क्यों खोते हो? यही कारण है कि भगवान् कहते हैं, जब मैं यहाँ हूँ, तब तुम क्यों डरते हो? सदैव आनन्दमय, आशावादी एवं साहसी बने रहो। 'तुमने कहा है कि चित्रावदी नदी, जो पुट्टापर्ती से बहती है, तुम्हारे गाँव के निकट से भी बहती है तथा यह हम दोनों के मध्य एक सम्बंध सी है। यदि आखिकार यह है तो बहुत ही कमजोर सम्बन्ध है। क्योंकि यह वर्ष में बहुत थोड़े दिनों भरी रहती है तथा वर्ष के शेष दिनों में यह निरर्थक रेती रहती है। यदि तुम्हारे अन्तस्थल में जीवन-दायिनी साहस की सरितायें प्रवाहीत होती हैं तो वह चित्रावदी इस शुष्क धारा की अपेक्षा अधिक मूल्यवान है तथा यह तुम्हारे एवं मेरे मध्य अधिक सच्चा सम्बन्ध है।

ग्राम ही समस्त देश की रीढ़ है। शिशु ही मनुष्य बनता है, ग्राम नगर में विकसित होता है। हमें केवल इतना ही देखना है कि अबोध, सरल एवं सच्चा शिशु एक निर्दय एवं कठोरहृदयी व्यक्ति के रूप में विकास नहीं पाता है। उसी प्रकार, हमें यह भी देखना है कि शांत ईश्वर से भय करने वाला सरल ग्राम कोलाहलपूर्ण नकारात्मक नगर के रूप में विकसित नहीं होता है। कल के नेतागण इस ग्राम में तथा समस्त देश में अन्य ग्रामों में शोषित हो रहे

हैं। यदि तुममें सद्गुण है तो कल नगरों में भी सद्गुण होंगे। यदि तुममें शक्ति है तो नगर भी मजबूत होंगे। यदि तुम कलहप्रेमी हो तो नगर भी इससे दुष्प्रभावित होंगे। मित्रतापूर्वक रहना एवं काम करना सीखो। आज की आनन्दपूर्ण अनुभूति को अपने जीवन का एक स्थाई लक्षण बना लो। ग्रामों में दलबन्दी एवं पार्टियाँ हमारे सामाजिक जीवन के नाशक हैं। कठिन परिश्रम का सारा फल उनसे उमड़ने वाली घृणा के द्वारा जन्य मुकदमों में व्यर्थ खर्च होता है। तुम लोगों के लिये भोजन एवं वस्त्र की सामग्रियाँ पैदा करते हो। तुम आलसी मनुष्यों के लिये परिश्रम का उदाहरण प्रस्तुत करते हो। तुम मुर्गे की बाँग के साथ जागते हो, तथा जब उलूक सो जाते हैं तब सोने जाते हो। तुम पसीने से तर होते हो, कठिन परिश्रम करते हो, आकाश की ओर भक्ति से हाथ जोड़े हुए और विनयपूर्वक देखते हो तथा तुम नम्रतापूर्वक एवं कृतज्ञतापूर्वक जीवन यापन करते हो। मौसम एवं कृषक में एक घनिष्ट सम्बन्ध है। ऋतुओं की नियमितता का अनुसरण करते हुए तुम्हारा जीवन एक समतल तख्ते पर चलता है। तुम प्रकृति से आगे नहीं दौड़ते हो, जैसा नगरनिवासी किया करते हैं।

मेरी इच्छा है कि तुम लोग उन लोगों के प्रति, जो इस अस्पताल को सम्भव बनाये तथा सरकार के प्रति, जो इसको तुम्हारे लिए चलाते रहेंगे, कृतज्ञ रहें। सरकार तुम लोगों से धन संचय करती है तथा इन सुविधाओं की व्यवस्था करती है। किन्तु अपनी सारी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिये तुम्हें सरकार पर आश्रित रहना चाहिये। अधिकारीगण भी सर्वाधिकार सम्पन्न नहीं हैं। सेवक मात्र है, जिन्हें आदेशों का पालन करना है। सरकार राज्य रूपी मोटरकार की चालक है। तुम मोटरकार के स्वामी हो तथा उसके यात्री भी हो। उचित चालकों को चुनो तथा सर्तक होकर देखते रहो कि चालक यात्रियों को अथवा गाड़ी को हानि नहीं पहुँचाता है। मोटरगाड़ी का यही कर्त्तव्य है। क्या यह नहीं है ?

मैं तुम्हें बताऊं कि वह सर्वश्रेष्ठ साधन, जिससे तुम्हारे सभी प्रयत्नों की

सफलता निश्चित की जा सकती है, भक्ति है। वह स्वास्थ्य, सम्पति एवं समृद्धि भी प्रदान करेगी, क्योंकि यह घृणा एवं कलह को दूर करेगी तथा तुम्हारी केहुनियों को उस समय और ताकत देगी जब तुम खेत जोतते हो। शक्ति से भरा हुआ एक व्यक्ति प्रत्येक कार्य भगवान् की पूजा के रूप में करेगा। इसलिए कार्य अधिक अच्छा एवं कुशलता के साथ होगा तथा उसमें कोई जी चुराने या बेईमानी नहीं होगी। यह भगवान् की कृपा को भी प्राप्त करेगी। इसलिए एक भक्त अधिक फसल उगाने में समर्थ होगा तथा अधिक स्वस्थता एवं मानसिक सुख का उपभोग कर सकेगा। यदि किसी ग्राम के एक सहस्र व्यक्ति भगवान् की महिमा एक साथ गायें, तो यह एक दूसरे के विपरीत सहस्रों कोलाहलों एवं चिल्लाहटों की अपेक्षा महत्तर एकता एवं सामाजिक सम्बद्धता पैदा करेगी। यदि तुम भगवान् का नाम एक साथ लो तथा एक साथ उनकी महिमा का गान करो तो प्रेम की बाढ़ गाँव में आयेगी तथा तुम्हारे सभी प्रयत्नों को उर्वरक बना देगी। कुछ काल तक इसे करो तथा तुम्हीं परिवर्तित वातावरण के स्वयं साक्षी बनोगे।

कभी-कभी, ईर्ष्या एवं घृणा के बादल सम्बन्धों को अन्धकारमय बनाने के लिये आते हैं। प्रथमतः यह भय के कारण है जो भय क्रोध उत्पन्न करता है। भक्ति नम्रता एवं विवेक के आगमन के साथ ही ये सब विलीन हो जायेंगे। क्रोध समय, स्वास्थ्य एवं चरित्र को नष्ट करती है। इसे स्वतंत्र क्रीड़न के लिए अनुमति न दो। जिस प्रकार तुम इन खेतों में बाह्य कृषि करते हो उसी प्रकार तुम कुछ 'आन्तरिक कृषि' भी करो। 'भावना, उद्देश्य, कामना एवं प्रेरणाओं' के क्षेत्र में यही करना है।

जुलूस में उस बैलगाड़ी पर आते समय मैंने तुम्हारे मन्दिर को देखा। मैंने इसे ध्वस्त पाया तथा यह अच्छी एवं स्वच्छ दशा में नहीं है। मन्दिर ग्राम का हृदय है, तथा वहाँ जलता हुआ दीपक समस्त ग्राम का प्राण है। इसे ज्वलन्त, जगमगाता एवं स्वच्छ रखो। किसी ने मन्दिर के संकीर्ण बरामदे में एक टूटी

बैलगाड़ी रखी है। यह उतना ही बुरा है जितना भगवान् के आवास का निरादर करना। यह लोगों में भक्ति भाव को उत्साहित नहीं करेगा। मन्दिर चाहे सादा एवं छोटा ही हो, परन्तु उसे स्वच्छ रखो तथा भार इत्यादि से मुक्त रखो। कुछ ग्रामीण जैसा करते हैं, वैसा इसके साथ व्यवहार न करो—उन आलसी लोगों के लिये आश्रय न बनाओ, जो इधर-उधर व्यर्थ घूमते हैं तथा ताश या जुआ खेलते हैं। इस ग्राम में एक साथ मिलकर एक भजन मण्डली बनाओ। मुझे पता है कि तुम्हारी एक मण्डली है, किन्तु इसे अधिक सक्रिय होना चाहिये, मन्दिर में इसे अवश्य पूजा में उपस्थित होना चाहिये, तथा इसे भक्ति का एक झरना बनाना चाहिए। यह इसे प्रदर्शित करेगा कि भगवान् ने तुम्हारे ऊपर जो सब वरदानों की वृष्टि की है उसके लिये तुम उसके कृतज्ञ हो।

अभी, अस्पताल के अधिकारी डाक्टर ने आप लोगों से सहयोग के लिये अनुरोध किया है। उनका प्रयोजन यह है कि शारीरिक रोगों की आप उपेक्षा न करें तथा भगवान् के पूजामंडप को क्षति न पहुँचावें। यह एक साधना है जिसकी भली प्रकार देख-भाल करनी है। डाक्टर अपने विषय में दक्ष है, उन्होंने दवाओं का दीर्घ समय तक अध्ययन किया है तथा वे सेवा की भावना से द्रवित है। उनकी कुशलता के लिए उनका सम्मान करो, उनमें एवं उनकी दवा में विश्वास करो तथा अपनी लापरवाही से या कुवैदों के यहाँ जाकर जो तुम्हारे रोग है, उन्हें और न बढ़ाओ।

मैं, तुम से, बुदिली के निवासियों से यह विशेषरूप से कहता हूँ। 'पारस्परिक सहायता की भावना का विकास करो। ग्रामीण बरबाद हुये हैं; क्यों कि एक व्यक्ति दूसरे की समृद्धि को सहन नहीं कर सकता है। यह भारतीय चरित्र का घातक है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ोसी को नीचे घसीटने के लिये तत्पर है; जब कि पाश्चात्य देशों में वे श्रेष्ठतर बुद्धि एवं श्रमशीलता के लवलेशमात्र लक्षण को प्रोत्साहित करते हैं तथा होड़ की भावना नहीं दिखाते हैं। द्वेष ही विनाश का मूल है। शरीर, इन्द्रियाँ तथा इन्द्रियों को खिलाने वाले दृश्यों के संचय को अनुचित महत्व देने के कारण यह उत्पन्न होती है।

वस्तुओं को उनके उचित रूप में ही देखो, उनको उचित महत्व दो किन्तु अधिक नहीं। यहाँ कुछ महत्तर वस्तुएं है जो आनन्द एवं शांति प्रदान करती हैं। उन्हें पकड़ने की चेष्टा करो। तुममें से प्रत्येक को उसे पाने का अधिकार है। तुम्हारी मुट्ठी से कोई उन्हें नहीं निकाल सकता है।

तुमने ब्रह्मेश्वर मंदिर के विषय में बताया जो एक समय यहाँ था किन्तु वह बहुत पहले से नदी की रेत के नीचे पड़ा है। तुम्हारे हृदय के अन्तरतम में जो भगवान् का मन्दिर है उसे काम एवं क्रोध की रेतों से उसी प्रकार आच्छादित न होने दो। परम्परा के अनुसार, यहाँ पर तप करने वाले ऋषियों एवं योगियों के विषय में तुमने चर्चा की। ठीक, वे ऋषि एवं योगी जानते थे कि कौन सत्य है तथा कौन असत्य है। मन की चंचलता को उन्होंने नियन्त्रित किया था तथा वे शान्ति में बसते थे। इन शाश्वत मूल्यों पर अपने ध्यान को स्थिर करो, तब वासना के झोंको से या क्रोध के आवेश से तुम्हारे पैर नहीं उखड़ेंगे। तब, प्रेम एव पारस्परिक सहायता की भावना से भरित यह ग्राम चारों ओर मीलों तक के ग्रामों के लिये आदर्श बन जायेगा।

२४. बहुमति एवं एकमति

(मादकसिरा—दिनाङ्क २५-११-५९)

यद्यपि यह क्षेत्र एवं यह नगर मेरे लिये नवीन नहीं है, तथापि तुम में के अधिकांश लोग मुझे प्रथम बार देख रहे हैं। जब कुछ अधिक थालियाँ सजाई जाती हैं तब यह एक त्यौहार दिवस हो जाता है। इसलिये, जब जिला व्यायाम प्रतियोगियां यहाँ होती हैं, तब बालकों, विद्यार्थियों, माता-पिता एवं अन्य लोगों के लिये, जो देश के कल्याण में रुचि रखते हैं, यह एक त्यौहार का दिन है। तुम सब लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता है तथा दैनिक नीरसता को भूल गये हो। तुम लोगों ने प्रतियोगिताओं एवं खेलों को देखा है तथा भाग लेने वालों की उत्सुकता एवं उत्साह का आनन्द लिया है। हमारे सम्मुख बैठे हुये विद्यार्थी वे साधन हैं जिससे कल के भारत का स्वरूप निर्मित होगा। उनके शिक्षक जो यहाँ पर हैं, सचमुच भाग्यशाली हैं क्योंकि नियति ने उन्हें एक भव्य कार्य सौंपा है।—उन्हें वह स्वर्ण अवसर प्रदान किया है कि इस आनन्ददायक तरीके से देश के हित की वे सेवा करें तथा अपने समय को अबोध नव बालकों के साथ व्यतीत करें। पिता, माता एवं गुरु—ये तीनों प्रथमतः देश के भविष्य को ढालने के लिये उत्तरदायी हैं। इनमें शिक्षक सबसे महत्तम अभिनय करता है; क्योंकि इस पद के लिये विशेष रूप से प्रशिक्षित होता है तथा चुना जाता है तथा वह स्वेच्छया इसे अपनाता है। इसलिये, वह इस कार्य को बिना शंका या हिचक के अपनी सर्वोत्तम क्षमता के साथ करे। बालक, माता-पिता एवं जन समूह के द्वारा एक समान ही उस पर विश्वास किया जाता है तथा सच्ची सेवा के द्वारा उस विश्वास का पुनः भुगतान अवश्य किया जाय। गुरु के रूप में, उस शब्द की सम्पूर्ण आलोकपूर्ण संसर्गों सहित बालकों तथा जनता द्वारा उसका सम्मान एवं आदर किया जाता है। वह निर्धन हो सकता है तथा चोटी के व्यक्ति उनकी परवाह नहीं करते हों, किंतु

अपने शांत एवं रचनात्मक कार्य से वह जो सन्तोष प्राप्त करता है, वही पर्याप्त प्रतिफल है। चाहे जितनी उत्तेजना हो, एक शिक्षक अपने शिष्यों को कभी अभिशाप नहीं दे तथा वह सदैव उन्हें वरदान देवे। यदि वह गँवार व्यक्ति की तरह सौगन्ध खाता है तो वह अपने को उस गँवार के स्तर पर उतार देता है।

उसे—अपने व्यवहार पर कड़ी दृष्टि रखनी चाहिये तथा उसे पता लगाना चाहिये कि उसमें कोई ऐसी आदत या विशेषता तो नहीं है जो छात्रों द्वारा अनुकरण करने पर हानिकारक हो। जो परामर्ष वह दूसरों को देता, उसका पालन उसे स्वयं करना चाहिये अन्यथा, वह नन्हें शिशुओं को पाखण्ड सिखायेगा तथा वह चालाकी सीखने के लिये उन्हें प्रोत्साहित करेगा जिसका पता भी नहीं चल सके। पाखण्ड को बढ़ने की अनुमति देना निरी मानसिक दुर्बलता एवं कायरता है। यदि परिणाम का सामना करने के लिये तुममें साहस है, तो तुम कभी झूठ नहीं बोलोगे।

अध्यापक को भय के सरल साधन द्वारा शासन करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि शिष्यों पर उसका भयंकर परिणाम होता है। प्रेम का पथ अपनाना श्रेयस्कर है। शिक्षकों को स्वयं जप एवं ध्यान के नियम का पालन करना चाहिये। यह उन्हें स्नायविक शांति प्रदान करेगा, जिसकी उन्हें नितान्त आवश्यकता है। 'सादा जीवन, उच्च विचार' का वातावरण उन्हें बनाना चाहिये; क्योंकि शिष्य अनजाने ही उन्हें नायक के रूप में स्वीकार कर लेते हैं तथा उनका अनुकरण करना शुरू कर देते हैं। अतीतकी पीढ़ियोंने जो धन संचय किया है—अर्थात्, आध्यात्मिक अनुशासन एवं अनुसन्धान, उसे अध्यापक उमड़ती हुई पीढ़ी को अवश्य प्रदान करें। वे स्वयं उन्हें सीखे तथा अपनी देखभाल में शिष्यों को उसे सिखावें। यह तुम्हें उस ऋण से मुक्त कर सकेगा जो प्राचीन ऋषियों का तुमपर है। मैं जानता हूँ कि जब तुम कटु बीज बोओगे तो तुम मधुर अन्न नहीं पैदा कर सकते किंतु, अब भी, इस प्रस्तुत पाठयक्रम एवं अध्ययन के विषयों की सीमा में कतिपय चीजें सम्भव है।

वर्षा का निभ्रान्त लक्षण धरती का गीलापन है। उसी प्रकार पाठशाला में कुछ समय पढ़ने का लक्षण है सदाचरण। उसमें यह विनम्रता आवश्य हो कि ज्ञान का क्षेत्र बहुत ही विस्तीर्ण है तथा वह उसका छोर मात्र स्पर्श करने में असमर्थ रहा है। समस्त मानवता के साथ अपनी घनिष्टता से वह अवश्य परिचित रहे तथा वह सभी समय सहर्ष एवं विज्ञापन की कामना से रहित हो कर दूसरों की सेवा करने की उत्सुकता को अवश्य व्यक्त करे। शिक्षित बालक दूसरों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक एवं मित्रतापूर्वक अवश्य चल सके। प्रत्येक व्यक्ति में परमेश्वर ही एक चालक शक्ति है तथा वह सभी सद संवेगों एवं उपयोगी विचारों की पृष्ट में है। परमेश्वर रूपी धागे में एक साथ पिरोयी गयी अलग-अलग दाने या माणियाँ तुम लोग हो। इसलिए घृणा बुरी चीज है, अस्वाभाविक है तथा अमानवीय है। सब लोगो में व्याप्त प्रेम के गुदे के विपरीत है। दूसरों की सम्मति है एवं दूसरों के दृष्टिकोण का सदैव आदर करो। सम्मति में रंचमात्र विभेद होते ही झगड़ना नहीं शुरू करो। वह सही हो सकता है तथा तुम गलत हो सकते हो। उसके तर्क पर मनन करो, वह कदाचिता तुमसे अधिक उस विषय के प्रति जानता हो या तुम पक्ष या विपक्ष में पूर्वाग्रही हो सकते हो, या वह उतना नहीं जानता हो जितना तुम जानते हो। स्मरण रखो, सम्मति के सभी विभेद वैयक्तिक घृणा के कारण नहीं होते हैं।

सर्वोपरि, मैं तुम लोगों से एक बात आवश्य कहूँगा। अपने माता-पिता एवं ग्रामवासियों का, जिनके मध्य तुम बड़े होते हो, अवश्य सम्मान करो। माता-पिता के कृतज्ञ बनो, क्योंकि वे तुम्हारी चिंता करते हैं तथा तुम्हारे लिये त्याग करते हैं। ग्राम के प्रति भी कृतज्ञ बनो क्योंकि वहाँ तुमने प्रथम बार आलोक देखा। यदि तुम कहीं पैदा हो एवं पोषित किये गये हो उसके प्रेम के पालने में, तुम वहाँ से कहीं अन्यत्र चले गये तथा उस नये स्थान के बेहतर बनाने से क्या लाभ है? सदैव अपना ध्यान अपने ग्राम के प्रति मोड़ते रहो तथा इसके भविष्य को सुन्दरतर बनाने के उपायों एवं साधनों को सोचते रहो। यह कृतज्ञता तुम अवश्य प्रदर्शित करो।

अध्ययन के पाठ्यक्रम में जो विषय निर्धारित किये गये हैं, तुम लोग अवश्य ही उनपर अधिकार करो; किन्तु उनके साथ-साथ सनातन धर्म के सिद्धांतों का अध्ययन भी करो। सनातन के रूप में इसका परित्याग न करो; क्योंकि यह अति प्राचीन काल से चला आरहा है। इसनेशतियों की परीक्षाओं को सहन किया है तथा आज भी तुम्हें आनन्द एवं शान्ति प्रदान करने के लिये सक्षम है। यह अति प्रिय दादी के समान है जो सदैव तुम्हें अच्छा एवं सुन्दर भोजन कराने के लिये चिंतित एवं सक्षम है। एक समय, एक चूते हुये मकान में एक कंजूस रहता था। छत से वर्षा का पानी घर में गिरता था ; किन्तु वह सदैव उसी में बैठा रहता था। पड़ोसी उसपर हँसे तथा छत की मरम्मत कराने के लिये सावधान किया। किन्तु, उस वर्षा ऋतु में उसने उत्तर दिया, "वर्षा को बन्द होने दो। अभी कैसे इसकी मरम्मत कराऊं।" तथा जब वर्षा बन्द हो गई, तब उसने कहा, "मैं पानी के टपकाव की चिन्ता क्यों करूँ। अब तो पानी बरसना बन्द हो गया।" वर्षा आने पर पानी के टपकाव से कष्ट न भोगो; क्योंकि वे अवश्य कष्ट देंगे। छत की अभी स्वयं मरम्मत कर लो। कहने का तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक प्राइमर एवं पाठ्यपुस्तकों से अभी स्वयं परिचित हो जाओ—मौन, प्रार्थना एवं भगवान् के नाम का उच्चारण शुरू कर दो। आध्यात्मिकता के साम्राज्य में यह कभी अतिशीघ्रता नहीं है।

अब, तुम बुशकोट पहनते हो तथा पैन्ट पहन कर इधर-उधर घूमते हो तो नन्हें बालकों में ईर्ष्या पैदा करते हो क्योंकि वे इन्हें नहीं प्राप्त कर सकते हैं। उस समय तुम गर्वीले मालूम होते हो। किन्तु, न्यायतः तुम तभी गर्व कर सकते हो जब तुम अपने मन की चंचलताओं को नियंत्रित करने में तथा अपने भावों एवं इच्छाओं को मननीय एवं स्वस्थ मार्गों से संचालित करने में तथा अपने तथाकथित मित्रों की निन्दा तक का सामना करने में समर्थ हो। वही सच्ची स्वतंत्रता है तथा वही सच्ची सफलता है। उस स्थिति पर पहुँचकर तुम एक कुशल चालक बन जाते हो तथा किसी सड़क पर, कीमती से कीमती गाड़ी चलाने के लिये तुम्हारा विश्वास किया जायेगा। तब, तुम न तो स्वयं को न दूसरों को हानि नहीं पहुँचाओगे। तभी, तुम नेता बनने योग्य हो।

आनन्दपूर्वक जीवन, सुखी एवं अविचलित जीवन की कला के विषय में अधिक से अधिक जानने के लिये उत्सुक एवं प्रयत्नशील बनो। कोई एक-एक कदम ही आगे बढ़ सकता है तथा कदम चढ़ने पर दो कदम नीचे फिसलने का खतरा भी है। जो बात ध्यान देने की है, वह है चढ़ने का संकल्प तथा फिसलने की प्रवृत्ति का सामना करने वाला प्रतिरोध तथा प्रगति करने की, निम्नतर मनोवेगों एवं सहजात प्रवृत्तियों पर विजय पाने की उत्कट आकांक्षा। आदि तुममें यह है, तो तुममें शक्ति के छिपे सोते उमड़ पड़ेंगे तथा भगवान् की कृपा तुम्हारे पथ को समतल करेगी। आदर्श को अपने सम्मुख रखो तथा आगे बढ़ो। आज का विद्यार्थी कल का अध्यापक होगा तथा कालान्तर में प्रधानाध्यापक बनेगा। कैसे? अध्ययन से यथा विश्वसनीय चरित्र के विकास से। भविष्य के लोग उन्हीं का सम्मान करते हैं तथा कृज्ञतापूर्वक नाम लेते हैं, जिनका कोई आदर्श है। राम का सम्मान होता है एवं पूजा की जाती हैं, जब कि रावण जलाया जाता है। क्यों? उस चरित्र के कारण जिसे उसने प्रदर्शित किया था।

अपने मन की आँखों के सामने सदैव अपने देश को, अपने सनातन धर्म को तथा अपने निजी आत्मा की उन्नति को रखो। इन तीनों की सेवा के लिए अधिक से अधिक सुधा बढ़ने दो। तुम्हारे अध्ययन को एक उद्देश्य एवं 'मिशन' का भाव प्राप्त होगा। तब, तुम पाप का भय, अन्तस्थ परमात्मा का भय, नीचता का भय, गुरुजनों के लिये आदर तथा अपनी आत्मा पर विश्वास प्राप्त करोगे।

एक बात और। कोई ऐसा काम न करो जो तुम्हारे माँ-बाप की आँखों को आँसुओं से गीला कर दे। उनका सम्मान करो तथा उनकी आज्ञा का पालन करो। 'पुराने चाल ढाल' के रूप में उनकी निन्दा न करो। 'पुराना सोना है।' वे संसार के सुदीर्घ अनुभव, ज्ञान तथा इसकी चालाकियों से बातें करते हैं।

अच्छा, अंजनप्पा एवं अन्य लोगों द्वारा मुझे तुम लोगों को 'बहुमति' बांटने के लिये कहा गया है। उनका मतलब है कि पुरस्कार वितरण करूं। किन्तु, जैसा

आप सब जानते हैं, बहुमति का अर्थ है असंख्य मति।' अब, मैं इस प्रकार की मति नहीं देता हूँ। मैं सदैव एकाग्रता या एक मन पर जोर देता हूँ। अंजनप्पा चाहते थे कि मैं तुम्हें प्रसादम् दूँ। मेरा प्रसादम् सर्वदा आनन्दम् है। यह केवल एकमति के द्वारा प्राप्त की जा सकती है। मैं यह प्रतियोगिता एवं झगड़ा तथा यह पुरस्कार एवं श्रेणियों के द्वारा अहंकार का पैदा करना नहीं पसन्द करता हूँ।

मुझे निश्चय है कि यहाँ तुममें से कोई भी अहंकार या निराशा से बरबाद नहीं होगा। असफलता को ठंडे दिमाग से ग्रहण करो तथा विजय को भी। दूसरा बहुत कठिक मानसिक अभ्यास। विजेता लोग अपनी विजय के लिए पराजितों के प्रति अवश्य कृतज्ञ हों, क्योंकि असफल व्यक्ति यदि थोड़ा अधिक प्रयत्न किया होता तो वे ही पुरस्कार ले लिये होते। पुरस्कार खोने वाले आप के साथ-साथ कदम मिलाकर दौड़ते हुए तुमको और तेजी से दोड़ने के लिये प्रेरित किया था तथा तुम्हें जीतने के लिए उत्साहित किया था। उन्होंने तुम्हें उस अतिरिक्त जगह को भरने के लिये वह संकल्प दिया जिसने तुम्हारे हाथों में पुरस्कार लाया।

पुरस्कार न पाने वालो ! मैं तुमसे कहता हूँ कि आत्मविश्वास नहीं खोना। विजय को अधिक मूल्य नहीं दो, और न पराजय को अत्यधिक महत्व। यहाँ तक कि परीक्षाओं में जब तुम अनुत्तीर्ण होते तो निराशा से परीभूत नहीं हो तथा आत्महत्या जैसे मूर्खता के काम न करो। जिन्दगी उससे अत्यधिक कीमती है। परीक्षा उत्तीर्ण करने की अपेक्षा अधिक महत्तर कामों के लिये तुम्हारा जन्म हुआ है। वीर एवं धीर बनो। परीक्षा में उत्तीर्ण न होने पर सर्वस्व नहीं खो जाता है। यह तो तुम्हारी बुद्धि का केवल एक पहलू है। तुम्हारा भाग्य परीक्षा के अंकों पर ही निर्भर नहीं करता है। यह चरित्र, इच्छा-शक्ति एवं परमेश्वर की कृपा पर अधिक निर्भर करता है।

प्रधानाध्यापक ने आशा की है कि यह विद्यालय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय हो जायेगा। मैं वरदान देता हूँ कि यह उस स्तर तक शीघ्र ही पहुँच जाये तथा देश के इस अंचल के लिये यह आलोक एवं संस्कृति का एक स्रोत बन जाये।

२५. मनुष्य एवं मानस

(ओकिरिपल्लि, मारकण्डेय संस्कृत विद्यालय दि० २२-१-६०)

अभी डा० भगवन्तम ने मुझसे आपके सम्मुख भाषण देने के लिये कहा। किन्तु मैं 'भाषण' नहीं देता हूँ। मैं तुमसे केवल बातचीत करता हूँ। मैं सार्वजनिक भाषण नहीं देता हूँ या सभाओं को सम्बोधित नहीं करता हूँ जैसा अभी बोलने वाले बहुत से व्यक्ति करते हैं। उन्होंने भाषण दिये जो कानों के लिये नियमित ज्यौनार हैं। किन्तु, इसके विपरीत, मेरी वार्ता 'मनकी औषधि' होगी। उनके भाषण थे मगर मेरी औषधियाँ हैं। इसलिये आप लोग मेरी बात को मन में अति ध्यानपूर्वक धारण करें तथा एक शब्द भी व्यर्थ न जाने दें या न गिरने दें।

जब तुमसे यह पूछा जाता है कि परमेश्वर कहाँ है? तब तुम प्रायः आकाश की ओर या किसी सुदूर स्थान की ओर संकेत करते हो तथा कहते हो कि वह वहाँ पर है। मानो, वह एक व्यक्ति है तथा उसके रहने का एक निश्चित स्थान है। किन्तु नर स्वयं ही नारायण है, उनमें से प्रत्येक मनुष्य माधव है; सभी जातियों में से प्रत्येक। इसलिये देवताओं की संख्या तैंतीस कोटि है, जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है या आज और भी अत्यधिक गिना जा सकता है। यह भ्रम या माया है जिसने नारायण स्वरूप को केवल नर या मानव के रूप में कल्पित करने एवं व्यवहार करने के लिये बाध्य किया है। उस भ्रम को दूर करने के लिये प्रत्येक पिड़ित व्यक्ति की आवश्यकता के उपयुक्त विभिन्न साधन हैं। किन्तु सभी उपचार एवं सभी प्रयास नारायण होने की अनुभूति प्राप्त करने के लिये एवं सीमित, बन्धनयुक्त सापेक्ष नर के अस्तित्व को दूर हटाने के लिये हैं। विभिन्न प्रणालियों से उत्पन्न होने वाली यही एक

पक्की फसल है। जब तक कोई स्वयं को नहीं समझता है, तब तक भ्रांति तथा उससे जन्य शोक समाप्त नहीं किया जा सकता है।

मैं यह भी कह दूँ कि तुम मुझे एवं मेरे रहस्य को, जिसके विषय में डा० भगवन्तम् एवं तुम्हारे प्रधानाचार्य ने अत्यधिक कहा है, बिना स्वयं को समझे नहीं समझ सकते हो। क्योंकि, जब तुम इतने दुर्बल हो कि स्वयं को ही नहीं समझ सकते हो, तब तुम मेरे अवतरण की अत्यधिक भव्य **यथार्थता** की गहराई की थाह पाने की आशा कैसे कर सकते हो ? मेरे **प्रयोजन** को समझने के लिये अभी जो तुम्हारे संशय एवं सिद्धान्त हैं; तुम्हें उनको टुकड़े-टुकड़े चीरना है तथा प्रेम पैदा करना होगा ; क्योंकि प्रेम का रूपधारी प्रेममात्र से ही समझा जा सकता है। जिन चमत्कारों एवं विस्मयों की व्याख्या, डा० भगवन्तम् के कथनानुसार, विज्ञान के विभिन्न वर्गों द्वारा नहीं की जा सकती है, वे मेरे लिये इतनी स्वाभाविक या सहज हैं **जितना मैं कल्पित** हूँ, जब तुम उन्हें चमत्कार अंकित करते हो। भगवान् ने घोषित कर दिया था कि वह धर्म की पुनर्स्थापना के लिये अवतीर्ण होगा तथा वह मानव रूप धारण करेगा ताकि सभी उसके चतुर्दिक एकत्र हो सकें और जैसी घोषणा की गई थी, भगवान् आ गये हैं।

जो व्यक्ति मन, बुद्धि एवं अहंकार आकर्षणों से घसीटे जाते हैं, उनके लिये इन तीनों के ज्ञानक्षेत्रातीत वस्तुएँ अगाध हैं ; क्योंकि एक सीमा है जिसके आगे मन एवं बुद्धि नहीं जा सकते हैं। यही कारण है कि महाशक्ति स्वयं को माया से आच्छादित कर लेती है तथा मानवीय ज्ञान के स्तर तक उतर आती है।

यह भारतवर्ष आध्यात्मिक विज्ञान की जन्म भूमि है। यहाँ इस विज्ञान का विद्यार्थी, हर एक नर, नारी एवं बालक हैं। यहाँ पर प्रत्येक व्यक्ति इस सर्वोच्च विषय के अध्ययन का अधिकारी है। इस देश में प्रत्येक बालक एवं बालिका को यह प्राचीन वसीयत अवश्य प्रदान की जाय, केवल इस प्रकार के विद्यलयों के छात्रों को ही नहीं।

इतिहास के विभिन्न युगों में, इस आध्यात्मिक विज्ञान में किसी एक या दूसरी प्रणाली पर बल दिया गया है। एक बार मन्त्रों पर, दूसरे समय यज्ञों पर, कालान्तर में योग पर तथा भारतवर्ष में तथा उसके पड़ौसी देशों में बौद्ध धर्म के अभ्युदय एवं प्रसारण के पश्चात तन्त्र पर बल दिया गया। शंकर ने तन्त्र को महत प्रोत्साहन प्रदान किया तथा कालिदास ने भी इसे महत्त्वपूर्ण माना। शिवाजी द्वारा तान्त्रिक विद्वानों को प्रदत्त प्रोत्साहन के कारण यह फूला-फला। तथा इसने कई शताब्दियों तक इस देश के आध्यात्मिक जीवन पर प्रभुत्व जमाया। तन्त्र का अर्थ है 'जो भली भाँति रक्षा करता है।' इस लिये, इसके विषय में क्षमा याचना की विचारण करने का कोई कारण नहीं है। ब्रह्म के साथ जीव के विलीन होने के लक्ष्य को प्राप्त करने का यह एक साधन मात्र है।

जान वुडरॉफ ने अपनी पुस्तकों में दिखाया है कि तन्त्र एक व्यवस्थित संयम है जो सहज प्रवृत्तियों को निर्मल करने के लिये तथा मन को नियंत्रित करने के लिये प्रतीकवाद एवं निर्माल्य का प्रयोग करता है। उन्होंने उस पूर्वाग्रह, जिसने लोगों को तन्त्र से दूरस्थ किया था, को बहुत सीमा तक दूर किया। यह एक आध्यात्मिक विज्ञान है जो शक्ति पर आधारित है तथा मानव के आध्यात्मिक उन्नयन में केन्द्रीय स्थान रखता है।

अपने निजी मानसिक आकृतियों की परीक्षा करो तथा यह देखो कि क्या स्वयं को वैराग्य के वस्त्र में सजाने के लिये अपने विवेक एवं विज्ञान का तुमने प्रयोग किया है, ताकि तुम विनष्ट होने वाली वस्तुओं के मोह से पीड़ित नहीं हो। शोक से छुटकारा कैसे पाया जाय—यह बताने के लिये पुस्तकों का कोई अभाव नहीं है। गीता सभी भाषाओं में अत्यन्त अल्प मूल्य में प्राप्य है ; जैसे, चार आने प्रति। भागवत, रामायण एवं अन्य सब पुस्तकें प्रतिदिन सहस्रों की संख्या में बेची जाती हैं ; किन्तु उनके अनुशीलन में एवं पचाने की सूचना देने वाला कोई उपाय नहीं है। भीतर जाने वाले भोजन का संकेत मुंह की

चौड़ाई से मिलता है। क्या यह नहीं है ? किन्तु, इन पुस्तकों के पाठकों की आदतें, आचरण एवं चरित्र में उत्तमता के लिये कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है। अहंकार एवं लोभ अब भी आक्रामक है, घृणा शान्त नहीं हुई है तथा द्वेष मनुष्य की जीवन-शक्ति को विनष्ट कर रहा है।

उसी प्रकार, मेरे शब्दों के साथ अत्यन्त हल्का व्यवहार नहीं करो तथा यह नहीं कहो, "हमने साई बाबा को देखा, उनकी बातों को सुना तथा यह सब बहुत सुन्दर था।" अपने आध्यात्मिक प्रगति के लिये कम से कम परामर्श के एक अंश का ही पालन करो। कोई एक बुरा कार्य करके अथवा किसी कुसंग में घुमाकर के, इस शरीर को कलंकित करना अत्यन्त ही गलत है। शरीर को पवित्र करो तथा प्रत्येक कार्य को पवित्र करो, किसी ऊँचे उद्देश्य के लिये इसे अर्पण करके। अपनी प्रामाणिकता के आधार पर मैं आज तुम्हें आदेश नहीं दे रहा हूँ बल्कि प्रेम की परिपूर्णता के कारण तुमसे कह रहा हूँ। अधिकार के आधार पर मुझे तुमको दण्डित करना पड़ता है तथा तुम्हें सत्पथ पर संचालित करना है।

मैं जानता हूँ उन वयोवृद्ध लोगों को, जो स्वयं उच्चतर सद्गुणों की उपेक्षा कर रहे हैं तथा स्वयं जप एवं ध्यान के नियमों को त्याग रहे हैं तथा अपनी उन सन्तानों का उपहास कर रहे हैं जो परमात्मा के नाम की मधुरता का अनुभव करते हैं एवं उन स्थानों में बार-बार जाते हैं जहाँ वे सत्संग, भव्य विचार एवं आध्यात्मिक शिक्षाएँ प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे नवयुवकों को भ्रष्ट चित्त कहते हैं तथा वे दण्ड के अपने ही विशिष्ट विधि से उन्हें स्वस्थ करने की चेष्टा करते हैं। विलासिता, जुआ खेलना, मदिरा पीना एवं नैतिक पतन के दीवानापन, जो बुजुर्गों द्वारा अपनी सन्तान के लिये छोड़ी गई एक मात्र सम्पत्ति है ; की अपेक्षा उनकी सन्तानों का पागलपन निश्चय ही अधिक वाँछनीय है।

यहाँ पर तुम्हारा अध्ययन तुम्हारे विवेक को अवश्य विकसित करे, न कि तुम्हारे अहंकार को। तर्क के लिये तर्क न करो, क्योंकि यह शुष्क पाण्डित्य

एवं बौद्धिक अहंकार की ओर ले जायेगा। आलोचना की यह उत्कटेच्छा एक बुद्धि-रोग है तथा इसको प्रारम्भ में ही समाप्त कर देना चाहिये। जो तुम्हें पसन्द नहीं है, उसकी परीक्षा अति समीपता एवं सावधानी से करो। पक्ष या विपक्ष के परिणामों पर कूदो नहीं। यह तुम्हारा 'विचारम्' के कीमती पद का त्याग करा देगा तथा तुम्हारे प्रति तुम्हारे दायित्व का भी। एक 'मैग्निफाइंग' शीशे के द्वारा यदि सूर्य की रश्मियों को एक ही बिन्दु पर केन्द्रित किया जाय तो करोड़ों मील दूर का सूर्य भी किसी वस्तु में अग्नि लगा देगा। उसी प्रकार निरीक्षण एवं विवेचन की अपनी सारी शक्ति को एक विषय पर केन्द्रित करो तो यह निश्चय रूप से अभिव्यक्त हो जायेगा।

संसार स्वयं निरन्तर उद्विग्नता का शिकार है। तब इस पर नीरव, सन्तुष्ट एवं शान्तिमय जीवन यापन करने की तुम्हारी योजना कैसे सफल हो सकती है? यह सागर की तरंगों पर इधर-उधर उछलते समय उसाँस लिये बिना या गिरे बिना तिरने की चेष्टा करने के समान है। ऐसी दशा में, सत्यता का मानना एवं परिहार्य की चिन्ता न करना ही सर्वोत्तम है।

मनुष्य, जिस शब्द का अर्थ आदमी है, बताता है कि अपने मन या मानस का स्वामी है। जब लोग मेरे पास आते हैं तथा शिकायत करते हैं कि वे एकाग्रचित्त नहीं हो सकते हैं, तब उनकी दुर्बलता पर मुझे हँसी आती है, क्योंकि मोटर चालक तक एकाग्रता की कला का स्वामी है—वह अपने पीछे की सीटों की वार्ता के प्रति या बगल की गपशप के प्रति ध्यान नहीं देता है। वह एक बिन्दु स्थित ध्यान से सामने की सड़क को देखता है। यदि तुममें श्रद्धा है, तो आधी से अधिक लड़ाई जीत ली गई है। यही कारण है कि गीता में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "क्या जो कुछ मैंने कहा उसे तुमने एक बिन्दुस्थ ध्यान से सुना?" अर्जुन, चूँकि एक उत्तम विद्यार्थी है, उत्तर में कहता है कि युद्ध-क्षेत्र में स्थित शत्रु सेना के मध्य भी उसने भगवान् की वाणी को तीव्र ध्यान से सुना है। वह एकाग्रता सीखो तथा तुम्हारा यह ज्ञान सहायक सिद्ध होगा

मुझे इन पुस्तकों को प्रधानाचार्य के हाथों में देकर इस पुस्तकालय का उद्घाटन करने के लिये कहा गया है तथा ये पुस्तकें आलमारी में पहले से रखी हुई अन्य पुस्तकों के साथ रखी जायेंगी। आओ तथा पुस्तकालय में पुस्तकों को पढ़ो, तथा महान् साधकों एवं सिद्धों द्वारा दिये उपदेशों का आनन्द लो। छोटे बालकों को भी आने दो, पुस्तकों को हाथ में उठाने दो तथा पृष्ठों को पलटने दो ; क्योंकि यह पुस्तकालय इस नगर के सभी लोगों के लिये जो दो वर्ष से ६० या ७० वर्ष के हैं, लाभदायक होना चाहिये। यह उस औषधालय के सदृश नहीं है जो कुछ लोगों के लिये अनावश्यक है। यह सभी को लाभ करता है। इसलिये, सब लोग इसका सर्वोत्तम उपयोग करें। इन पुस्तकों में जो ज्ञान है वह औकरिपल्लि के प्रत्येक घर में अवश्य छनकर आवे।

तुम्हारे प्रयास एवं उत्साह से संस्कृत की शिक्षा को उन्नति करनी है। यदि तुम शिक्षा को जगमग जलाते रखोगे तो सारा विश्व लाभान्वित होगा। अपने इस दायित्व को अपनी सर्वोत्तम सामर्थ्य से पूरा करो। भगवान् तुम पर अपनी कृपा की वृष्टि करेंगे। लक्ष्य की तकनीक में गलती न करो तथा पाण्डित्य की उलझन में अपने पथ को न खो बैठो। विद्वता एवं पाण्डित्य मन पर अधिकार करनें के साधन मात्र हैं। सृष्टि से सृष्टिकर्त्ता की ओर मुड़ो।

२६. संसार—मेरा महल

(गोखले हाल, मद्रास, दिनाङ्क २४-६-६०)

यह सभा मुझे सागर की स्मृति दिलाती है; क्योंकि यहाँ पर, इस भवन में उन मनुष्यों के अनेक प्रवाह विभिन्न दिशाओं से परमेश्वर की ओर आ रहे हैं, जो शान्ति एवं सन्तोष पाने के लिये भिन्न-भिन्न पथों का अनुसरण करते हैं। मेरा उद्देश्य तुम्हें आनन्द प्रदान करना है तथा ऐसा करने के लिये मैं सतत् तत्पर हूँ। मेरी भाषा तुम्हें थोड़ा कष्ट दे सकती है क्योंकि तुम लोग तेलगु नहीं समझ सकोगे, किन्तु इस सभा में मैं जिस भी भाषा में बोलूं, कुछ लोग उसे नहीं समझ पायेंगे। इसलिए मैं तेलुगु में ही बोलूंगा।

चार बातें हैं जिनमें मनुष्यों को स्वयं अभिरुचि लेनी चाहिए : मैं कौन हूँ, मैं कहा से आया हूँ, मैं कहाँ जा रहा हूँ, यहां मैं कब तक रहूँगा। चारों वेद इन चारों प्रश्नों का उत्तर देते हैं। समस्त आध्यात्मिक खोज इन प्रश्नों से तथा इन प्रश्नों के उत्तर देने के प्रयासों से शुरू होती है। कल्पना करो, डाक बक्स में एक पत्र है जिसपर इसे कहाँ जाना चाहिए, यह पता नहीं है और यह कहां से आया है, यह भी पता नहीं है। यह कहीं नहीं पहुंचेगा। इसका लिखना अप व्यय है। उसी प्रकार, यदि यह नहीं ज्ञात है कि तुम कहाँ से आये तथा तुम्हें कहाँ जाना है, इस संसार में आना भी व्यर्थ है। पत्र मृतपत्र कार्यालय में चला जायेगा। जीवि जन्म एवं मृत्यु के चक्र में फँस जायेगा तथा कभी स्वयं को मुक्त नहीं पायेगा। इसके लिये आत्मविचार एवं सही उत्तर तक सफलतापूर्वक पहुंचने के लिये साधना अनिवार्य है। उत्तर तुम्हारी अनुभूतियों के एक अंश अवश्य बनें।

साधना एक अनुशासित एवं व्यवस्थित ढंग से धर्म के वातावरण में होनी

चाहिये। यथा, इस हाल में वातावरण को शीतल रखने के लिये तथा इस हाल में इतनी बड़ी भीड़ को बैठना सम्भव बनाने के लिये पंखे लगे हुए हैं; उसी प्रकार, अज्ञान, असत्य, अन्याय एवं अकर्म को मूर्छित करने वाली उष्णता को कम करने के लिए सत्य, धर्म, शांति एवं प्रेम के पंखे इस संसार में आवश्यक हैं। जहाँ प्रत्येक मोड़ पर धर्म अपमानित एवं अस्वीकृत किया जा रहा है, वहाँ शांति एवं सहिष्णुता वह पथ है जिससे मनुष्य आत्मरक्षा कर सकता है।

जो कुछ मुझे तुमसे कहना है उसका यही सारांश है तथा इसी की तुम्हें आदत डालनी है। प्रत्येक कार्य में सहिष्णुता, धैर्य एवं पारस्परिक सहायता रखो। परिवार में धैर्य एवं परस्पर आदर का भाव पैदा करो, समाज में धर्म एवं न्याय करो, तथा राष्ट्रों के समाज में शान्ति का आदर्श रखो। शरीर को परमेश्वर की पूजा का स्थान कहा जाता है; तथा संसार परमेश्वर का शरीर है। अंगूठे में पिन का चुभना शीघ्र ही आत्मा की चोट के रूप में मानलिया जाता है, क्योंकि अंगूठा आत्ममय शरीर का अंग है। उसी प्रकार संसार के एक कोने में कष्ट का होना परमेश्वर के लिये उतना ही महत्व का है जितना संसार के किसी दूसरे कोने में कष्ट का होना। जब आन्ध्र राज्य की रचना हुई, तब किसी ने मुझसे कहा कि मुझे मद्रास राज्य से निकाल दिया गया और आन्ध्र की रचना की गई। मैंने उनसे कहा कि सम्पूर्ण संसार मेरा महल है तथा मद्रास एवं आन्ध्र उस महल के दो कक्ष हैं। संसार एक मन्दिर है, यह भगवान् का मन्दिर है, उनका शरीर है जहाँ वह निवास करते हैं।

जब मैं इस स्थान पर कार से आ रहा था, मैं कई गलियों से गुजरा, तथा यह देखा कि अनेक पंडाल तथा हाल सजाये गये हैं, क्योंकि वहां पर धार्मिक वार्तायें हो रही थीं तथा पवित्र ग्रन्थों एवं शास्त्रों का पठन एवं व्याख्यायें हो रही थीं। हर स्थान पर श्रोताओं की भीड़ एकत्र थी तथा सभा एवं भजन के लिये उत्साह की कोई कमी नहीं थी। फिर अनीश्वरता या नास्तिकता आक्रामक है तथा परमेश्वर को अस्वीकृत करने वालों एवं ईश्वररत

जिज्ञासुओं की निन्दा करने वालों की संख्या बढ़ रही है। क्यों ? क्योंकि, भोजन करना ही स्वयं पाचन की गारन्टी नहीं है। जो कुछ किसी ने पढ़ा या सुना है उसके सहस्रांश मात्र का आचरण ही शांति एवं आनन्द देने में सहायता कर सकता है।

अब, जिसकी आवश्यकता है, वह है उत्साह, धैर्य एवं विश्वास, प्रयत्न, साहस एवं आस्था। प्रयत्न में, इस क्षेत्र के किसी मर्मज्ञ से सीखी हुई नियमित चर्या का अवश्य पालन करो। साहस के लिये, अपने अभ्युत्थान के लिये तुम अपने निजी महत्व का अनुभव न करो, पाप में पैदा हुआ, पाप में पालन किया गया एवं पाप में निरत अपने को स्वयं पापी कभी नहीं कहो। नहीं, इस प्रकार की आत्मनिन्दा बुरी है। तुम परमात्मा की सन्तान, अमृतपुत्र बनो। तुममें से प्रत्येक परमात्मा चालक शक्ति स्वयं आत्मा है। तुम बुरे कैसे हो सकते हो, जब तुम परमात्मा के उद्देश्य को उसके संकल्प, उसकी योजना एवं उसकी विधि के अनुसार पूरा करने के लिये यहाँ तैयार हो ? उसने तुम्हें अनेक शक्तियाँ प्रदान की हैं ताकि तुम उसे खोज सको तथा उसके पास पहुँच सको। इसलिये, तुम एक उपेक्षित, असहाय व्यक्ति नहीं हो जिसे मृत्युदण्ड भोगना है। तुम आनन्दस्वरूप हो, समृद्ध वसीयत के लिये पैदा हुए हो तथा माँगने से ही वह तुम्हारी है। केवल तुम माँगते नहीं हो। अपनी नियती में आस्था रखो तथा उसे प्राप्त करने के लिये प्रसन्नतापूर्वक एवं दृढ़तापूर्वक कर्म करो।

भक्ति भगवान् के प्रति 'रक्ति' मात्र है—सर्वोच्च सत्ता के प्रति यह स्नेह है। इसे पाने के लिए किसी को अपने घर-बार से दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि मूलवृक्ष से सूदूर बीजारोपण किया जाता है, तो क्या यह भिन्न हो जाता है ? उसे उबाल दो, फिर वह, निश्चय ही, नहीं उगेगा तथा संसार का भार नहीं बनेगा। उसी प्रकार, तुम अपनी सहज वृत्तियों एवं संवेगों को उबालो तथा ऐन्द्रिक वासनाओं को जो तुमको दास बनाती हैं, दग्ध कर दो। तुम जहाँ भी रहो, वह तुमको परमेश्वर के निकटतर लायेगा। देवताओं एवं

असुरों द्वारा जब क्षीरसागर का मंथन किया गया, तब उससे कामधेनु, कल्प-वृक्ष, लक्ष्मी तथा इन्द्र चतुष्दन्त ऐरावत हाथी तथा अत्यन्त भयंकर विष, हला-हल पैदा हुए। उसी प्रकार, प्रतिदिन भली एवं बुरी शक्तियों द्वारा मानव-मन का भी मन्थन होता है तथा उसी मानस तत्व से अच्छी एवं बुरी चीजें पैदा होती हैं। बुरी चीजें इसलिये आती हैं; क्योंकि मन ऐन्द्रिक सुख की ओर बहता है तथा लोभ एवं द्वेष वासना एवं गर्व के दल-दल में खो जाता है।

जब शेर नींद से जागता है एवं दहाड़ता है, तब वे छोटे-छोटे पशु, जिनका उस समय तक बोल-बाला था, भाग जाते हैं। उसी प्रकार, जब तुम जागजाते हो तथा प्रणवमन्त्र का जप करते हो, तब सब हेय पशु प्रवृत्तियाँ, जो अन्धकार में इधर-उधर अकड़कर चलती थीं, भाग जायेंगी। तुम अपने ही हृदय में वह सत्ता रखते हो जो काल एवं आकाश से परे है तथा यदि तुम प्रणव से या किसी अन्य प्रतीक के द्वारा उससे सम्पर्क करते रहो, तो जंगली विचार एवं संवेग पास आने का साहस नहीं करेंगे। यदि तुमने परमेश्वर की अनुकम्पा प्राप्त की है, तो कोई तुम्हें हानि नहीं पहुँचा सकता तथा अत्यन्त शक्तिशाली ग्रहों के संयोग से उत्पन्न दुष्प्रभाव, जिससे ज्योतिषी तुम्हें डरवाते हैं, क्षण में ही अदृश्य हो जाते हैं। परमेश्वर की अनुकम्पा प्राप्त करने के लिये दो तैया-रियाँ करनी हैं : पियंवद-प्रेम से बोल जहाँ तक दुनियाँ से सम्बन्ध है तथा सत्यम् वद, जब तक दूसरे से सम्बन्ध है तब तक सत्य बोलो। प्रेम एक अस्त्र है, विचार चक्र या पहिया है जिसे लगातार चक्कर करना है। प्रेम के प्रकाश को प्राप्त करने के लिये। जब तक प्रेम का उद्भव नहीं होता है तब तक घृणा के अन्धेरे में हो, जहाँ रंचमात्र गति भय एवं शंका उत्पन्न करती है।

आलस्य या निराशा के सामने कभी न झुको। हानि एवं शोक को प्रस-न्नतापूर्वक भोगो; क्योंकि वे तुम्हारे व्यक्तित्व को कठोर बनाने में सहायता करते हैं। हीरा चट्टानों के मध्य पाया जाता है तथा स्वर्ण पाने के लिये तुम्हें पत्रियों को उड़ा देना होगा। डाक्टर के बताये नियमों का कड़ाई से पालन

करो ताकि दवा सर्वोत्तम फल दे सके। पुट्टापर्ती आने पर तुम्हारे कार की बैटरी चार्ज की जाती है या किसी दूसरे पवित्र स्थल पर जब तुम जाते हो। अथवा कम से कम, तीर्थयात्रा का यही उद्देश्य होना चाहिये। अपनी साधना की बैटरी को चार्ज करो तथा तत्पश्चात् घर वापस जाने पर अपनी कार को निश्क्रिय न रखो। यदि तुम आलस करते हो, तो बैटरी उतर जायेगी। इसलिए, कार को घुमाते रहो तथा इसे चलाते जाओ। तब बैटरी स्वयं चार्ज हो जायेगी। उसी प्रकार यदि तुम सत्संग, सत्प्रवर्तन, भजन एवं नामस्मरण नहीं करते हो, तो यह चार्ज करना निरर्थक हो जाता है।

मैं प्रोपैगैंडा करने या प्रसारण करने या शिष्य एवं भक्तों को प्राप्त करने के निमित्त नहीं आया हूँ। मैं तुम्हारा हूँ तथा तुम मेरे हो। तब प्रसारण की क्या आवश्यकता है ? मैं भाषण नहीं देता हूं। मैं तुम्हारे मानसिक स्वास्थ्य के लिये एवं नैतिक पुनर्शक्ति के लिये औषधि देता हूँ। इसलिये, मेरी वाणी को अपने स्वास्थ्य के लिये आवश्यक औषधि के रूप में ग्रहण करो।

२७. अन्तस्थ सत्य

(बंगलौर—अखण्ड भजन—दिनांक २०-७-६०)

जो जीवन रुदन से प्रारम्भ होता है, उसका अन्त मुस्कान के साथ अवश्य होना है। जब तुम नन्हें से शिशु थे, तुम्हारे चारों ओर लोग मुसकराते थे परन्तु तुम रो रहे थे। तुम्हारे निधन पर, तुम्हारे चारों ओर सब लोग तुम्हें खोकर अवश्य रोते हैं किन्तु तुम्हें शान्ति एवं नीरव विश्रान्ति में मुसकराना चाहिये। 'भोगानन्दम' को अन्ततः योगानन्दम् में रूपान्तरित होना आवश्यक है, इन्द्रियानन्द को क्रमशः त्याग देना चाहिये तथा तुम्हें इस उच्चतर एवं अधिकशाश्वत आनन्द की रुचि को अवश्य विकसित करना चाहिये, जो तुम्हारे निजी व्यक्तित्व के निर्झर से ही प्राप्य है। योग के लिये भक्ति प्रधान वस्तु है —वही सिर एवं मुकुट है। शान्ति एवं सन्तोष अन्य अनिवार्य वस्तुएं हैं।

मन की भट्टी में जब वासना के ईंधनों को लगाया जाता है तब शोक एवं हर्ष की अग्नि प्रज्वलित होती है। ईंधनों को हटालो। अग्नि बुझ जायेगी। वासनाओं को, संवेग शक्तियों को, उत्तेजनाओं को एवं आवेगों को खींच लो तो तुम अपने आप के स्वामी बन जाओगे। अनेकानेक शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक अभ्यासों के द्वारा योग में यह काम किया जाता है। किन्तु इस लक्ष्य हेतु भक्ति सरलतम साधन है। नामस्मरण ही पर्याप्त है। यह कहा जाता है कि 'सीताराम' नाम त्रेतायुग में पर्याप्त था, 'राधेश्याम' नाम द्वापरयुग में पर्याप्त था तथा कलियुग में, मैं तुम्हें बताता हूँ, सभी नामों में वह समर्थता है।

जब तुम 'राधेश्याम' नाम का उच्चारण करते हो, तुम नाम की महिमा पर अवश्य ध्यान रखो तथा उस शब्द की गहनतर रहस्यात्मकता तुम्हारे मन की आंखों के सम्मुख अवश्य प्रस्तुत रहे। तभी नामस्मरण शीघ्रतर फलित होगा।

राधा कोई व्यक्ति नहीं है। यह धरा, जिसका अर्थ है पृथ्वी या प्रकृति या जड़ सृष्टि ; का प्रतीक है। कृष्ण या श्याम सृष्टिकर्त्ता, क्रियाशील आदर्श चित या पुरुष हैं। शक्ति परमात्मा है एवं व्यक्ति, जीवात्मा है ; महासागर शक्ति है तथा लहर जीवि है। लहरों का सारा आस्वादन, सारी शक्ति एवं गर्जना महासागर से ही निकलती है तथा महासागर में ही वह स्वयं विलीन हो जाती है। लहरों की आकृति एवं लहर के नाम की विलीनता को ही मोक्ष कहा जाता है। अर्थात् लहर की उस महासागर में विलीनता, जिससे वह भिन्न प्रतीत हो रही थी। दूसरे शब्दों में व्यक्ति-विनाश ही मोक्ष है।

भजन करते समय या परमात्मा का नाम गाते समय तुम्हें ऐसे अन्तस्थ सत्यों का ध्यान अवश्य करना है। नामावलि—"हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे; हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे हरे।" में सोलह शब्द हैं तथा सोलह में से प्रत्येक एक गुण या धर्म की महिमा व्यक्त करता है जिसे भजन के साथ-साथ विकसित करना है। (यहाँ बाबा ने उस स्थान पर स्वरचित एक तेलगु गीत सुनाया जिसमें सोलह गुण बताये गये हैं :) वह भक्त अवश्य है, तपोयुक्त, संसारमुक्त, भगवत्पादासक्त, विहित, दानसहित, यशोमहित, कल्मष-रहित, पूर्ण, गुणगण, उत्तीर्ण, विद्याविकीर्ण, ज्ञानविस्तीर्ण, स्वान्त, सदगुण, क्रान्ता, विनय विश्रान्त, एवं अन्ततः, भगवत्पदास्वान्त या अपने भीतर इनमें से प्रत्येक उपलब्धियों के विकास हेतु जो उसे लक्ष्य के निकटतर लायेगी, वह प्रत्येक शब्द के मौखिक जप के साथ, कम से कम, प्रार्थना अवश्य करता रहे। यदि उसमें ये सद्गुण हैं तो "वह मैं तथा मैं वह है।" (बाबा ने तत्काल स्व-रचित गीत की अन्तिम पंक्ति को यहाँ उद्धृत किया था—"वदे नेनुदू, नेने वदोदू।") बाबा का तात्पर्य यह था कि उसे (१) भक्ति पूर्ण, (२) कष्ट सहने के लिये तत्पर, (३) भगवान् की सेवा के लिये उत्सुक, (४) क्षणभंगुर वस्तुओं के मोह से मुक्त, (५) सच्चरित्र, (६) दानशील, (७) निष्कलंक यश, (८) निष्कलंक चरित्र, (९) पूर्णतया सन्तुष्ट, (१०) सर्वसद्गुण सम्पन्न, (११) ज्ञान के फल से संयुक्त, (१२) विवेकशीलता से पक्का, (१३) आत्म-

संयमी, (१४) प्रशंसनीय सामाजिक विशेषताओं से सुशोभित, (१५) विनम्रता से द्रवित, (१६) एवं पूर्णतया भगवान् के प्रति समर्पित होना चाहिये।

हाँ तुम अवश्य संघर्ष करो। विना प्रयास के तुम चोटी पर नहीं पहुँच सकते हो। अन्तिम विजय में विश्वास रखो, साहस एवं विश्वास का संचय कहीं से भी करो तथा भय एवं संशय का बीज बोने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क न रखो। यहाँ जो भी आत्मविश्वास तुम्हें प्राप्त होता है, उसे अपने भण्डार में रखो, इसे बढ़ाओ एवं सतर्कता से इसकी देखभाल करो। अपनी मुट्ठी से सरकने न दो, ज्योंही तुम इस फाटक से बाहर जाते हो। अंकुरों की भली प्रकार देखरेख अवश्य की जाय, सींचा जाय, खाद दी जाय तथा कीड़े-मकोड़ों से रक्षा की जाय। क्या पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन के बिना ही तुम परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकते हो? किन्तु तुम इसी बात की आशा करते हो! तुम नाशवान वस्तुओं के मोह से स्वयं को अवश्य मुक्त करो तथा मजबूत एवं लोभ रहित बनो।

मछलियाँ सुखी हैं क्योंकि वे जल में निमग्न हैं। पानी से बाहर निकालने पर, वे मार्मिक व्यथा से छटपटाती एवं कष्ट भोगती हैं। उसी प्रकार, मनुष्य भी उस समय सुखी रहता है जब वह प्रेम, शान्ति एवं सत्य में निमग्न रहता है, क्योंकि वह उस जल का अंग है जो उसे जीवन प्रदान करता है। जल से बाहर फेंके जाने पर, वह भी कष्ट भोगता है तथा भयानक रूप से दुखित होता है। यह जीवन 'पानी से बाहर फेंकना है' तथा साधना जीवनदायक तत्व में पुनः कूदने के लिये प्रयत्न है। इस प्रयत्न में सफलता के लिये दूसरों पर निर्भर न करो; बल्कि स्वयं पर एवं परमात्मा की अनुकम्पा पर निर्भर करो। स्मरण रखो—'राम एवं काम' एक साथ नहीं रह सकते हैं—जहाँ राम है; वहाँ काम विकसित नहीं हो सकता तथा जहाँ काम है, वहाँ राम कैसे प्रवेश कर सकते हैं? प्रत्येक व्यक्ति एक ही 'धार' (प्रवाह) के रूप में, राधा के आधार रूप को अवश्य प्राप्त करे; श्याम को पाने का यही सरलतम उपाय है।

इस प्रकार के अप्रतिहत प्रयत्न करने पर, परमात्मा स्वयं तुम्हारे पथ-दर्शक के रूप में आयेगा। मधुरकवि जब तपस्या कर रहे थे, उन्होंने एक बड़े प्रकाश-स्तम्भ को देखा जो आकाश तक पहुँच रहा था। उसी प्रकाश में उसने दक्षिणमूर्ति को देखा। तब वह आलोक स्तम्भ आगे-आगे बढ़ता गया ताकि वे उसका अनुसरण कर सके तथा अन्त में, वह प्रकाश उन्हें नाम्मलवार तक ले गया जिसने उनका गुरु होना स्वीकार किया। कालान्तर में गुरु ने उन्हें 'सत्य' की प्राप्ति करा दी। वेमन एवं त्यागराज परमात्मा की कृपा एवं प्रोत्साहन, जो उसके दर्शनों से वे पाये थे, से आध्यात्मिक अनुभूति के शिखरों पर पहुँच गये। उससे प्रार्थना करो तथा स्वयं को प्रगट करेगा। वह वस्त्र का धागा है, आभूषणों की प्रत्यक्ष अनेकता में वह स्वर्ण है, सभी मिट्टी के बर्तनों में वह गीली मिट्टी है, तथा वह जल है जो इन सब तरङ्गों को जीवित रखता है। इसकी एक बार अनुभूति प्राप्त करने पर, सबके प्रति तुममें प्रेम एवं आदर का भाव भर जायेगा; क्योंकि सभी एक ही रूप हैं, जैसे, भगवान स्वयं हैं।

साधकों के प्रति दोष-दृष्टि से बातें न करो। भक्तों की मनोदशा के विषय में तुम क्या जानते हो कि तुम इतनी सरलता से उन पर निर्णय पूरा न करते हो तथा उन पर पागल या मस्तिष्कहीन अंकित करते हो ? दूसरों द्वारा प्राप्त आध्यात्मिक स्तर पर कभी विवाद न करो, बल्कि अपने निजी पथ पर अध्यवसाय करते रहो। बातचीत में, सोने में तथा भोजन में संयमी बनो।—"युक्ताहार विहारस्य" भगवान् का नाम गाने या भजन करने में कभी संकोच न करो। इसका अवसर प्राप्त करने पर गर्व करो तथा इस बात पर हर्षित रहो कि तुम्हारी रसना का सर्वोत्तम उपयोग हुआ। ज्योंही कोई कारीगर किसी चट्टान को देखता है, वह तुरन्त ही उस पाषाण में निहित अथवा वन्दी सौन्दर्य की मूर्ति का दर्शन करता है तथा उसे तब तक मानसिक शान्ति नहीं प्राप्त होती है, जब तक वह पाषाण के चंगुलों से उस प्रतिमा को मुक्त नहीं कर लेता है। पाषाण को पाषाण के रूप में मत देखो। उसमें परमात्मा को देखो जो उसमें अन्तस्थ आधारभूत सत्य है। दीर्घ समय तक वे मन किसी देवालय में नहीं

गया तथा वह उन लोगोंका उपहास करता था जो प्रतिमाको ईश्वरताका प्रतीक मानते थे। किन्तु, अपनी आत्मजा के मरने के उपरान्त, वह एक दिन उसके चित्र को अपने हाथ में लेकर उसकी क्षति पर रोने लगा, तब उसके मन में अकस्मात् यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि एक चित्र उसमें शोक पैदा कर सकता है तथा आँखों में आँसू ला सकता है, तो प्रतिमा भी उनमें आनन्द पैदा कर सकती है तथा आँसू ला सकती है, जो भगवान के सौन्दर्य एवं महिमा को पहचानते हैं। प्रत्येक स्थान में तथा प्रत्येक वस्तु में भगवान् की उपस्थिति की प्रतिमा केवल एक स्मारक है। परमात्मा सूर्य है। जब उसकी रश्मियाँ, अहंकार के मेघों से अबाध्य, तुम्हारे हृदय पर पड़ती हैं, तब कमलकलिका विकसित होती है तथा पंखुरियाँ खुलती हैं। स्मरण रखो, जो कलियाँ तैयार हैं वही विकसित होंगी, शेष को धीरतापूर्वक प्रतीक्षा करनी है।

उसी समय, भगवान् के नाम का साथ रखो; क्योंकि नामस्मरण सभी बुराइयों की सर्वोत्तम औषधि है।

२८. सर्वोत्तम बलवर्द्धक दवा

(प्रशांतिनिलयम, सत्यसाई औषद्यालय, दिनांक २१-९-६०)

महानतम रोग या विश्रान्ति का अभाव, शांति का अभाव है। जब मन शांति पाता है तब शरीर भी स्वास्थ्य रहता है इसलिए स्वास्थ्य की इच्छा रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को भावों, मनोवृत्तियों एवं उद्देश्यों की ओर, जो व्यक्ति को सजीव रखते हैं, अवश्य ध्यान देना चाहिये। जिस प्रकार, तुम धोने के लिए कपड़े देते हो, उसी प्रकार तुम्हें मन को बार-बार गन्दगी से साफ रखना है। अन्यथा, गन्दगी जमती जायेगी तथा तुम्हारी आदत बनती जायेगी तब धोबी को कठिनाई होगी तथा कपड़े को भी हानि पहुँचेगी। यह दैनिक उपक्रम होना चाहिये। तुम अवश्य देखो कि तुम्हारे मन पर कोई गन्दगी नहीं जमती है। अर्थात्, तुम ऐसे व्यक्तियों के साथ में घूमों कि गन्दगी से बचे रहो। असत्यता, अन्याय, अनुशासनहीनता, निर्दयता, घृणा—ये सब गन्दगी पैदा करती हैं तथा सत्य, धर्म, शांति एवं प्रेम—ये स्वच्छताओं को पैदा करते हैं। यदि तुम इन उत्तरवर्ती की निर्मल हवा की साँस लोगे, तब तुम्हारा मन बुरे तत्वों से मुक्त रहेगा तथा मानसिक रूप से तुम बलवान रहोगे एवं शरीर से हृष्टपुष्ट। जैसा विवेकानन्द कहा करते थे, 'तुम्हारी नाड़ियाँ इस्पात की हों तथा मांसपेशियाँ लौह की।' अर्थात्, तुम आशावादी एवं आनन्दमय बनो, गर्वीले एवं अडिग संकल्प वाले बनो। निराशावादी एवं उदासीन नहीं बनो।

तुम्हारा हृदय शीशे के समान हो जिसके भीतर आध्यात्मिकता का प्रकाश हो तथा वह बाह्य संसार को प्रकाशित करता रहे। बाहरी संसार आन्तरिक इच्छाओं पर प्रतिघात करता रहे तथा उन्हें सेवा, सहानुभूति एवं परस्पर सहायता की ओर उन्मुख करता रहे। अब, लोग सब तरह अबौद्धिक वेदान्तिक ग्रन्थों का पठन एवं अनुशीलन करते हैं तथा भाष्यों, टिप्पणियों एवं अनुवादों

से संघर्ष करते हैं ताकि उनके भाव को समझ सकें। यह उनके कंठ में उड़ेला जा रहा है; किंतु हृदय को प्रभावित करने के लिये इसका अंश नीचे नहीं उतरता है। यह अभ्यास में अनूदित नहीं किया जाता है। वेदान्त के सत्य रूपी वस्त्र को सार्वजनिक प्रदर्शन के लिये धारण किया जाता है। जैसे नाटक में, अभीनेता रंगमंच पर ठीक-ठीक पोशाक पहनते हैं, किंतु रंगमंच से उतरते ही उसे उतार देते हैं। वे उनको हर समय धारण नहीं करते हैं तथा न उनसे वह आत्मानन्द ही प्राप्त करते हैं, जो वे प्रदान कर सकते हैं।

प्रधानतः यह एक सतर्क, समयोचित, नियमित अनुशासन की बात है। यह कठोर श्रम से या उछल कूद से नहीं प्राप्त हो सकता है। कदम-कदम चढ़ना है, तथा प्रत्येक कदम दूसरे के लिए पायदान के रूप में उपयोग किया जाय। अभी ज्ञात सिद्धांतों के अनुसार कोई व्यवस्थित जीवन नहीं है, यह गृहस्थ के विद्यार्थी, गृहस्वामिनी एवं गृहस्वामी के लिए सत्य बात है। घर में ही सद्गुणों को पैदा करना है, हर सदस्य शेष के हर्ष एवं शोक में शामिल हो, हर एक दूसरों की सहायता करने का अवसर ढूंढ़ता रहे—इस दृष्टिकोण का पालन करना है, ताकि यह चरित्र के रूप में स्थित रहे। कोई पानी पर रखा घड़ा, पानी के नीचे मुंह होने से कैसे भर सकता है? इसे ऊपर की ओर खोलना है तथा उत्तम संवेगों को ग्रहण करना है। तुमको हर पाठ व्यवस्थित अध्ययन से सीखना है। केवल प्रयोग एवं प्रयत्न ही सफलता देंगे।

यदि तुम उच्चतर शक्ति में विश्वास करते हो जो तुम्हारी सहायता के लिये आने को तैयार है, तो हर प्रयत्न में तुम्हारा कार्य सरल बन जायेगा। यह विश्वास भक्ति से, परमेश्वर पर भरोसा करने से आता है; क्योंकि वही सर्व शक्ति स्रोत है। ट्रेन से यात्रा करते समय तुम्हें केवल टिकट खरीदना पड़ता है। उचित रेलगाड़ी में प्रवेश करना है तथा एक सीट पर बैठना है। शेष काम इंजिन पर छोड़ना है। तुम्हें अपने सिर पर बिस्तर एवं ट्रंक क्यों ढोना चाहिए? उसी प्रकार, भगवान् पर विश्वास करो तथा अपनी भरपूर क्षमता

से काम करो। परमेश्वर में तथा उनकी अनुकम्पा में विश्वास रखो। बुद्धि एवं चेतना का उपयोग करके, जो उसने तुम्हें प्रदान किया है, इसे सीखने की चेष्टा करो।

सत्य साई अस्पताल की जिंदगी के चार वर्ष पूरे होने का उत्सव मनाने के लिये तुम सब यहाँ एकत्र हुए हो। इसलिये, मैं तुम लोगों से कहना चाहता हूँ कि सर्वोत्तम एवं अत्यन्त बुद्धिमत्ता की बात है यह देखते रहना कि तुम कभी बीमार नहीं पड़ते हो। डाक्टर ने अपने प्रतिवेदन में कहा है कि गतवर्ष की अपेक्षा बाहरी रोगियों एवं भीतरी रोगियों तथा ची-रफाड़ की संख्या इस वर्ष अधिक थी। मानो, यह उन्नति का लक्षण है। किन्तु मैं यह नहीं सोचता हूँ कि आसपास के लोगों की यह अच्छाई कहीं जारही है तथा उनके मूल्यगत विचारों की भी।

अस्पताल रोकने वाली प्रणाली को भी अवश्य आलोकित करें तथा ग्रामीणों को उन रोगों से बचने की प्रणालियों की शिक्षा देने की चेष्टा करें। आत्म-विश्वास का विकास करें। यही सर्वोत्तम वलवर्द्धक दवा है। तुम पैदा हुये हो क्योंकि तुम कुछ विषयों में उतीर्ण नहीं हुए थे। अनुभव में अभी कुछ शेष रह गया जिसे तुम पाठ्यविषय पूरा करने के लिये अवश्य प्राप्त करो। यदि तुम्हें यह विश्वास हो जाता है, तुम्हारी सच्ची प्रकृति आत्मन है, तब तुमने अपना पाठ समाप्त कर दिया है तथा उत्तीर्ण हो गये।

उस दशा तक पहुँचने के लिये, तुम सभी प्राणियों के साथ घनिष्टता या कौटुम्बिकता की भावना के विकास के साथ अवश्य प्रारम्भ करो। इसे 'सर्व-समानभाव' कहते हैं। इसे प्राप्त करना अति कठिन है किंतु सभी प्राणियों में स्थित आत्मा को देखने का एक यही रास्ता है। उदाहरणार्थ, उस भाव सहित एक व्यक्ति भोजन के लिये पशुओं को मारने या केवल उनका शिकार ही करने में सुखी नहीं होगा। तुम्हें पशुओं को ढूंढ़ते हुये उसकी माँद पर क्यों जाना चाहिये

तथा उसकी प्रतीक्षा में क्यों पड़ा रहना चाहिए, उसके लिए जाल क्यों डालनी चाहिए ताकि तुम उसको जान से मार डालो। सब जीवों के प्रति प्रेम का विकास करना चाहिए ताकि तुम 'सर्व-भूत-अन्तरात्मन' को देख सको। आत्मन् सर्वव्यापी है। यह कभी नहीं सोचो कि वह किसी विशेष वर्ण या रंग या धर्म से सम्बन्धित व्यक्तियों में ही पाया जाता हैं। या वह मोटे लोगों में बड़े आकार का है या धनिकों में चमकीले स्वभाव का है। यह हर एक प्राणी में सामानरूप से सत्, चित् एवं आनन्द है। इस दृष्टिकोण या विचार को पाने के लिए दीर्घ पथ पर साधना को चलना है।

किन्तु तुम छोटे-छोटे कार्यों से प्रारम्भ कर सकते हो : दूसरों को परेशान करने से दूर रह सकते हो। क्या यह नहीं है ? यदि तुम दूसरों की सेवा करने में असमर्थ हो या अनिच्छुक हो, तब भी तुम दूसरों को हानि पहुँचाने से स्वयं को रोक सकते हो। यह, सचमुच, एक विशिष्ट सेवा है ! उदाहरण के लिये, अपनी 'वाणी' —जो शब्द तुम बोलते हो, को लो मैं सदैव कहता हूँ 'वाक्शुद्धि मनोशुद्धि पैदा करती है।' इसी कारण में शान्त वार्ता, मधुर वार्ता, अल्प वार्ता एवं सात्विक वार्ता, जिसमें न क्रोध है, न गर्मी है एवं न घृणा है, पर आग्रह करता हूँ। ऐसी वार्तायें झगड़ा, रक्तचाप एवं दलबन्दी नहीं पैदा करेंगी। यह परस्पर आदर एवं प्रेम पैदा करेंगी। उनपर जो भलाई दूसरों की करते हैं या दूसरों की साधना पर कभी दुष्टतापूर्वक नहीं हँसो। पूछ-ताछ करो, किन्तु अपमान नहीं करो। दूसरे मनुष्यों की सच्चाई का सम्मान करो। गुरुजनों का तथा अपने से अधिक अनुभवी मनुष्यों का आदर करो। किसी समूह में, अपने चारों ओर सबपर भ्रातृत्व एवं आनन्द की वर्षा करते हुए सदाचारपूर्ण ढंग से व्यवहार करो।

मानव समाज एवं मानव-जाति के सुख के लिये प्रयत्न करो। प्रार्थना करो कि हर जगह सभी मनुष्य शान्ति एवं समृद्धि प्राप्त करें। भलाई करने के लिये एव भला व्यक्ति बनने के लिये उत्सुक रहो। चूंकि यह समारोह अस्प-

ताल से सम्बन्धित है, इसलिये कुछ अन्य बातों के विषय में मैं अवश्य कहूँगा। भोजन को नियमित करने से तथा कुछ बुरी आदतों से बचने से, तुम अपने स्वास्थ्य को रक्षित कर सकते हो। मध्यम भोजन एवं सात्विक भोजन मानसिक शक्ति को उन्नत करेगा तथा शारीरिक सुख को भी। मिताहार का सदैव स्वागत करना चाहिये। बहुत से लोग आवश्यकता से अधिक परिमाण में गरिष्ट भोजन करते हैं। लोगों को औचित्य का अभ्यास करना है। धूम्रपान न करने से, तुम इस राजसिक आदत का अनुगमन करने वाली अनेक बीमारियों से बच सकते हो। कोई नशीली वस्तु या उत्तेजक हानिकर हैं, क्योंकि वह प्रकृति की सम प्रवृत्ति में बाधा डालता है। भोजन में, बात चीत में, कामना में एवं प्रयत्न में माध्यमिकता या औचित्य, सच्चे परिश्रम से जो थोड़ा भी प्राप्त सन्तोष, दूसरों की सेवा करने एवं सबको आनन्द बाँटने के लिये औत्सुक्या—ये सभी 'टानिकों' से अधिक शक्तिशाली एवं स्वास्थ्य-रक्षक हैं तथा ये स्वास्थ्य के विज्ञान, सनातन 'आयुर्वेद' में प्रसिद्ध हैं।

२६. सत्यसाई गीता

(I)

(प्रशान्तिनिलयम दिनाङ्क २७-६-६०)

तिरुमलाचार ने जो सत्य साई गीता अभी पढ़ी है तथा जिसको समझाई है, उसमें उन्होंने मेरा नाम वह 'सत्य' दिया है जिसकी उन्हें अनुभूति हुई है। मुझे देखने वाले अनेक हैं; किन्तु मेरी गरिमा को समझने वाले बहुत थोड़े हैं। उसी प्रकार गीता देखने, पढ़ने एवं कण्ठस्थ करने वालों की संख्या बहुत है; किन्तु उसके भाव को समझने वाले नगण्य हैं। गीता अवश्य 'तागी' जाय। अर्थात् तेलुगु में 'पी जाय' या ग्रहण की जाय। तब तुम एक त्यागी या वैराग्य-पूर्ण बनोगे—इन्द्रियात्मक संसार के विचारहीन मोह से मुक्त हो जाओगे। 'राग' का अर्थात् जो चीजें प्रिय हैं तथा बन्धन में बाँधती है, जो जाल में फँसाती है तथा दास बनाती हैं उनका परित्याग करना है—यही अर्थ वैराग्य का है।

दूसरी बात गीता के विषय में है कि वह गृहस्थ जीवन के विषय में कुछ नहीं कहती है। यह जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखती है। इस कक्ष में रहें या उसमें रहें—इससे नहीं; किन्तु जैसा जीवन है तथा जिन्दगी की गहनतम समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। एक गृहस्थ ने इसे दूसरे गृहस्थ से दुहराया। इसलिये, इसने सन्यासी के पलायन का आदेश नहीं दिया। यही शिक्षा इस गीता तथा उस गीता दोनों में है।

गीता का अर्थ है 'गान'—कृष्ण इसे वृन्दावन में बाँसुरी पर गाते हैं तथा युद्धक्षेत्र में भी गाते हैं। दोनों स्थलों पर व्यष्टि को अनन्त या समष्टि में विलीन होने के लिये आह्वान है। उनके लिये रुद्रभूमि एवं भद्रभूमि एक समान हैं। वे समान रूप से उस रूप में उपदेश प्रदान करने के स्थल हैं, जिस

रूप में भक्त को यह आतिश्य प्रिय है—नाम के लिये, गान या गीत, । कल्पना करो अर्जुन ने किस एकाग्रता के साथ इसे सुना ! उसकी एकाग्रता उतनी ही सुदृढ़ थी जितनी गोपियों की, जिन्होंने वृन्दावन में बाँसुरी के सन्देश को सुना । वह (अर्जुन) प्रतिद्वन्दी सेना को भूल गया, अपनी घृणा एवं युद्धोत्साह को भूल गया तथा वह जो उपदेश प्राप्त किया, उसी में निमग्न हो गया । यदि तुम अपने ही विशिष्ट 'युद्धक्षेत्र' के कुरुक्षेत्र में वह एकाग्रता विकसित करो, तो निश्चय रूप से तुम भी गीता, भगवतगीता, या साईगीता या सत्य साई गीता सुन सकते हो; जो तुम्हारे ही लिये कल्पित या काम्य की गई हैं ।

अज्ञानसम्मोह—अज्ञान जन्य भ्राँति का निवारण करने के लिये गीता कही गई थी तथा जहाँ तक अर्जुन का सम्बन्ध है, इसे दूर करने में यह सफल हुई । संजय एवं धृतराष्ट्र जैसे अन्य लोगों ने भी सुना, किन्तु उन्हें लाभ नहीं प्राप्त हुआ; क्योंकि वे उस समय भी अपने निजी विशिष्ट प्रकार के अज्ञान से बँधे हुए थे । धृतराष्ट्र पूरे समय तक इस चिन्ता में पड़ा था कि अभी तक युद्ध प्रारम्भ नहीं हुआ तथा उसके पुत्रों के शत्रु विनष्ट नहीं किये गये ! इसलिये, वह लाभान्वित नहीं हुआ । तुम अर्जुन के वैराग्य को एवं अर्जुन की एकाग्रता को अवश्य प्राप्त करो, ताकि गीता से लाभ प्राप्त कर सको । निर्मल हृदय एवं निश्चल भाव अनिवार्य हैं ।

'मैं' एवं 'मेरा' की भावना ही अर्जुन का सम्मोह था । अकस्मात, वह विचार करने लगा कि वह हत्यारा है एवं वह उत्तरदायी होगा तथा वे उनके गुरु, गुरुजन एवं सम्बन्धीगण हैं । इस 'ममाकार' को जाना है तथा इस 'अहं' को पार करना है तथा सर्ववाणी, कर्म एवं विचार भगवान् को अर्पण करना है । शिशु ज्यों ही जन्मता है, त्यों ही वह रोता है; क्योंकि जीव पुनः एक बार प्रकृति के साथ फँसने की कामना नहीं रखता है । वह माया में प्रवेश करने की इच्छा नहीं करता है । विज्ञान इसे प्रथम बार साँस लेने एवं हवा की नली को साफ करने के उपक्रम के रूप में वर्णन करता है । किन्तु इसे रोना क्यों

चाहिये ? यह उपक्रम किसी अन्य तरीके से प्रारम्भ किया जा सकता है। कम्पन्न या स्पन्दन कहें। क्या यह नहीं है ?

रोता हुआ शिशु कालान्तर में इस संसार का त्याग हँसते हुए अवश्य करे; क्योंकि जीवन पर समाप्ति से निर्णय करना है। प्रेम वीज है, भक्ति अंकुर है, विश्वास खाद है, सत्संग जलवृष्टि है, आत्मार्पण पुष्प है तथा ऐक्यम् फल है। इसके साथ, व्यक्ति इस चक्र को फेंक दे तथा मुक्त हो जाये।

गीता कर्म-सन्यास की सलाह देता है। अर्थात् फल के मोह से रहित कर्म। कुछ कर्म कर्त्तव्य रूप में करने हैं जो संसार से सम्बन्धित हैं। यदि इन्हें उचित भावना से किया गया तो वे बिल्कुल बंधन नहीं करेंगे। नाटक में अभिनेता की तरह सब कम करो, अपने सत्ता को अलग रखो तथा अपने खेल से स्वयं को अत्यधिक सम्बद्ध न करो। स्मरण रखो कि समस्त चीजें खेल मात्र हैं तथा भगवान् ने तुम्हें एक अंश निर्धारित किया है। अपने अंश को अच्छी तरह करो। यहीं तुम्हारा सब कर्त्तव्य समाप्त हो जाता है। उसने खेल की रचना की है तथा वह इसका उपभोग करता है।

आत्मा महासागर है, प्रकृति उस विशाल कालातीत, सीमातीत महासागर की एक लहर मात्र है तथा जीव उस लहर का एक बूंद मात्र है। तुम लहर या सागर का त्याग नहीं कर सकते हो। उस बूंद के नाम एवं रूप को छोड़ कर तुम केवल विलीन हो सकते हो। एक बार समुद की गहराई में प्रवेश करो —यह पूर्ण नीरव, पूर्ण शान्त है। उद्वेग, कोलाहल एवं अस्त-व्यस्तता—ये सब केवल वाह्य तहों पर हैं। उसी प्रकार हृदय के अन्तरतम अन्तरात्म में शाँति का एक सरोवर है जहाँ तुम्हें अवश्य शरण लेनी है।

तीन प्रकार के लोग हैं—तामसिक व्यक्ति हैं जो लोहे के गोलक के समान किसी कोमल प्रभाव से अभेद्य हैं; राजसिक व्यक्ति हैं जो कपास के समान सोखने वाले हैं, किन्तु अपनी प्रकृति को नहीं बदलते हैं; तथा सात्विक व्यक्ति

है जो दूसरों के हर्ष एवं शोक से इस प्रकार द्रवित होते हैं जैसे नवनीत द्रवित होता है तथा भगवान् की लीलाओं के उल्लेख पर भी। वे सहानुभूति के उद्गम एवं सोते में गहरे डूबते हैं। घड़े में क्रोध, ईर्ष्या, लालच, असहिष्णुता आदि अनेक छिद्र हैं। शाँति, सौख्य एवं सन्तोष का जल छिद्रों से बह जाता है तथा घड़ा खाली हो जाता है। बर्तन की मरम्मत करनी है तथा सब छिद्रों को बन्द करना है, ताकि वह उपयोगी हो सके।

नैराश्यपूर्ण परिस्थितियों में ही तुम लोग भगवान् को पुकारते हो और उस समय अपने गर्व एवं अहंकार को भूल जाते हो। साँसारिक विचार में पाण्डव आपत्तियों से इतने अधिक घिरे थे कि उनमें सदैव भगवान् से प्रार्थना करने की मनोवृत्ति थी। यदि मैं तुमको सब आराम एवं अवसर प्रदान किया होता तो तुम पुट्टापर्ति नहीं आये होते। कष्ट वह चारा है जिससे मछली पानी से बाहर खींची जाती है। कुन्ती ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि, वे उसे तथा उसके पुत्रों को सब प्रकार का दुःख देते रहें ताकि वह उनको निरन्तर अपनी अनुकम्पा प्रदान करते रहें।

तिरुमलाचार ने इस मनोवृत्ति को आत्मार्पण कहा, किन्तु आत्मा वह स्वयं है। इसलिये, उसको स्वयं अर्पण करने से तुम्हारा क्या मन्तव्य है ? उसके चरणों पर तुम्हें जो अर्पण करना है, वह है अपना अहंकार ! अपने समस्त गर्व को, समस्त भिन्नत्व को, समस्त अज्ञान को तथा अहंकार व्याप्त समस्त मोह को अर्पण कर दो। यह पूजा है जो तुम्हें करनी है। अपने भीतर की समस्त बुराइयों को मेरे पास लाओ तथा उन्हें यहाँ छोड़कर मेरे पास जो है उसको मुझसे ग्रहण करो—अर्थात् प्रेम लो। सर्वसम्भावना—सबको 'एक ही परमात्मा द्वारा' चालित एवं प्रेरित समझने की क्षमता—सीखो।

प्रतिदिन परीक्षा करो उन कर्मों की जो तुम करते हो तथा जिस उद्देश्य से करते हो, उसे भी। तब तुम अपनी प्रगति पर फैसला स्वयं सुना सकते हो। केवल पवित्र उद्देश्यों एवं कर्मों को चुनो। तुम भूल गये थे कि तुम आत्मा हो

तथा अब स्मरण करते हो कि तुम आत्मा हो ! यही समस्त प्रगति है जिसको तुम्हें प्राप्त करना है। यह सब देखने में बहुत सरल है, किन्तु यह निर्धारिणों में कठोरतम है। श्रवण नयन के अति निकट है किन्तु उसे यह कभी सीधे नहीं देख सकता है। राजमहल में एक विदूषक था जो सदैव प्रश्न पूछा करता था। इसलिये वह महान् कण्ट्रक या बाधा मान लिया गया। राजा ने एक पट्ट—"कोई प्रश्न नहीं" स्थापित कराया, केवल उससे बचने के लिये। किन्तु जब बादशाह मृत्यु शैया पर पड़े थे, तब उसे निकट बुलाया एवं धीरे से कहा, "मैं कूच कर रहा हूँ।" विदूषक ने आतुरतापूर्वक पूछा, "क्या मैं राजसी रथ को आदेश दूं ? हौदा के सहित हाथी ? पूर्णतया सुसज्जित राजसी अश्व ? पालकी ? आप कितनी दूर जा रहे हैं ? कौन सा ठीक स्थान है ? आप कितने समय तक वहाँ शिविर डालेंगे ?" विदूषक बड़ा चालाक था। वह प्रश्नों को समझता था; किन्तु उनका उत्तर नहीं जानता था; और न राजा ही जानते थे। परीक्षा तुम केवल तभी उत्तीर्ण कर सकते हो जब तुम उत्तर जानते हो।

गीता तुम्हें उत्तर ढूंढने के लिये उत्प्रेरित करता है तथा उनकी अनुभूति करने के लिये तुमको निर्देशित करता है। चित्त को—मन के उद्वेगों को नियन्त्रित करने में तुम्हारी सहायता करता है। यह भ्रान्ति को नष्ट करता है; यह सच्चे ज्ञान का विकास करता है; भगवान की भव्यता की तुम्हें झलक दिखाता है तथा तुम्हारे विश्वास को स्थिर करता है। एक क्षण तुम कह सकते हो, 'बाबा हर काम करते हैं।' मैं केवल एक अस्त्र हूँ।" तथा दूसरे क्षण वही रसना कहती है, "मैंने यह किया, मैंने वह किया। स्वामी ने मेरे लिये यह नहीं किया।" गलती में तुम कभी न फिसलो, तो तुम अनुकम्पा के लिये सदैव निश्चित रह सकते हो।

समस्त हृदय उसकी सम्पत्ति है। यह सब उसी का राज्य है। किन्तु, जिस प्रकार जमींदार स्वच्छ स्थान पर ही बैठता है, यद्यपि समस्त क्षेत्र उसी का है। उसी प्रकार, भगवान् उसी हृदय में अपने को आसीन करते हैं जो साफ-

सुथरा है। भगवान् ने कहा है, " मद् भक्ता यत्र गायन्ते, तत्र तिष्ठामि, नारद ! —"जहाँ मेरे भक्त मेरा यश गाते है, मैं वहीं स्वयं आसीन होता हूँ।" मैं तुमसे बता दूँ कि तुम लोग पूर्व पीढ़ियों से अधिक भाग्यशाली हो। अनेक पूर्व जन्मों के संचित पुराणों ने ही तुम्हें यह भाग्य प्रदान की है। तुमने तुझे पाया है तथा अब यह तुम्हारा कर्त्तव्य है कि, जो सम्बन्ध तुमने नितान्त उत्तम भाग्य के द्वारा प्राप्त किया है, उसे बढ़ाओ। चार-पाँच वर्षों में ही, तुम देखोगे कि योगियों, महायोगियों एवं मुनिगणों की यहाँ भीड़ लगी है तथा मुझसे प्रश्न पूछने एवं उत्तर पाने, मेरे पास पहुँचने एवं मुझसे सीधे बात करने के ऐसे अवसर तुम्हें नहीं प्राप्त हो सकते हैं। इसलिये, कमल के चारों ओर मेंढकों के समान न बनो; बल्कि मधुमक्खियों के समान बनो। केला या आम कच्चे ही दशा में घास के सूखे तिनकों में या बन्द कमरे में रखे जाते हैं ताकि उष्णता उन्हें पका दे एवं स्वादिष्ट बना दे। परमात्मा का ध्यान भी तुम्हें उचित ताप-मान प्रदान करता है ताकि तुम स्वयं को पका सको तथा मधुर एवं स्वादिष्ट बन सको।

विश्व के कल्याणार्थ सात बातों का वर्धन होना चाहिये—गौ, ब्रह्म-जिज्ञासु या ब्राह्मिन्, वेद, शीलता, सत्य, असंगतता, एवं धर्म। इस समय इनकी तेजी से अवनति हो रही है तथा मैं उनकी विशुद्धपावनता एवं शक्ति में उनका पुनर्स्थापन करने के लिये अवतरित हुआ हूँ। यह नहीं सोचो कि यह सत्य साई गीता किसी भक्त के द्वारा रचा गया है तथा यहाँ पर वह उसको पढ़ता एवं समझाता है। जैसा उसने कहा है, मैं प्रेरक हूँ तथा उसने इस प्रकार मेरे उप-देशों को तुम्हारे लाभार्थ संक्षिप्त किया है। "एकम् सत्यम् विमलम् अचलम्" —एक ही सत्य विशुद्ध एवं अविचल है—ऐसा कहा जाता है। तिरुमलाचार ने इसे अपने पात्र में एकत्र किया है तथा वे इसको तुम्हें दे रहे हैं।

निश्चय ही, परमात्मा के रहस्य का कोई उद्घाटन नहीं कर सकता है। विश्वामित्र भी, जो दशरथ के पास पहुँचे तथा उन दोनों बालकों की ईश्वरीय

अवतार रूप में प्रशंसा करते हुए माँग की; किन्तु समयोपरान्त उस तथ्य को वे भूल गये तथा उन्हें साधारण शिष्यों के रूप में मन्त्र सिखाने का उन्होंने साहस किया ! उनको यह गर्व था कि जिसे भगवान् ने अहिल्योद्धार किया तथा अभिशाप से उसे मुक्त किया, वही उनके शिष्य थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में गव घोर पापों में से हैं।

यदि तुम यह घमण्ड करते हो कि तुम हरि के भक्त हो, तो वह तुम्हारा विनाश कर देंगे—इसे स्मरण रखो। शरणंगति का भाव लक्ष्मण की मनोवृत्ति के समान होनी चाहिये। राम ने कहा, "सीता को ले जाओ तथा इसे जंगल में छोड़ आओ।" निर्विवाद आज्ञापालन ! वहाँ क्यों नहीं है। यही लक्ष्मण है। यही शरणंगति है तथा शेष तो 'शरगति' राम के बाणों के ही पात्र हैं।

शरणंगति की यह शिक्षा—वास्तविक गीता है - आस्तिकता की वृद्धि करो, धर्म के पथ पर चलो, व्यामोह एवं अज्ञान से छुटकारा पाओ, चित्रवृत्ति —मन की क्रियाओं को शुद्ध करो तथा यह समझो कि वह आत्मन् है तथा तुम भी आत्मन् हो।

३०. सत्य साई गीता

(II)

(प्रशान्तिनिलयम् दि० २८-९-६०)

यदि तुम कृष्ण को ग्वाला मात्र मानते हो, अन्य व्यक्तियों के समान एक सांसारिक व्यक्ति, तब तुम्हारे लिये वे केवल एक चरवाहे हैं। तुम भी उसी स्थिति तक पहुँच सकोगे। इसको तुम्हें यौगिक विचार से मानना है कि गोपाल में 'गो' का अर्थ है 'जीवि'। इसलिये गोपाल का अर्थ है "वह जो जीवि की रक्षा करता है, पथ प्रदर्शन करता है, खिलाता एवं पालता है।" अर्थात्—"वह जो प्राणियों का रक्षक एवं पोषक है।" तुमने अवश्य ध्यान दिया होगा कि उद्धव कृष्ण को अपना गुरु मानते थे। इसलिये, सखा या मित्र मानने वाले अर्जुन की अपेक्षा वे अधिक लाभान्वित हुए। यदि तुममें यह विश्वास है कि वे परमात्मा हैं, तो वे तुम्हारे लिये परमात्मा रहेंगे; यदि तुम उन्हें केवल एक 'मानव' समझते हो तो वे वही अभिनय करते हैं तथा तुम्हारे लिये निरर्थक हो जाते हैं। हृदय से उसे ढूँढो; बाहरी नेत्रों से नहीं। उच्चतम् शक्ति को उच्चतम दशा में ही प्राप्त करना है; निम्नतर दशा में नहीं। तुम अवश्य पाओगे, यदि तुम्हारी आंखें उसे देखने के लिये तथा ज्ञान उसे समझने के लिये ठीक है।

भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की पूजा की विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं तथा पूजन की सामग्रियाँ भी। विष्णु, शम्भु, शारदा, अल्ला—ये सब एक अनसुलझे रहस्य, अथाह, अनन्त एवं अपरिमेय की मानवीय समझ की अनेकानेक डिग्रियाँ है। तुम्हें भिन्नत्व नहीं प्राप्त करना चाहिये, परन्तु ऐक्य प्राप्त करना चाहिये। उच्चतर एवं निम्नतर के झगड़ों में नहीं पड़ो। एक ही व्यक्ति जब भिन्न-भिन्न उपाधियों से सम्मानित किया जाता है, तो तुम्हें उपाधि की श्रेष्ठता या हीनता पर क्यों झगड़ना चाहिये ? उसके सम्पूर्ण महिमा के लिये वे सभी तुच्छ हैं।

'सत्यम्' एवं 'नित्यम्' को प्राप्त करने एवं बनने के लिये तुम्हारा प्रयास होना चाहिये।

सत्यम् वह है जो अतीत, वर्तमान एवं भविष्य में एक ही बना रहता है, जो जागृति, स्वप्न एवं गहरी सुषुप्ति की दशाओं में भी एक ही रहता है तथा जो तमोगुण, रजोगुण एवं सत्वगुण से अप्रभावित रहता है। पुनः नामी से नाम महत्तर है, क्योंकि नामी अदृश्य या विलीन हो सकता है, किन्तु नाम चालू रहेगा तथा नामी के स्वरूप को उत्पन्न करेगा।

भगवान् की खोज में तुम्हें स्वयं को निःशक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह दूध में नवनीत के समान है, अण्डे में मुर्गी के बच्चे के समान है तथा सृष्टि के प्रत्येक अणु में व्याप्त है। वह न कहीं से आता है, न कहीं जाता है। वहाँ, यहाँ सर्वत्र वह है। अणु से स्थूल तक, सूक्ष्म से विराट तक—वही सब कुछ है।

इस भव्य सत्य को प्राप्त करने के लिये साधना या कर्म की आवश्यकता है। यही कर्मयोग है। इस उद्देश्य से कृत कर्म,—'कर्मसु कौशलम्'—बुद्धिमत्ता-पूर्वक किया गया कर्म ही कर्मयोग है। एक करोड़पति के अनेकानेक सवारियाँ —'कोर', 'कोचे'—'गाडियाँ' आदि अधिक संख्या में हो सकती हैं, किन्तु उसके स्वास्थ्य हेतु डाक्टर उसको प्रतिदिन प्रातःकाल एक मील पैदल चलने की परामर्श देता है। अन्यथा, वह बीमार पड़ जायेगा। उसी प्रकार अज्ञान—मूर्खता के रोग—को दूर करने के लिये हर व्यक्ति को कर्म-धर्म-संचालित कर्म करना है। दीपक में तेल पूर्व जन्मों के कर्मों से निकली हुई चर्बी है। लौ जितनी शक्तिशाली है, उतना ही अधिक जगमगाता प्रकाश है तथा तेल शीघ्रतर समाप्त हो जाता है। उसी प्रकार, शक्तिशाली कर्म करो तथा अतीत के कर्मों के प्रभाव को समाप्त कर दो। इस प्रकार, अपने गर्दन में चारों ओर लटकते भार से छुटकारा पा जाओगे।

कर्म द्वारा प्रदत्त फल में आनन्द की अपेक्षा कर्म करने में अधिक आनन्द है। तीर्थयात्री जिस मन्दिर पर पहुँचता है, उस मन्दिर की यथार्थ अनुभव की अपेक्षा तीर्थयात्रा प्रायः अधिक आनन्दायक होती है। गीता में यह उल्लेख किया गया है कि तुम्हें कर्म के फल की चिन्ता नहीं करनी चाहिये; किन्तु, अब, मैं कहता हूँ कि तुम अपने कर्मों के फल का कुछ सीमित मात्रा तक महत्त्व कर सकते हो। उस काल में व्याप्त परिस्थियियों के एवं अर्जुन को पीड़ा पहुंचाने वाली भ्राँति के अनुरूप वह परामर्ष दी गई थी। चूंकि यह तुम्हारे आनन्द का संवर्धन करेगी तथा तुम्हारी साधना का को महत्तर शक्ति प्रदान करेगी। मैं अब कहता हूं कि जहां तक साधन सम्बन्ध है, तुम आनन्द पर जो अन्ततः तुम प्राप्त करोगे, एक पैनी दृष्टि रखकर यह काम कर सकते हो।

मारकण्डेय संस्कृत विद्यालय के प्रधानाचार्य ने अभी कहा कि राजा जनक के समान कुछ 'कर्मशेष' के परिणाम स्वरूप मैंने जन्म लिया है। मेरा कोई भी शेष कर्म नहीं है जिसे पूरा करने के लिये मैं यहाँ अवतरित हुआ हूँ। जैसा पहले ही गीता में उल्लेख किया गया है मैं कर्म से अप्रभावित हूँ। मानव जाति से सम्पर्क बनाने एवं उसकी रक्षा करने के उद्देश्य से महाशक्ति मायाशक्ति के लबादे को धारण कर लेती है। मेरी कोई कामना नहीं है। इसलिये बन्धन करने वाला कोई कर्म नहीं है। यह केवल तुम लोग ही हो जिनकी कामनायें, उद्देश्य एवं इच्छायें हैं जो तुम्हें अनेकानेक पथों पर घसीटती हैं। मेरे लिये, तुम्हारा आनन्द ही मेरा भोजन है तथा तुम्हारी उमंग ही वह झूला है जिस पर मैं बैठता हूँ। तुम्हारी क्रिया ही मेरा क्रीड़ाक्षेत्र है।

कर्म तीन प्रकार के हैं : सहजकर्म जो स्वाँस लेने के समान है तथा जिसे जाने-अनजाने करना पड़ता है; विकर्म जो जलते हुए दीपक में बत्ती एवं तेल के संयोग के समान है तथा जो सोद्देश्य किया जाता है ; एवं अकर्म, जो उस दीपक के समान है जिसमें न तेल है, न वत्ती है, इसलिये, उसमें कोई ज्वलन नहीं है। प्राणायाम एवं योग का स्वाँस के समान स्वाभाविक एवं स्वतः होना आवश्यक है। साधना का यही साराँश है—यही सहज-साधना की स्थिति है।

बचपन से ही नाम लेना, प्रार्थना करना एवं मौन का अभ्यास करना सीखो। बालक परमेश्वर के कला-कौशल के सौन्दर्य एवं शान का ध्यान करें तथा रहस्य एवं विस्मय की भावना से भरित हों। पुट्टापर्ती के साई बाबा जो देते हैं उसको न गिनो और न हिसाब लगाओ। तुम्हें अपनी ओर आकृष्ट करने के लिये मैं नहीं देता हूँ। तुम्हें आनन्द से परिपूर्ण करने के हेतु मात्र मैं देता हूँ। आनन्द बरसाना—यही मेरा कर्म है। मैं नहीं चाहता हूँ कि तुम मेरी प्रशंसा करो : मैं सन्तुष्ट रहूँगा यदि तुम मुझ पर भरोसा करो।

रहस्यमयी एवं अवर्णनीय दैवी शक्ति मेरे आधीन है। यह स्वयं किसी कर्म में निष्फल कभी नहीं लीन होगी। मैं आँसू पैदा करता हूँ तथा आँसू पोंछता हूँ—किसी ने गाया है। हाँ, तुम्हारी आँखों में मैं आनन्द के आँसू पैदा करता हूँ तथा शोक के आँसुओं को मिटाता हूँ। कहा जाता है कि लोगों को पागल बनाता हूँ तथा पागलपन को अच्छा भी करता हूँ। हाँ, मैं उनको ईश्वर के लिये पागल बनाता हूँ तथा उसके लिये आवश्यक साधना के निमित्त भी। मैं उस पागलपन को अच्छा करता हूं जो लोगों को नश्वर सुखों के पीछे उन्मत्त हो कर दौड़ाता है तथा उन्हें आनन्द एवं शोक के चक्करों में गिराता है।

कुछ लोगों ने अज्ञानवश यह कहा है कि मैं किसी समय ईश्वर रहता हूँ तथा तत्पश्चात् मानव बन जाता हूँ। उनका कहना है कि मैं दैवत्वम् एवं मनवत्वम् के मध्य में बदलता रहता हूँ। इस पर विश्वास मत करो क्योंकि मैं सदैव एक ही में 'त्वम' या 'तू' रहता हूँ। भगवान् के मूलभूत तत्व में परिवर्तन कभी नहीं होगा; केवल वाह्य रूप में परिवर्तन हो सकता है, किन्तु सार या तत्व एक ही रहेगा। उसके मूल्य में कोई कमी नहीं होगी; जैसा कभी मानव हो जाना आदि। असीम प्रेम एवं निर्मल माधुर्य के द्वारा भगवान् की विशिष्टता होगी।

मनुष्य को दो कर्त्तव्यों को पूरा करना है : एक इस संसार के निमित्त धर्म मार्ग तथा दूसरा शाश्वत मोक्ष के लिये ब्रह्ममार्ग पार करना है। धर्म

मार्ग बाम हाथ है, इसलिये इसको छोड़ सकते हैं; फल के पक जाने पर यह स्वयं छूट जाता है। यही कारण है कि इसे बायाँ या 'लेफ्ट' कहते हैं। इसे त्याग दो तथा इस पर शोक न करो। किन्तु, दाहिने हाथ को—ब्रह्म मार्ग को पकड़े रहो, क्योंकि यह 'सही' है कि तुम्हें ऐसा करना चाहिये।

अन्ततोगत्वा, तुम यह अवश्य जाने रहो कि भगवान् के सम्पर्क में आने का जो अवसर तुमने इस जीवन में प्राप्त किया है, उसका किस प्रकार उपयोग करना है। दीपक प्रकाश फैलाता है, किन्तु इसको भिन्न-भिन्न कामों में अच्छे और बुरे कामों में लाया जा सकता है। गंगा पवित्र है किन्तु इसका जल अच्छे एवं बुरे उद्देश्यों के लिये काम में लाया जाता है। इस अवसर का उपयोग तुम कैसे करते हो, यह तुम्हारी नियति एवं भाग्य पर निर्भर करती है तथा ईश्वरी अनुकम्पा के परिमाण पर भी जो तुम प्राप्त कर सकते हो। विश्वास बढ़ाओ एवं भक्ति को शक्तिशाली बनाओ। तब हर चीज अनुगमन करेगी। राम 'सत्यम्' के प्रतिनिधि थे। कृष्ण प्रेम के गवं बुद्ध कर्म के। अब, यह अवतार चारों—सत्य, धर्म, शान्ति एवं प्रेम—का प्रतिनिधि है। सत्य ही धर्म है तथा प्रेम ही शान्ति प्रदान करता है। मैं तुमको आदेश देता हूँ : दूसरे से घृणा कभी नहीं करो, उनकी बुराई कभी न चाहो या उनके प्रति बुरी धारणा मत करो। केवल तभी, शान्तस्वरूपम् को तुम प्राप्त कर सकते हो।

केवल परमेश्वर ही योजना से परिचित है, क्योंकि योजना उसी की है। तुम लीला का एक अंश ही रंगमंच पर देखते हो। इसलिये, यह सब अत्यन्त अस्पष्ट या गड़बड़ है। जब समस्त कथा खुल जायेगी, तब उसकी योजना की तुम प्रशंसा करोगे और जब तक नहीं खुलेगी तब तक नहीं करोगे। तदर्थ, तुम माया के परदे के पृष्ठ में अवश्य पहुँचो तथा स्वयं निर्देशक से भेंट करो। रंगमंच पर तुम अपने अभिनय का पार्ट करते हुए एक अभिनेता हो, तब तक समस्त नाटक के आन्तरिक अर्थ को तुम नहीं समझ सकते हो। इस नाटक के रंगमंच रूप में संसार है तथा युग ही उसकी अवधि है।

यदि अपना अभिनय भलीप्रकार करते हुए, सहअभिनेताओं के प्रति तुम प्रेम विकसित करते हो, तो वह परमेश्वर की भक्ति की अपेक्षा अधिक महत्त्व-पूर्ण है। शान्ति प्राप्त कर लेना ज्ञान की अपेक्षा अधिक मूल्यवान सफलता है; क्योंकि भक्ति ही प्रेम का बीज है तथा शान्ति का बीज ज्ञान है। कम से कम भक्तगण ऐसा व्यवहार करें मानों वे एक ही परिवार के हैं। परस्पर सहयोग के लिये भक्ति एव साधना में जो अवसर भाग्यवश इस समय प्राप्य है उसे पकड़ो।

मुझे अस्वीकृत करने पर भी तुम मेरे भण्डार हो। मैं तुम्हारा भण्डार हूँ, चाहे तुम 'नहीं' कहते हो। मैं तुमसे स्नेह करूँगा तथा तुमसे मैं स्वयं को संयुक्त करूँगा—अपने अधिकार में अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिये मैं सभी कष्टों को झेलूँगा। अर्थात्,—चाहे जिस भी नाम से तुम उसे पुकार सकते हो, वह भगवान् के अधिकार में है। मैं तुम्हारे लिये सभी शक्तियाँ हूँ। मैं भण्डार रक्षक के समान हूँ तथा उन्हें सदैव तैयार रखता हूँ कि जब कभी तुम माँगोगे तब तुम्हें दी जाये। तुम्हारे न माँगने पर भी मेरा प्रेम तुम्हें प्रदान किया जायेगा; क्योंकि उसमें अंश पाना तुम्हारा अधिकार है। कुछ लोग शिकायत करते हैं मैंने उन्हें यह या वह वस्तु नहीं दी। किन्तु उनकी दृष्टि तत्काल भविष्य या वर्तमान पर सीमित होने के कारण ही यह होता है। इसके विपरीत, में जानता हूँ कि भण्डार में क्या है। इसलिये, मुझे उन व्यक्तियों को महत्तर शोक से बचाना रहता है। तिस पर भी वे मुझे गालियाँ देते हैं तथा दोष मढ़ते हैं; किन्तु मैं उनका परित्याग रहीं करूंगा। स्मरण रखो, मैं किसी से प्रभावित नहीं होता हूँ। कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो मेरे पथ को या मेरे आचरण को रंचमात्र भी प्रभावित कर सकता है। मैं सब पर स्वामी हूँ।

किन्तु तुमसे मैं एक बात कहूँ। मैं कुछ व्यक्तियों से कठोर बोलता हूँ तथा उन्हे दण्ड देता हूँ; क्योंकि उनके प्रति मुझे प्रेम है तथा उनको सुधारने के लिये तथा उन्हें उत्तम साधन बनाने के लिये मैं इच्छुक हूँ। यदि वे मेरे न होते, तो

मैंने उनको त्याग दिया होता तथा उनके दोषों पर ध्यान देने की परवाह भी नहीं करता। जिनको मैं अपना समझता हूँ, उन्हें दण्ड देना मैं अपना अधिकार समझता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि वे अब भी मेरी वाणी की कीमत करते हैं तथा यदि मैं उनसे अप्रसन्न हो जाऊँ तो वे दुःखी होंगे। अपने घुमक्कड़ मन के कारण तुम कुछ मूर्खों के दायित्वहीन शब्दों द्वारा मुझसे सरलता से दूर हट जाते हो। कभी-कभी मैं ऐसा कार्य करता हूँ मानों मैं तुमको दूर रखता हूँ। तुम्हें शीघ्रतर सुधारने के लिये यह किया जाता है। जब सड़क का कुछ अंश सुधारा जाता है तब मैं दूसरे रास्ते से जाता हूँ तथा सड़क के उस भाग को कुछ समय तक इस्तेमाल नहीं करता हूँ। इसका उद्देश्य यह है कि सुधारने का कार्य अधिक तीव्रता से बढ़े ताकि मैं उस सड़क को पुनः काम में ला सकूं।

मैं संसार को ठीक करने के लिये अवतीर्ण हुआ हूँ। इसलिये, जितने लोग बीमार हैं उन्हें एकत्र करने एवं अपने अस्पताल में दवा करने के लिये, उन्हें पुनः विचार शक्ति एवं विवेक से सम्पन्न करने के लिये तथा उन्हें जीवन में उनके स्थानों पर वापस भेजने के लिये आया हूँ। तुम्हारी भक्ति को मैं अवश्य गहन बनाऊँ, तुम्हारे विश्वास को शक्तिशाली बनाऊँ तथा नैतिक स्वभाव की नींव का पुनर्निर्माण करूँ ताकि तुम अधिक शक्ति के साथ लोभ का प्रतिरोध कर सको! उन लोगों से मैं मिला हूँ जो प्रार्थना करते हैं, तथा जो यह विश्वास करते हैं कि अपनी प्रार्थना के प्रत्येक अवसर में वे संसार को शान्ति के निकट ला रहे हैं। किन्तु केवल कठिन मार्ग से ही—व्यक्तियों के हृदयों से हिंसा एवं लालच को बाहर निकालने से ही शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

ऐसे भी मामले हैं कि जब पुट्टापर्ति का कोई ग्रामीण ज्वर से पीड़ित होता है और असाध्य होने तक वह सब तरह की झूठी दवायें करता है। तब वह डाक्टर के पास एवं दवाखाने पर बुक्कापट्टनम, अनन्तपुर चिक्काबल्लापुर एवं बेल्लौर तक दौड़ लगाता है तथा कर्ज में अपनी जमीन भी बेचने को बाध्य हो जाता है। यदि वह पहले ही योग्य डाक्टर की दवा किया होता तो इन सबसे

वह बच गया होता। इसलिये ऐसे गुरुओं के पास न दौड़ो जो दूषित दृष्टि से एवं गृहस्थी के कष्टों से पीड़ित हैं; उन लोगों से याचना नहीं करो जो स्वयं याचक हैं। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में एक दूसरे के मध्य सभी दर्द एवं प्रतिद्वन्द्विता का परित्याग करो। हर एक व्यक्ति को अपने ही कदमों पर चलने दो; केवल दिशा एवं पथ ईश्वरोन्मुख होना चाहिये।

३१. सत्य साईं गीता

III

(प्रशान्तिनिलयम दिनाङ्क २९-९-६०)

एक बार विदुर ने श्रीकृष्ण से पूछा, "कुरुक्षेत्र के युद्ध में लाखों सैनिकों के संहार में आप ने किस प्रकार भाग लिया ? आप उन सब हत्याओं को बचा सकते थे तथा कौरव पक्ष के मुख्य भाग लेने वालों, दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि, एवं कर्ण, के मानसिक दृष्टिकोणों को केवल परिवर्तित करके आप स्वयं को अनेक चिन्ताओं से रक्षा कर सकते थे।" किन्तु कृष्ण ने उत्तर दिया, "मेरे प्यारे, मैंने प्रत्येक को कुछ गुण एवं शक्ति प्रदान किया है तथा मैंने हर एक को, जैसा वे सर्वोत्तम समझें, उन शक्तियों का उपयोग करने के लिए कुछ मात्रा में स्वातन्त्रय भी प्रदान किया है। इस प्रकार कार्य करते हुए ही लोग अधिक उत्तम शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।" कुछ लड़खड़ाते कदम रखने के उपरान्त ही बालक के कदम निश्चित एवं दृढ़ हो जाते हैं। कठोरतम होने पर भी, अनुभव सर्वोत्तम पाठशाला है। चाहे जितना भी तुम कहो कि अग्नि जलाती है, जब तक तुम अपनी अंगुलियों को वस्तुतः नहीं जलाते हो, तुम न तो विश्वास करोगे तथा न जान सकोगे ज्वलन क्या वस्तु है।

इसलिये, तुम्हें कार्य की कुछ स्वतन्त्रता है। किसी पेड़ से रस्सी में बँधी गाय रस्सी की लम्बाई के अर्धव्यास में चारों ओर घूम सकती है तथा उस स्थान में उगने वाली घास को चर सकती है। यहाँ तक कि परीक्षा में दिया गया प्रश्न पत्र भी तुम से "कोई छः प्रश्नों" का उत्तर देने के लिये कहता है। तुम प्रायः कहते हो, "हर वस्तु बाबा का संकल्प है।", तब तुम क्यों आते एवं पूछते हो इसके या उसके लिये इच्छा या योजना के लिये ? तुम्हें प्रदत्त बुद्धि तथा कल्पना का तुम सर्वोत्तम उद्देश्य के लिये उपयोग करो तब दाता और

अधिक देने के लिये प्रसन्न हो जायेगा। इसके विपरीत, यदि तुम बुद्धि का दुरुपयोग करते हो तथा कल्पना को ही अपना स्वामी बना देते हो, तब स्वभावतः दाता क्रोध से उत्तेजित हो जायेगा तथा तुम्हें शिक्षा देने के लिये वह तुमको अवश्य दण्ड देगा।

मैं हर समय तुमसे एक ही परामर्श बार-बार कहता हूँ तथा कभी-कभी तुम्हारे मन में यह भावना हो जाती है कि कहने के लिये अत्यल्प बातें मेरे पास हैं। अच्छा, माँ बालक से एक ही निर्देश प्रायः बारम्बार दुहराती है, जब तक बालक उसे सीख नहीं लेता तथा तदनुसार काम नहीं करने लगता है। वेद-माता एवं गीतामाता एक ही सत्य को बारम्बार दुहराती हैं; किन्तु विभिन्न सन्दर्भों एवं कल्पनाओं में सभी माताओं का यही लक्षण है—बालकों को सुधारने की एवं उनको प्रगति के पथ पर संचालित करने की परमोत्कृष्ट कामना।

तिरुमलाचार ने आज भक्तियोग के सर्ग को पढ़ा तथा उन्होंने भक्ति के नव रूपों के विषय में कहा, जिसके विषय में मैं भी साधारणतया कहा करता हूँ, श्रवणम्, कीर्तनम्, स्मरणम्, वन्दनम् पादसेवनम्, अर्चनम्, दास्यम्, सख्यम् एवं आत्मनिवेदनम्। इन सभी रूपों में प्रेम ही अनिवार्य अंश है। यह प्रेम ही स्पन्दन करता है तथा मन को हर्ष एवं आशा से परिपूर्ण करता है। पोतन, नन्दनार, जयदेव, गौराङ्ग, तुकाराम, मीरा, पुरन्दरदास, त्यागराज तथा अन्य भगवान् के विचार मात्र से ही अत्यधिक गद्‌गद् हो जाते थे, क्योंकि उनमें प्रेम अत्यधिक निर्मल एवं पराभवकारी रूप में था।

कतिपय व्यक्ति इन सब भजनों का उपहास कर सकते हैं तथा इसे केवल प्रदर्शन एवं दिखावा कह सकते हैं तथा इसके बदले में पूजाघर के शान्त स्थल में मौन ध्यान की संस्तुति कर सकते हैं। किन्तु एक समूह में आने एवं इस प्रकार भजन करने से अहंकार के निवारण में मदद मिलती है। कोई उपहास का भय नहीं करता है, न भगवान् का नाम लेने में लज्जा करता है; बल्कि दूसरों की भक्ति से उत्साहित होता है तथा सजातीय भावनाओं सहित मनुष्य

का साथ नन्हें से अंकुर को हँसी ठठ्ठा की उत्तप्तता से दग्ध होने से बचाकर बढ़ने में सहायता करता है। जब कोई व्यक्ति नहीं देख रहा है, तब कोई भी अपने कक्ष को झाड़ू से साफ कर सकता है किन्तु जब लोग देख रहे हों, तो वह काम करना आत्मसम्मान के विपरीत समझा जाता है तथा अहंकार पर कुछ प्रभुत्व की आवश्यकता होती है।

माता-पिता के प्रति उन्मुख प्रेम को पितृरस, मित्रोन्मुख प्रेम को सखाभाव, जीवनसंगी के प्रति प्रेम को राग, गुरुजनों के प्रति प्रेम को आदरभाव, बालकों के प्रति प्रेम को स्नेह या वात्सल्य कहते हैं। भक्ति तुम्हारी क्रियाओं को तीन रूपों में प्रभावित करती है : तुम अपने प्रेम को प्रदर्शित करने के लिए या अपने को जीवित रखने वाले प्रेम को जब प्रगट करना चाहते हो तो कोई काम तुम चेतनापूर्वक करते हो। दूसरे, भगवान् की महिमा को बढ़ाने के लिये तुम कोई काम निष्ठापूर्वक भेंट के रूप में पूजाभाव से पूर्ण विनम्रता की भावना से करते हो। मानो, तुम अपना सर्वस्व उसके चरणों पर अपनी पूर्ण सामर्थ्यानुसार न्यौछावर करते हो। तीसरे, तुम ऐसे कार्य करते हो जो सभी के प्रति प्रेम से पूर्ण होते हैं, तथा वे तुम्हारे अस्तित्व मात्र के अंश रूप हैं। वे स्वतः स्वार्थ के रंग से या हिंसा की फूंक से रहित होते हैं तथा कार्य के सौरभ को अस्त-व्यस्त नहीं करते हैं। निष्ठापूर्ण कार्य समस्त कार्य को समर्पण रूप प्रदान करता है तथा आनन्द तुम्हें यह अनुभव कराता है कि तुम्हारे प्रयत्न प्रशंसा के योग्य हैं। यही लक्ष्य है, यही उद्देश्य है तथा यही प्रेरणा है।

तुम हमें आनन्द किस प्रकार देते हो ? जो कुछ मैं कहता हूँ, उसे हृदय में धारण करके एवं आचरण में अपना करके। तुम उच्च वर्ग से मिलने का निर्णय करते हो किन्तु निम्नतर भावों या वस्तुओं से आकृष्ट होकर स्वयं को धोखा देते हो ! तुम अपने चरित्र एवं व्यवहार को सुधारो। जब तुम्हारी भावनायें साफ हो जायेंगी तथा तुम्हारे संवेग निर्मल हो जायेंगे, तब तुम मेरे स्वरूप को इसकी यथार्थता में देख सकते हो। मैं तुमसे संक्षेप में कहूँगा : मुझे समझने वाली बुद्धि को कुटिलाई से मुक्त करो तथा इसे सीधी एवं तीव्र बनने दो।

जो भण्डार तुम ढूँढ़ रहे थे, वही मैं हूँ और तुम्हारी पकड़ में आ गया हूँ; क्योंकि हमारा सम्बन्ध आणविक है, धर्मनिरपेक्षता या प्रशिक्षा का नहीं। अन्य स्थलों में तुम्हारे बाल मुंड़ जाते है; क्योंकि वहाँ सम्बन्ध धन से है। अन्य स्थलों में जहाँ वर्ण पर या पाण्डित्य पर या किसी आकस्मिक विशेषता पर सम्बन्ध आश्रित है। यहाँ पर, यह मोह है जो नर के लिये नारायण में है— सोते के लिये महासागर, व्यष्टि के लिये समष्टि। यहाँ, प्रत्येक असीम बन जाये तथा उन बन्धनों से बचे जो उसे ससीम बनाते हैं।

सभी वह बन सकते हैं; क्योंकि ईश्वरीय प्रेम के बाहर कोई नहीं है। माँ अट्ठारह वर्ष के बालक को रसोईघर में जाने के लिए तथा अपने सामने एक तश्तरी रखकर, चावल, कढ़ी आदि अपने लिये स्वयं परोसने को तथा खाने को आदेश देती है। माता किसी प्रकार कठोर हृदया नहीं है। वह बालक की क्षमता को जानती है तथा उससे वैसा ही व्यवहार करती है जो उससे होना चाहिए था। दूसरे लड़के के साथ वह रसोईघर तक जाती है, उसकी बगल में बैठती है तथा स्वयं भोजन परोसती है। तीसरे लड़के को वह अपनी गोद में बैठाती है तथा कई गीतों के साथ उसे खिलाती है ताकि शिशु के लिए वह उपक्रम आनन्दप्रद बन सके। यह न सोचो कि माँ पक्षपात करती है; नहीं, वह केवल अपने बालकों की उन्नति करने की क्षमता का, जो उसे ज्ञान है, प्रयोग कर रही है। मातृप्रेम का यही स्वभाव है।

ऐसे गुरु हैं जो अपने शिष्यों के प्रति भी ऐसा प्रेम नहीं रखते हैं। जब जिज्ञासु उनके पास प्रथप्रदर्शन की मांग करने जाते हैं, तब वे उनकी प्रशंसा के पुल बाँधते हैं, उनकी उपलब्धियों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हैं तथा उन्हें उपाधियाँ प्रदान करते हैं जो भाग्यहीन पीड़ितों के द्वारा प्रदर्शित की जाती है। इस प्रकार, आध्यात्मिक प्रगति में शिष्य अतिरिक्त बाधाओं से बोझिल हो जाते है। अनेकानेक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु गुरुगण धन चाहते हैं। इसलिये वे सदैव शिष्यों के खजाने पर दृष्टि रखते हैं तथा वे उपाधियाँ प्रदान करके

अथवा सार्वजनिक प्रशंसा करके अथवा सार्वजनिक मान्यता दिलाने का वचन दे करके धन ऐंठने की चेष्टा करते हैं। इन सभी सांसारिक चारों को वे सिखाते हैं एवं काम में लाते हैं जो असंगता के सिद्धान्त का अवमूल्यन करने वाले हैं। वे धन संग्रह की निन्दा करें तथा उसका जो वे दुरुपयोग करते हैं, उसके लिये उन्हें दोषी कहें। उनकी निन्दा से वे कभी नहीं चूकें। जो गुरु अपने उद्देश्य को जानता है, उसका वही लक्षण है। दूसरी ओर, ऐसे गुरु आगामी दान-दाताओं में निहित बुराई को सहन करते हैं; क्योंकि वे डरते हैं कि कोई भी निन्दा उनकी आय के स्रोत को शुष्क कर देगी। इस प्रकार शिष्यों को वह कठोर दवा, जिसकी उन्हें आध्यात्मिक स्वस्थता हेतु तुरन्त आवश्यकता है, न देकर उन्हें बरबाद करते हैं। दौलतमन्द शिष्य जों मूंड़े जा सकते हैं, के लिए शिकार करना एक दुःखपूर्ण सुखान्त नाटक हो गया है। कुछ सन्यासियों ने इसे एक सुन्दर कला के रूप में विकसित कर लिया है। ऐसे साधुओं का भण्डाभोड़ करने एवं उन्हें दण्ड देने का समय आ गया है तथा धर्मस्थापना का यह एक कार्य होगा, जिस हेतु मैं अवतरित हुआ हूँ। इन गुरुओं को भी जो दलाल बन कर, देश भर में फैले हैं; चकनाचूर कर देना है।

पुस्तकें, पत्रिकायें, सभायें, भाषण, वार्तायें—ये सब किसी काम की नहीं हैं। जो भी मुझे जानने के लिये उत्सुक हैं, उनमें से प्रत्येक को मेरे पास आने एवं मेरा अनुभव करने के लिए कहा जाये; क्योंकि एक पर्वत की धारणा प्राप्त करने के लिये, एक चट्टान दिखा देना ही एवं यह कहना, "एक पर्वत इसका लाख गुना बड़ा है" पर्याप्त नहीं है। तुम्हें एक यथार्थ पर्वत को देखना ही पड़ेगा, कम से कम कुछ दूर से ही। 'अतीत' अत्यन्त अग्राह्य है। विज्ञान 'C' अक्षर के समान है जिसके मध्य में सदैव रिक्तता रहती है तथा जिस रिक्तता की कभी पूर्ति नहीं होती है। केवल धर्म ने उस 'रिक्तता' की पूर्ति की है; क्योंकि यही उस **यथार्थता** को जानता है जो तीनों दिशाओं में, तीनों कालों में तथा तीनों भुवनों में कायम रहता है। इसलिये धर्म 'O' अक्षर के सदृश एक पूर्ण वृत्त है जो भगवान् की महिमा को तुम जितना अधिकाधिक जानोगे,

उतना ही वह बढ़ता जायेगा; किन्तु जो सदैव पूर्ण एवं अखण्ड है। इन सबके अन्त में, हम लोग पुनः प्रारम्भ पर हैं।

चमत्कार केवल उस चमत्कारिक का एक स्वाभाविक व्यवहार है। इसी कारण, मैं अक्सर तुम लोगों को इसके अनुभव करने की कृपा करता हूँ ताकि तुम लोग महिमा की झलक प्राप्त कर सको। इस नश्वर मानव शरीर में मैं ५९ वर्ष तक और रहूँगा तथा मैं इस अवतार के उद्देश्य को अवश्य प्राप्त करूंगा। इसमें सन्देह नहीं करना। जहाँ तक तुम लोगों का सम्बन्ध है मैं अपनी योजना को कर्यान्वित करने के लिये मैं अपना निजी समय लूंगा। तुम आतुरता करते हो, इस कारण में आतुरता नहीं करूंगा।

कभी-कभी मैं तब तक प्रतीक्षा करूंगा जब तक एक ही प्रयत्न में मैं दस चीजे न प्राप्त कर लूं। जैसे, एक इंजन का प्रयोग एक गाड़ी को खींचने के लिये नहीं किया जाता है; किन्तु उसकी शक्ति के अनुरूप जब तक पर्याप्त खिचाव तैयार नहीं होता तब तक प्रतीक्षा की जाती है। किन्तु मेरी वाणी कभी असफल नहीं होगी, मेरे संकल्प करते ही यह अवश्य घटित होगी।

●

३२. सत्य साई गीता

IV

(प्रशान्तिनिलयम, दिनांक ३०-९-७०)

आज तिरुमलाचार ने स्वरचित सत्य साई गीता के ज्ञानयोग खण्ड को पढ़ा तथा उसकी व्याख्या की। कोई भी व्यक्ति यह नहीं बता सकता कि सृष्टि की उस पदार्थ के ब्रह्मन् की यथार्थ प्रकृति क्या है। एक वैज्ञानिक सिद्धान्तः रहस्यपूर्ण ब्रह्माण्ड के सम्मुख यह अनुभव करता है कि वह अवश्यमेव अनन्त आदिरहित है एवं असीम है तथा इसे वह स्वीकार करता है, यद्यपि उस प्रकार के ब्रह्माण्ड की सच्ची तस्वीर नहीं बना सकता है।

अर्थात्, वह भी विश्वास पर ही काम करता है तथा वह कुछ ऐसी वस्तु में विश्वास करता है जिसे वह पूर्णतया समझ नहीं सकता है, या स्पष्टतः निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है या यथार्थ गणना नहीं कर सकता है। यथार्थ को केवल नीति के माप से चिह्नांकित कर सकते हैं। ब्रह्मन् 'नेति', नेति—यह नहीं यह नहीं—निषेध निष्कासन की प्रणाली से स्थित एवं वर्णित किया जाता है। इस कृत्रिम संसार में सभी नाम एवं रूप के कृत्रिम मिश्रण हैं तथा वे दोनों नाम एवं रूप भी कृत्रिम हैं। यह विश्वास धारण करना कि यह रचित संसार मिथ्या है। सत्य एवं असत्य का एक संम्मिश्रण है। सचमुच बहुत कठिन है। जब तुम्हारा सिर एक दीवाल से टकरा जाता है, तब यह विश्वास करना कठिन है कि दीवाल अर्धमिथ्या है कि नाम एवं रूप भ्रान्त कल्पना की कहानी है तथा इसकी वास्तविक सत्यता आधारभूत ब्रह्मन् है।

किन्तु, इस ज्ञान को हर एक व्यक्ति को किसी दिन या दूसरे दिन प्राप्त करना है। यह भक्ति, कर्मयोग या राजयोग द्वारा प्राप्त की जा सकती

है। नवनीत प्राप्त करने के लिये, जो दूध में व्याप्त है, यह दूध मंथन की एक प्रणाली के भिन्न-भिन्न नाम हैं। एक बार नवनीत निकलने एवं उसके गोले बनाने पर इसे पृथक् एवं तरल तत्व से जिसमें वह हर समय था, असंयुक्त रखा जा सकता है। उसी प्रकार, ज्ञानी भी, एक बार यह अनुभूति कर लेने पर कि वह उसी सार का है जिसका व्याप्त ब्रह्मन् है, मोह से मुक्त होकर संसार में रह सकता है। उस ब्रह्मन् को माया के द्वारा देखने पर, सगुण के रूप में प्रतीत होता है या भगवान् या स्वामी कहा जाता है।

भगवान् की सात मुख्य विशेषतायें हैं—ऐश्वर्य, कीर्ति, ज्ञान, वैराग्य, सृष्टि, स्थिति, एवं लय। जिसमें भी ये सातों गुण हैं, उसे तुम ईश्वरता से पूर्ण मान सकते हो। ऐश्वर्य, कीर्ति, ज्ञान, वैराज्ञ, रचना, पालन एवं संहार—ये सात महाशक्ति के अवतार की अनिवार्य विशेषतायें हैं तथा वह अवतार पूर्णतया कार्य करता रहता है, क्योंकि उसने महाशक्ति के साथ स्वयं को प्रत्यक्षतः संशोधित कर लिया है। जहाँ कहीं भी ये विशेषतायें पायी जायें, वहाँ तुम ईश्वरता को पहचान सकते हो।

तुम भी उसी स्वभाव के हो जैसे महाशक्ति के सहित आत्मा, किन्तु डाकुओं की गुफा में पड़े हुये, तथा वहाँ बढ़ते हुये राजकुमार के समान, आत्मा अपने सच्ची पहचान को नहीं जान सका—यही सब कुछ है। यद्यपि, उसे ज्ञात नहीं है, तिसपर भी वह राजकुमार है ही, चाहे वह राजमहल में है, या जंगल में है या डाकुओं की गुफा में है। अतिप्राय, राजकुमार अपने यथार्थ स्तर की सूचनायें आवश्य प्राप्त किया है, आनन्द. जो उसकी वास्तविक पैतृकसम्पत्ति है, के लिये उत्कट इच्छा करता है, उसकी अन्तरात्मा से भाग निकलने एवं अपने ऊपर निर्भर करने की पुकार होती है। आत्मा की यही 'भूख' है तथा चिरानन्द हेतु प्यास है। तुम उस आदमी के समान हो जो अपना नाम भूल गया है। मन की भूख ज्ञान प्राप्ति के द्वारा ही शान्त की जा सकती है।

मन एक गोरखा पहरी के सदृश है तथा स्वामी को उस पर पूर्ण नियन्त्रण रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, स्वामी के मित्रों को ही गोरखा महल के भीतर प्रवेश करने देगा। क्या यह बात नहीं है! इसलिये, स्वामी के कल्याणार्थ शुभ विचारों एवं भावनाओं को ही मन द्वारा सहन किया जाना चाहिये। 'मनुष्य' में मानस ही प्रधान वस्तु है, किन्तु इसके स्थान को धीरे-धीरे कम करना है तथा इसे पूर्ण अधिकार लेने की अनुमति नहीं देनी चाहिये। दुरित वासनाओं एवं अयोग्य योजनाओं से मन का पेट नहीं भरना चाहिये किन्तु इसे शक्तिदायक विचार एवं साहस प्रदान करना चाहिये। जब मन पृथक् कर दिया जाता है, तब ज्ञान अपने पूर्ण वैभव के साथ चमकता है। 'सर्वंब्रह्मात्मकम्' की अनुभूति के अनन्तर, अर्थात् यह अनुभव करने के पश्चात् कि प्रत्येक वस्तु मूलतः एवं पूर्णतः ब्रह्मन् है, इक्कीस दिनों से अधिक प्राण को जीवित नहीं रखा जा सकता है! ऐसा व्यक्ति, मिथ्या लोक या सापेक्षिक संसार में नहीं रह जाता है। इसलिये, उसमें कोई इच्छा या क्रिया शेष नहीं रह जाती है। भोजन-पानी भी उसके लिये अर्थहीन हो जाता है। ब्रह्मन् को ब्रह्मन् की आवश्यकता किस प्रकार होगी तथा ब्रह्मन को ब्रह्म भोजन एवं पानी के रूप में कैसे मानेगा? सभी 'नट' एवं बोल्ट गिर पड़ेंगे, हृदय शुष्क हो जायेगा तथा शरीर निर्जीव हो जायेगा।

साधना केवल शीशे को आत्मा के सामने रखती है, स्वच्छ एवं पॉलिश होने पर शीशा आत्मा को प्रकट करता है तथा यही आत्म साक्षात्कार है। सबमें आसविक समता होती है, तथा सबका सत्य एक ही होता है। किसी को चोट पहुँचाओगे, तो उससे दूध नहीं निकलेगा। तुम सबमें, एक ही लाल खून बहता है।

साधुपुरुषों की संगति तुम्हें परमेश्वर के निकट ले जाती है तथा दुर्जनों की संगति तुम्हें प्रकृति के दलदल में ले जाती है। सद्पुरुषों को दुर्जनों से भिन्न कैसे समझा जाय? जप, ध्यान, योग एवं आनन्द में लीन व्यक्ति सज्जन हैं

तथा जो इन्हें नहीं पसन्द करते हैं, उनसे ज्ञान के खोजियों एवं आनन्द चाहने वालों को बचना चाहिये। यह भाव जब आता है तब तुच्छ वस्तु महान् बन जाती है, क्षणिक आनन्द अत्यन्त महत्वपूर्ण बन जाता है तथा अनाथ व्यक्ति विशाल सम्पत्ति प्राप्त करता है। सज्जन व्यक्ति कोमल होता है। वह गुरुजनों, साधुओं एवं साधकों के सामने सरलतापूर्वक झुकता है। 'नम' (मेरा-नहीं) ही नमस्कार की मनोवृत्ति है। यह वस्तुतः 'नमसकरा'—यह घोषणा कि "मैं जो कुछ हूँ तथा जो कुछ मेरा है, सब तुम्हारी कृपा के कारण है।"

अपना समय ऐसे सत्संग में व्यतीत करो। विवेक की कूचियों से अपने-अपने मस्तिष्क को स्वच्छ करो। मैं तुम्हें अपनी विवेचनात्मक शक्ति का परित्याग करने के लिये नहीं कहता हूँ। मूल्यांकन करो, छानबीन करो, अनुभव करो तथा अपने अनुभव का विश्लेषण करो। तदनन्तर, विश्वास होने पर स्वीकार करो। भक्ति, योग एवं ज्ञान—यह तीनों एक ही भवन के तीन द्वार हैं। ज्ञानी, व्यक्ति हरवस्तु को दैवी तत्व के रूप में देखता है, भक्त, हरवस्तु को भगवान् की लीला के रूप में देखता है, एवं कर्मयोगी हर वस्तु को भगवान् की सेवा के रूप में देखता है। यह सब मनोवृत्ति, अभिरुचि, एवं तर्क और भाव के विकास की स्थिति का प्रश्न है। ज्ञान के फलस्वरूप, तिरुमलाचार ने कहा, माया चली जाती है। किन्तु माया न आती है और न माया जाती है। जब इस भवन में रोशनी लाई जाती है, तुम कहते हो कि रोशनी आयी है तथा अन्धकार चला गया। किन्तु वह कहाँ गया है? बत्ती बुझा दो। अन्धकार ही रहता है। अन्धकार अकस्मात् दरवाजों से वहाँ से नहीं आता है जहाँ चला गया था और भवन को आपूर्ण कर देता है। यह वहीं पर सब समय है। यह नहीं गया था। केवल भवन को प्रकाशित किया गया तथा प्रकाश फैल गया। उसी प्रकार जब भगवत् कृपा अर्जित की जाती है, तब ज्ञान व्याप्त हो जाता है तथा पृथकता की भ्रान्ति शक्तिहीन हो जाती है।

वह ज्ञान कैसे उपार्जित हो सकता है? एक मन्द, व्यवस्थित उपक्रम के

द्वारा, अन्य साधनों को दूर करते हुए लोभ, वासना, गर्व, ईर्ष्या, घृणा एवं सम्बद्ध सहजात प्रवृत्तियों एवं संवेगों के सर्व विषधर भ्रूणों का निवारण करते हुये; जीवन को नियमित बनाने के लिये अनेक पीढ़ियों के अनुभवों के द्वारा निर्मित नियमों के समूह या धर्म के शैक्षणिक प्रभाव के द्वारा, अध्ययन, मनन या चिन्तन एवं अभ्यास के द्वारा ; जागृति, स्वप्न एवं सुषुप्ति की स्थितियों की अनुभूतियों के विश्लेषण द्वारा, इन सब चलते हुए दृश्यों के जालों में बिना फँसे, उनका साक्षी होने के ज्ञान द्वारा; विभाजित करने एवं भेद करने वाले सभी वृत्तियों की पराजय द्वारा। जैसे सताये जाने पर सब लड़के करतें हैं, प्रह्लाद ने कभी अपने पिता या माता को नहीं पुकारा। उसने कष्ट देने वालों से भी अपनी रक्षा के लिये अनुरोध नहीं किया। उन निष्ठुर पिट्ठुओं में उसने अपने पूज्य नारायण को देखा। हर वस्तु, हर व्यक्ति उसके लिये नारायण था। तब उसे वेदना का अनुभव या चोट का दर्द कैसे हो सकता था ? आचरण में अद्वैतता चरम भक्ति एवं सम्पूर्ण ज्ञान ने उसका उद्धार किया। इस एकत्व की दृष्टि ही सर्वोच्च पारितोषक है जिसे अद्वैतवादी ढूंढ़ते हैं।

यह सब स्वप्न है तथा तुम सब अभिनेता हो। एक समय पुट्टापर्ति में, एक ग्रामीण नाटक में एक धनी व्यक्ति के पुत्र को बालि का पार्ट दिया गया तथा सुग्रीव का एक निर्धन व्यक्ति के पुत्र को। तब वालि ने विरोध किया कि वह एक निर्धन व्यक्ति के पुत्र के साथ लड़ाई में नहीं मारा जाये तथा इसके बदले में राम को उसका मित्र बनना चाहिये तथा सुग्रीव को मारना चाहिये। तुम्हारी तुच्छ मनोकामना को तुष्ट करने के लिये कहानी परिवर्तित नहीं की जा सकती है। जब नाटक चाहता है कि बालि को मरना चाहिये तथा जब उसे वही स्थान दिया गया है, तब उसे ठीक उसी तरह मरना चाहिये जैसा उसने निश्चय किया है। कौन जानता है कि प्रशंसा या निन्दा नाटक के एक अंग नहीं हैं ?

इस सत्य की अज्ञानता एक गम्भीर अपराध है तथा प्रारम्भिक स्थितियों

में ही इस पर ध्यान देना पड़ता है। भवरोग को अच्छा करने वाला डाक्टर जिन दवाओं को बताता है उनको कड़ाई के साथ लेना पड़ता है। किन्तु सम्पूर्ण मात्रा को एक ही ग्रास में नहीं लेना है तथा महीनों या वर्षों दवा एवं नियम की उपेक्षा भी नहीं करनी है। कुछ व्यक्ति कहते हैं कि वे पुट्टापर्ति दस या पन्द्रह वार आये हैं। मानों, अस्पताल तक बारह बार टहलना उनको अच्छा करने के लिये पर्याप्त है। हर बार वे आवश्यक दवा की एक बोतल पा सकते हैं, किन्तु यदि वे निर्देशानुसार उसे नहीं पीते हैं, तो उनके स्वास्थ्य में क्या उन्नति होगी ?

ज्ञानी मुझे इस वेष, आज पीत वस्त्र या कल गुलाबी रंग के वस्त्र को धारण करने के रूप में मेरा सम्मान नहीं करेगा। वह रूप के पीछे तत्व में प्रवेश करेगा तथा समझेगा कि यह शरीर केवल एक वेष धारण किया है एक उद्देश्य के लिये। इस तत्व का आगामी अवतार दूसरा वेष धारण करेगा। आत्म ज्ञान के विश्लेषण द्वारा तुम पूर्ण ज्ञान प्राप्त करो। जब तक तुम अपनी आत्मा को नहीं जानोगे, तब तक मुझे नहीं जान सकते हो।

अब, यहाँ जो तुम कर रहे हो, वह कर्मयोग है, जो तुम उच्चारण कर रहे हो वह भक्तियोग है तथा जो तुम्हारे मन में चक्कर काट रहा है, वह ज्ञान मार्ग है। इस विशिष्ट क्षण में तुम जो अनुभव कर रहे हो, वही स्वर्ग है, क्योंकि इस समय तुम मेरी वाणी सुनने के आनन्द में निमग्न हो। इस समय तुम्हें यहाँ लाने वाले कारणों का तुममें कोई विचार नही है। मेरी वार्ता समाप्त होने पर तथा मेरे चले जाने पर, तुम मृत्यु लोक में फिसल पड़ोगे, जो क्षणिक वस्तुओं एवं चंचल इच्छाओं का, द्रुतगामी मन एवं संचय करने वाले मस्तिष्क का संसार है।

सर्वोपरि, तुम आत्मचरित्र एवं विश्वास की परीक्षा करो। देखो क्या यह सच्ची एवं दृढ़ है। जब तुम रेलगाड़ी में बैठते हो, तब तुम देखते हो कि वृक्ष बड़ी तेजी से लाइन के किनारे भाग रहे हैं। तुम पेड़ों की चिन्ता न करो ;

स्वयं को देखो, स्वयं की परीक्षा करो तथा तब तुम्हें पता होगा कि तीव्र-गति से घूमने वाले तुम्हीं थे। उसी प्रकार, दूसरों के दोषों का संकेत करते हुए उनको दोष न दो। तुम अपने में ही दोष पाओगे। जब तुम स्वयं को सुधारोगे, तब संसार भी ठीक हो जाता है। ज्ञान किसी की वास्तविक रुचि एवं मिथ्या रुचि में विवेचना है तथा जो किसी को उन्नति प्रदान करती है तथा उसका अवरोध करती है उनके मध्य विवेचना भी ज्ञान है। तुम अपने गुरु एवं शिक्षक बनो। तुम्हारे पास दीपक है; इसे जलाओ तथा निर्भय आगे बढ़ो।

"सर्वंब्रह्म मयम्" की अनुभूति प्राप्त करने की स्थिति में पहुँचने के लिये तुम्हें लम्बा रास्ता तय करना है। यह भी एक अपूर्ण शक्ति है। क्योंकि वह शक्ति दो सत्ताओं की कल्पना करती है। सर्वम् एवं ब्रह्मम् तथा केवल ब्रह्मन् की अनुभूति होती है। किन्तु हतोत्साही नहीं बनो; क्योंकि वर्णमाला के केवल छब्बीस अक्षरों से सम्पूर्ण विश्वकोष बने हैं तथा समस्त पाण्डित्य 'अ, ब, स, एवं द' के ज्ञान से प्रारम्भ होता है।

यहाँ मैं प्रथम पाठ से लेकर अन्तिम पाठ तक तुम्हारी सहायता करने के लिये तत्पर हूँ। शोक से बोझिल बन कर झुको नहीं, क्योंकि तुम्हारा प्रारब्ध कर्म तुम्हारी उन्नति के विरुद्ध हैं। तुम्हारे विगत कर्मों के एकत्र फल संचित एवं भण्डार से बाहर हैं। जो तुमने वर्तमान के लिये चुना है वही प्रारब्ध है। यदि बुद्धिमत्तापूर्वक इसे काम में लाया एवं पकाया जाय तो प्रारब्ध मधुर स्वादिष्ट एवं स्वास्थ्यप्रद हो सकता है। और भी, भगवत् कृपा अतीत कर्मों के फलों को नष्ट कर सकती है या उसकी कठोरता को संशोधित कर सकती है। इस पर कभी संशय न करो। यदि कर्म की विधि इतनी अभंजनीय है, तब साधना, उत्तम जीवन एवं सद्गुणों को पैदा करने की संस्तुति क्यों की जाय? सूर्य के सम्मुख कुहरा जैसे पिघल जाता है वैसे ही प्रारब्ध भी द्रवित होता है, यदि तुम भगवत्-कृपा प्राप्त कर लेते हो। ज्ञान के प्रभात के लिये भी भगवत् कृपा की आवश्यकता होती है।